प्रकाशक :

मत्री-श्री जवाहर साहित्य समिति

भीनासर (बीकानेर, राजस्थान)

द्वितीय सस्करण

दिसम्बर १९६९

मूल्य : तीन रुपये पचहत्तर पैसे

मुद्रक :

जैन आर्ट प्रेस

(श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन सघ द्वारा सचालित)

रागडी मोहल्ला, बीकानेर

प्रकाशकीय

पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. अपने युग के क्रान्तदर्शी महापुरुष थे। उनके प्रवचनो मे मानवता का स्वर पूर्णरूप से झकृत रहता था। प्रवचन प्रारम्भ करने के पहले आचार्य श्रीजी कविश्री विनयचन्दजी की जिनचौबीसी का कोई एक पद्य बोलते थे। यह अवसर बडा ही मनोरम तथा हृदयस्पर्शी होता था। प्रार्थना करते-करते आचार्य श्रीजी तन्मय हो जाते थे, तल्लीन हो जाते थे, आत्मरस में झूमने लगते थे और श्रोता मत्र-मुग्ध-से भावना के प्रवाह में बहने लगते थे।

प्रस्तुत 'प्रार्थना-प्रबोध' पुस्तक मे उन्ही पूज्य क्रान्त-दर्शी महापुरुष के प्रवचनो मे से प्रार्थना विषयक भावो का नवनीत सजोया गया है और प्रयत्न किया गया है कि उनके प्रार्थना सम्बन्धी सभी विचारो का सग्रह हो जाये।

जैन सस्कृति प्रार्थना को महत्त्व देती है, अपने आराध्य को प्रतिपल स्मृति पथ मे रखने को कहती है। साथ ही यह भी सकेत करती है कि अपने पुनीत पुरुषार्थ को न भूलो, जीवन के कर्तव्यो के प्रति बेभान न बनो। शक्ति का अनन्त

स्रोत तुम्हारे अन्दर ही बह रहा है, वह कही बाहर से आने वाला नही है ।

प्रार्थना का अर्थ है—प्रभु के चरणो मे अपने स्व को भक्तिभाव से समर्पित कर देना । जब साधक आत्मा अपने आराध्य— परमात्मा के साथ एकनिष्ठ होता है, तब जीवन का कण-कण सत्य की ज्योति से जगमग-जगमग होने लगता है, अमृतानन्द की रसधार बहने लगती है । उसके समक्ष एक ही लक्ष्य रहता है— प्रभुमय जीवन बनाना और प्रभु-मय जीवन का अर्थ है पवित्र एव निर्मल जीवन । जो वासनाओ से रहित है, विकारो से दूर है वह अपने पवित्र स्व मे केन्द्रित रहता है, उसको अपने प्रभु के अलावा अन्य किसी का ध्यान ही नही रहता है, उसका चैतन्य अपने प्रभु में एकाकार हो जाता है ।

यदि प्रार्थना के प्रवाह मे जैन सस्कृति के आदर्श को भूल गये तो फिर दूसरो की तरह हमारी प्रार्थना मे भी केवल प्रभु के आगे गिडगिडाना और भीख मागना मात्र रह जायेगी । जो प्रार्थना केवल वाणी पर चढकर बोलती है, संसार के स्थूल पदार्थो मे अटकी रहती है । वासनाओ की दुर्गन्ध आती है । यह प्रार्थना नही, सौदेबाजी है । उस स्थिति मे प्रार्थना सजीव एव सतेज न होकर निर्जीव, निस्तेज मात्र रहेगी । जैनधर्म को यह कदापि अभीष्ट नही है । प्रार्थना यान्त्रिक वस्तु नही है वरन हृदय की वस्तु है, जीवन

की चीज है ।

प्रस्तुत 'प्रार्थना-प्रबोध' पुस्तक मे इन्ही सब विचारों का सरल सुबोध भाषा में सकलन किया गया है जिनसे प्रार्थना क्या है, उसका क्या प्रयोजन है, जीवन को उज्ज्वल बनाने के लिये प्रार्थना से क्या प्रेरणा मिलती है आदि अनेकानेक गम्भीर प्रश्नो का सीधा और सचोट उत्तर प्राप्त होगा। आशा है श्रद्धालुजन इसके सहारे प्रार्थना के क्षेत्र में प्रवेश करेंगे और अपने मन को मांजने मे सफल होगे ।

'प्रार्थना-प्रबोध' का यह द्वितीय सास्करण है। प्रथम संस्करण के प्रकाशन में श्रीमती मूलीबाई धर्मपत्नी सेठश्री उदयचन्दजी डागा ने समिति को ६०० ०० सहायतार्थ प्रदान किये थे। उक्त संस्करण के अप्राप्य हो जाने और पाठको की माग पर यह द्वितीय सास्करण श्री जवाहर किरणावली—किरण—१४ के प्रथम सास्करण के प्रकाशन के लिये सेठश्री अजीतमलजी पारख बीकानेर की ओर से सहायतार्थ प्राप्त धनराशि जो किरण १४वी के प्रथम सास्करण के विक्रय से सुरक्षित थी, से प्रकाशित हो रहा है । पाठकगण सत्साहित्य के अध्ययन मनन और प्रचार-प्रसार मे पूर्ववत अपना सहयोग प्रदान कर अन्यान्य जवाहर किरणावलियो को प्रकाशित करने की प्ररणा देते रहे ।

पुस्तक के मुद्रण आदि की व्यवस्था करने के लिये श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन सघ और उसके द्वारा

विषय-सूचि

प्रार्थना की महिमा

जो लोग परमात्मा की प्रार्थना मे श्रद्धा रखते हैं और जो प्रार्थना की शक्ति को स्वीकार करते हैं, उनके लिए प्रार्थना एक अपूर्व वस्तु है । उस पर यदि विश्वास रखा जाय तो उससे अपूर्व वस्तु की प्राप्ति होती है । यदि प्रार्थना में विश्वास न हुआ तो वही एक प्रकार का ढोंग बन जाती है। उससे फिर अपूर्व वस्तु की प्राप्ति होना सम्भव नही है । कल्पवृक्ष मे कौन-सी वस्तु नही रही हुई है ? उसमें रहती तो सभी वस्तुए हैं पर नजर एक भी नही आती । फिर भी कल्पवृक्ष के नीचे बैठकर जिस वस्तु की कल्पना की जाती है, वही वस्तु मिल जाती है। इस प्रकार कल्पवृक्ष स्वय कल्पना (चिन्ता) के आधार से वस्तु प्रदान करता है । यदि कल्पना न की जाय तो उस वस्तु की प्राप्ति नही हो सकती । इसी प्रकार परमात्मा की प्रार्थना मे निहित शक्ति भले ही दृष्टि-गोचर न हो, पर यदि उस पर विश्वास किया जाय तो उससे समस्त मनोरथ पूरे हो सकते हैं । यही कारण है कि ज्ञानी-जन परमात्मा की प्रार्थना के सामने कल्पवृक्ष या चिन्तामणि रत्न की भी परवाह नही करते । उसकी दृष्टि में परमात्मा

की प्रार्थना के मुकाबिले उसकी भी कीमत नही है। जब हमारे भीतर परमात्मा की प्रार्थना पर ऐसा प्रगाढ़ विश्वास पैदा हो जायगा और प्रार्थना के सामने कल्पवृक्ष और चिन्तामणि भी तुच्छ प्रतीत होने लगेगे, तब हमे स्पष्ट मालूम हो जायगा कि परमात्मा की प्रार्थना मे कैसी अद्भुत शक्ति विद्यमान है। अत· परमात्मा की प्रार्थना में दृढ विश्वास रखो। हा एक बात स्मरण रखनी चाहिये और वह यह कि जब किसी सासारिक पदार्थ की इच्छा को पूर्ण करने के लिए परमात्मा की प्रार्थना की जाती है, तब वह सच्ची भावना नही वरन् ऊपरी ढोग बन जाती है। इस विषय मे भक्त केशवलाल ने ठीक ही कहा है— 'परमात्मा की प्रार्थना मे पन्द्रह आना मन लगा हो और केवल एक आना मन सांसारिक पदार्थ की पूर्ति मे लगा हो तो वह प्रार्थना भी ढोंगरूप ही है।'

किसान को घास और भूसे की भी आवश्यकता पडती है। पर वह घास-भूसे के लिए खेती नही करता। उसका उद्देश्य तो धान्य को प्राप्त करना होता है। फिर भी धान्य के साथ घास–भूसा भी आनुषगिक रूप मे उसे मिल ही जाता है। इसी प्रकार परमात्मा की प्रार्थना करते समय ऐसा विचार करना चाहिए कि ईश्वर का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए मैं प्रार्थना करता हूँ, क्योकि ईश्वर का अनुग्रह प्राप्त करने मे ही आत्मा का कल्याण समाया हुआ है। इस प्रकार की उन्नत भावना

रखने से अन्न के साथ-साथ जैसे घास-भूसा आप ही मिल जाता है, उसी प्रकार सासारिक पदार्थ भी अनायास ही मिल जाते हैं। लेकिन ससार की सब वस्तुएं पा लेने की अपेक्षा आत्मा का कल्याण-साधन श्रेष्ठतर है। अतएव आत्मिक निर्बलता के लक्ष्य से ही परमात्मा की प्रार्थना करनी चाहिए। अगर प्रार्थना द्वारा आत्मा का हित-साधन हो सकता है तो तुच्छ चीजो को पाने के लिए उस प्रार्थना का उपयोग करना, चने के बदले रत्न देने के समान मूर्खता है। आत्म-कल्याण की अभिलाषा रखने वालो को ऐसी मूर्खता कदापि नही करनी चाहिए।

परमात्मा की प्रार्थना, किसी भी स्थान पर और किसी भी परिस्थिति मे की जा सकती है। पर प्रार्थना में आत्म-समर्पण की अनिवार्य आवश्यकता रहती है। प्रार्थना करने वाला अपनी व्यक्तिगत सत्ता को भूल जाता है। वह परमात्मा के साथ अपना तादात्म्य-सा स्थापित कर लेता है। वस्तुत आत्मोत्सर्ग के बिना सच्ची प्रार्थना नही हो सकती। इसलिए भक्तजन कहते हैं—

तन धन प्राण समर्पी प्रभु ने इन पर वेगि रिझास्य राज।

अर्थात्—परमात्मा की प्रार्थना करने मे तन, धन और प्राण भी अर्पण कर दूंगा।

यदि तुम्हारे चर्म-चक्षु ईश्वर का साक्षात्कार करने में समर्थ नही हैं तो इससे क्या हुआ ? चर्म-चक्षु के अतिरिक्त

हृदय-चक्षु भी है और उस चक्षु पर विश्वास भी किया जा सकता है। परमात्मा की प्रार्थना के विषय मे ज्ञानीजन यही कहते हैं कि तुम चर्म-चक्षुओ पर ही निर्भर न रहो। हमारी बात मानो। बचपन मे जब तुमने बहुत-सी वस्तुएं नही देखी होती तब माता के कथन पर तुम भरोसा रखते हो। क्या उससे तुम्हें कभी हानि हुई है? बचपन मे तुम साप को भी सौप नही समझते थे। मगर माता पर विश्वास रखकर ही तुम सौप को साप समझ सके हो और साप के दश से अपनी रक्षा कर सके हो। फिर उन ज्ञानियो पर, जिनके हृदय मे माता के समान करुणा और वात्सल्य का अविरल स्रोत प्रवाहित होता रहता है, श्रद्धा रखने से तुम्हे हानि कैसे हो सकती है? उन पर विश्वास रखने से तुम्हे हानि कदापि न होगी, प्रत्युत लाभ ही होगा। अतएव जब ज्ञानीजन कहते हैं कि परमात्मा है और उसकी प्रार्थना— स्तुति करने से शान्तिलाभ होता है तो उनके इस कथन पर विश्वास रखो। स्मरण रखना, इस प्रकार के विश्वास से तुम्हारा अवश्य कल्याण होगा।

विषय-वासना होने पर भक्ति नही रह सकती। परमात्मा की भक्ति और विपय वासना एक साथ कैसे निभ सकती है?

परमात्मा का सच्चा भक्त वही है जिसने विषय-वासना का निरोध कर दिया है। परमात्मा की भक्ति की

अभिलाषा रखने वाले के लिये ऐसे व्यक्ति का संसर्ग भी त्याज्य है, जो विषय-वासना को प्रधानता देता है।

जो योगी या परमयोगी कहलाने वाला पुरुष ध्यान-मौन में परायण होकर आत्मा-परमात्मा का ध्यान नहीं करता, वह ससार मे भार-रूप है। ससार के जीवो मे साम्य भाव हुए बिना कोई योगी नही कहला सकता। वही सच्चा योगी है जो प्राणीमात्र को अपने समान समझता है, उन्हें आत्मौपम्य-बुद्धि से देखता है। जैसा मैं हू वैसे ही और भी प्राणी हैं, इस प्रकार का अनुभव करके जो दूसरे के सुख-दु ख को अपने ही समान समझता है और सबके प्रति समभाव-पूर्वक व्यवहार करता है, अर्थात् जिस बात से मुझे दु ख होता है, उससे अन्य प्राणियो को भी दु ख होता है, दु ख जैसे मुझे अप्रिय है वैसे ही औरो को भी अप्रिय है, जैसे मुझे सुख की अभिलाषा है, उसी प्रकार अन्य जीव भी सुख के ही अभिलाषी हैं, इस प्रकार आत्मौपम्य बुद्धि से समस्त प्राणियो को देखने वाला और ऐसा ही व्यवहार करने वाला सच्चा योगी है।

यह कथन जैन-दर्शन का ही नही है किन्तु अन्य दार्शनिको का ही यही कथन है। गीता मे कहा है—

आत्मोपम्येन सर्वत्र, सम पश्यति योऽर्जुन।
सुख वा यदि या दु खं, स योगी परमो मत.॥

अध्याय ६, ३२.

समभाव वाले और विषम भाव वाले पुरुष के कार्यों में कितना अन्तर रहता है, यह बात ससार मे सर्वत्र ही देखी जा सकती है। सम्यक् दृष्टि जीव भी खाना-पीना, विवाह आदि कार्य करता है और मिथ्यादृष्टि भी यह सब करता है। लेकिन दोनो के कार्यों की भाव-भूमिका मे महान् अतर होता है। समभाव से अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव होता है। उसका आस्वाद वाणी द्वारा व्यक्त नही किया जा सकता। वह सिर्फ अनुभव की वस्तु है और अनुभव करने वाले ही उसे पहचानते हैं। जिसके हृदय मे समभाव जागृत हो जाता है उसे किसी प्रकार की हानि नही उठानी पड़ती।

मित्रो! ईश्वर की प्रार्थना से समभाव पैदा होता है और समभाव ही मोक्ष का द्वार है। ऐसा समझकर अगर आप अपने अन्तःकरण में समभाव धारण करेंगे तो परम कल्याण होगा।

जगत् मे आशाएँ इतनी अधिक हैं कि उनका अन्त नही आ सकता। शास्त्र मे कहा है—

इच्छा हु आगाससमा अणन्तिया।

अर्थात्—आशा-तृष्णा आकाश के समान अनन्त है। तृष्णा का कही अन्त नही है। ऐसी स्थिति मे तृष्णा की पूर्ति के लिए उद्योग करना आकाश को नापने के समान निष्फल चेष्टा है। ऐसा जानकर ज्ञानी पुरुष आशाओ की पूर्ति करने के लिए परमात्मा को प्रार्थना नही करते, वरन् आशा का

नाश करने के लिए नम्रतापूर्वक प्रार्थना करते हैं।

इसी भाव से परमात्मा की प्रार्थना करना उचित है। अगर तुम आशा को नाश करने के बदले सासारिक पदार्थों—धन, पुत्र, स्त्री आदि के लिए प्रार्थना करोगे तो ससार के पदार्थ तुम्हें लात मार कर चलते बनेगे और तुम्हारी आशाएँ ज्यों की त्यो अधूरी ही रह जाएँगी। हा, अगर तुम आशा-तृष्णा को नष्ट करने के लिए अन्तकरण मे पूर्ण निस्पृह वृत्ति जागृत करने के लिए ईश-प्रार्थना करोगे तो ससार के पदार्थ—जिसके तुम अधिकारी हो—तुम्हे मिलेंगे ही, साथ ही शाँति का परम सुख भी प्राप्त होगा। अतएव आशा को नष्ट करने की एकमात्र आशा से परमात्मा की प्रार्थना करो।

यह मत सोचो—ईश्वर तो कभी दिखता नही है, उससे प्रेम किस प्रकार किया जाय ? अगर ईश्वर नही दिखता तो ससार के प्राणी, कीडी से लगाकर कुंजर तक, समान है। इस तत्त्व पर विचार करोगे तो ईश्वर से प्रेम करने की बात असम्भव न लगेगी। ईश्वर नही दिखता तो न सही, ससार के प्राणियो की ओर देखो और उन्हे आत्म-तुल्य समझो। सोचो—जैसा मैं हूँ, वैसे ही यह हैं। इस प्रकार इतर प्राणियों को अपने समान समझने से शनै-शनै ईश्वर का साक्षात्कार होगा—परमात्मतत्त्व की उपलब्धि होगी- आत्मा स्वय उस शुद्ध स्थिति पर पहुंच जायगा।

तात्पर्य यह है कि ईश्वर का ध्यान करने से आत्मा

स्वय ईश्वर बन जाता है। पर जब तक ईश्वरत्व की अनुभूति नही होती तब तक प्राणियो को ही ईश्वर के स्थान पर आरोपित कर लो। ससार के प्राणियो को आत्मा के समान समझने से दृष्टि ऐसी निर्मल बन जायगी कि ईश्वर को भी देखने लगोगे और अन्त मे स्वय ईश्वर बन जाओगे।

जगत् के इस विषमय वातावरण मे यह उदार भावना किस प्रकार आ सकती है ? किस उपाय से भूतल के एक कोने मे रहने वाला मनुष्य, दूसरे कोने के निवासी प्रत्येक मनुष्य को अपना भाई समझ सकता है ?

इस प्रश्न का मेरे पास एक—केवल एक ही उत्तर है। वह यह है कि त्रिलोकीनाथ की विजय की भावना मे ही विश्व-शाति की भावना निहित है। इस प्रकार की व्यापक भावना त्रिलोकीनाथ की विजय चाहने से ही हो सकती है। त्रिलोकीनाथ परमात्मा की विजय चाहने से अन्त.करण मे एक प्रकार की विशालता-समभावना आती है। ऐसा चाहने वाला व्यक्ति सोचता है कि मेरा स्वामी त्रिलोकीनाथ है। ससार के समस्त प्राणी उसकी प्रजा हैं। मैं जब त्रिलोकी-नाथ की विजय चाहता हूँ तो उसकी प्रजा मे से किसकी पराजय, किसका बुरा सोचूँ ? मैं जब त्रिलोकीनाथ की विजय चाहता हूँ तो उसे प्रसन्न करने के लिए उसकी समस्त प्रजा का भला चाहूँ। परमात्मा की विजय चाहने से इस प्रकार के विचार अन्त:करण मे उत्पन्न होते हैं और इन

उदार विचारो से राग-द्वष का भाव क्षीण हो जाता है। जितने अशो मे विचारो की उदारता होगी उतने ही अशों मे राग-द्वेष की क्षीणता होगी और जितने ही अशो मे राग-द्वेष की क्षीणता होगी उतने अशो मे निराकुलता-शाति प्राप्त होगी। इस प्रकार विश्वशाति का मूल मन्त्र है— परमात्मा की विजय की कामना करते रहना।

इस विजय कामना की एक विशेषता यह भी है कि इसकी आराधना से सामूहिक जीवन के साथ ही साथ वैयक्तिक जीवन का भी विकास होता है। इससे सिर्फ राष्ट्र या राष्ट्र–समूह ही लाभ नही उठा सकते वरन् व्यक्ति भी अपना जीवन उदार, समभावपूर्ण और शांत बना सकते हैं।

प्रथम तो परमात्मा के भजन करने का अवसर मिलना ही अत्यन्त कठिन है, तिस पर अनेक प्रकार की बाधाएँ सदैव ताकती रहती हैं और मौका मिलते ही उस अवसर को व्यर्थ बना डालती हैं। इस प्रकार मानव जीवन की यह घड़िया अनमोल हैं। यह घडिया परिमित हैं। ससार मे कोई सदा जीवित नही रहा और न रहेगा ही। अतएव प्राप्त सुअवसर से लाभ उठा लेना प्रत्येक बुद्धिमान् पुरुष का कर्तव्य है। अतएव परम भाव से परमात्मा का स्मरण करो।

यह श्वासोच्छ्वास, जो चलता रहता है, समझो कि मेरा नही किन्तु परमात्मा का ही चलता है। इसे खाली मत जाने दो। प्रत्येक श्वास और उच्छ्वास मे परमात्मा का स्मरण

चलता रहने दो। इसके लिए सतत जागृत भाव की आवश्यकता है— चिर अभ्यास की अपेक्षा है। अगर शीघ्र ऐसा न हो सके, तो भी आदर्श यही अपने सामने रखो। आदर्श सामने रहेगा तो उसी ओर गति होगी, भले ही वह मन्द हो।

जिस प्रकार सूर्य के सामने अन्धकार नही रहता, इसी प्रकार परमात्मा से साक्षात्कार होने पर आत्मा मे कोई भूल शेष नही रहती। किन्तु आपको और हमको अभी तक परमात्मा से साक्षात्कार नही हुआ है। हम लोग अभी इस पथ के पथिक है। इसीलिए प्रार्थना करके हमे परमात्मा से साक्षात्कार करने का मार्ग तय करना है। प्रार्थना में अपने दुर्गुणो को छिपाना नही चाहिए किन्तु प्रगट करना चाहिए। ऐसा करने से आत्मा एक दिन परमात्मा से साक्षात्कार करने मे समर्थ हो सकेगा।

हे भाइयो! मेरा कहना मानते होओ तो मैं कहता हूँ कि दूसरे सब काम छोडकर परमात्मा का भजन करो। इसमे तनिक भी विलम्ब न करो। तुम्हारी इच्छा आत्मकल्याण करने की है और यह अवसर भी अनुकूल मिल गया है। कल्याण के साधन भी उपलब्ध हैं। फिर विलम्ब किसलिए करते हो? कौन जानता है यह अनुकूल दशा कब तक रहेगी?

परमात्मा से भेंट करने का सरल और सुगम मार्ग भजन है। यह मार्ग सभी के लिए उपयोगी है। चाहे कोई ज्ञानी या अज्ञानी हो, पुरुष हो या स्त्री हो, नीच हो या उच्च हो, धनवान्

हो या निर्धन हो, भजन का मार्ग सबके लिए खुला है। इस मार्ग मे यह सब ऊपरी भेद मिट जाते हैं।

प्रश्न हो सकता है कि परमात्मा का भजन क्या है? परमात्मा का नाम लेना ही भजन है या कुछ और? इसका उत्तर यह कि भगवान् का नाम लेना ही भजन है अवश्य, लेकिन भजन का खास अर्थ ईश्वरीय तत्त्व की उपासना करना है।

जीवन की कला को विकसित करने के लिए ईश्वर की प्रार्थना एक सफल साधन है। अगर आठ पहर–दिनरात ईश्वर की प्रार्थना हृदय मे चलती रहे तो ससार दु.खमय नही हो सकता। यही नही, ससार के दु ख आत्म-जागृति के निमित्त बनकर कहेगे— आत्मन् तू अपने घर में क्यों नही जाता? इस झझट में काहे को पडा है? प्रार्थना करने वाले को संसार के दु.ख किस प्रकार जागृत कर देते है यह बात प्रार्थना करने वाला ही जानता है। जो मनुष्य संसार के प्रपचों मे ही रचा-पचा है, उसे यह तथ्य मालूम नही हो सकता।

प्रार्थना का विषय आध्यात्मिक है। इस आध्यात्मिक विचार के सामने तर्क-वितर्क का कोई मूल्य नही है। यह विश्वास का विषय है। हृदय की वस्तु का मस्तिष्क द्वारा निरीक्षण-परीक्षण नही किया जा सकता।

जिस समय आम के वृक्ष मे मंजरियां लगती हैं और उनकी सुगन्ध से आकृष्ट होकर भ्रमर उन पर मंडराते हैं, तब

कोयल चुप रह सकेगी ? कोयल किसी के कहने से नहीं गाती। आम मे मंजरी आने से उस पर जो मतवालापन सवार हो जाता है, उस मतवालेपन मे वह बोले बिना नही रह सकती।

एक कवि कहता है— जिसके हृदय में भक्ति हो वही भक्ति की शक्ति को जान सकता है। केतकी और केवडा के फूलने पर भौंरे को गुंजार करने से कभी रोका जा सकता है ?

भ्रमर हमारे आपके लिए गुंजार नही करता। केतकी और केवडा के फूलने से उसमे एक प्रकार की मस्ती आ आ जाती है। उस मस्ती की अवस्था मे गुंजार किये बिना वह अपने चित्त को शान्त कैसे रख सकता है ? इसी प्रकार वसन्त ऋतु आने पर, जब आम फूलो से सुसज्जित हो जाता है, तब कोयल से चुप नही रहा जा सकता। मेघ की गम्भीर गर्जना होने पर मयूर बिना बोले कैसे रह सकता है ?

पवन के चलने पर ध्वजा हिले बिना रह सकती है ? इसी प्रकार कवि कहता है— किन्तु मुझसे अगर कोई कहे कि तुम बोलो मत— चुप रहो, तो मेरे अन्त करण मे भक्ति का जो उद्रेक रहा है। उस उद्रेक के कारण बिना बोले मुझ से कैसे रहा जा सकता है ?

वसन्त ऋतु के आने पर भी अगर कोयल नही बोलती तो उसमे और कौवी मे क्या अन्तर है ? केतकी के फूलने

पर भी भ्रमर मतवाला होकर गुंजार नही करता तो भ्रमर मे और दुर्गन्ध पर जाने वाली मक्खी में अन्तर ही क्या रहेगा ? कोयल वसन्त के आने पर और भ्रमर केतकी के कुसुमित होने पर भी न बोले—अगर उन्होने वह अवसर गँवा दिया तो फिर कौनसा अवसर उन्हे मिलेगा, जब वे अपने कोयल और भ्रमर होने का परिचय देंगे ? अतएव कोयल और भ्रमर मे जब तक चैतन्य है, जब तक जीवन है, तब तक वे अवसर आने पर बोले बिना नही रहेगे। इसी प्रकार अगर मयूर मे जीवन है, तो मेघ की गर्जना सुनकर उससे चुपचाप बैठा न रहा जायगा। अगर वह चुपचाप रहता है तो उसमे और गीध मे क्या अन्तर है ? मेघ की गर्जना सुनते ही मयूर के उर मे जो प्रेम उमड़ता है वह गीध के हृदय मे नही उमडता।

तात्पर्य यह है कि वसन्त आदि अवसरो पर कोयल आदि के बोलने मे निसर्ग की प्रेरणा है। निसर्ग की यह प्रेरणा इतनी बलवती होती है कि उसके आगे किसी की नही चलती। उसी प्रकार भक्त के अन्तःकरण मे भक्ति की आंतरिक प्रेरणा उत्पन्न होती है। उससे प्रेरित होकर भक्त मौन नही रह सकता।

जीवन का प्रत्येक क्षण— चौबीसों घण्टे प्रार्थना करते-करते ही व्यतीत होने चाहिए। एक श्वास भी बिना प्रार्थना का— खाली नही जाना चाहिए। प्रार्थना में जिनका अखण्ड

ध्यान वर्त्तता है उन्हे बारम्बार श्रद्धापूर्वक नमन है। हम लोगो मे जब तक जीवन है, जब तक जीवन में उत्साह है, जब तक शक्ति है, यही भावना विद्यमान रहनी चाहिए कि हमारा अधिक से अधिक समय प्रार्थना करते-करते ही बीते।

जब तक अहकार है, अभिमान है, तब तक भक्ति नही हो सकती। अहकार की छाया मे प्रेम का अकुर नही उगता। अहंकार मे अपने प्रति घना आकर्षण है, आग्रह है और प्रेम मे घना उत्सर्ग चाहिए। दोनो भाव परस्पर विरोधी हैं, एक मे मनुष्य अपने आपको पकड कर बैठता है। अपना आपा खोना नही चाहता और दूसरे में आपा खोना पडता है। इस स्थिति मे अहकार और प्रेम या भक्ति दोनो एक जगह कैसे रहेंगे।

काच पर प्रतिबिम्ब पडे बिना नही रहता, इसी प्रकार भावप्रार्थना करने वाले प्रार्थी के निर्मल हृदय पर परमात्मा का प्रतिविम्ब पड़े विना नही रहता। जब स्वच्छ काच पर देखने वाले का प्रतिविम्ब पड़ता है तब हृदय निर्मल होने पर चिदानन्द परमात्मा का प्रकाश हृदय पर क्यो नही पडेगा ? परमात्मा के प्रकाश को अन्त:करण मे प्रतिविम्बित करना ही प्रार्थना का साध्य है। इस साध्य के लिए आवश्यक, बल्कि अनिवार्य है— हृदय की निर्मलता। हृदय निर्मल न होगा तो प्रार्थना अपना साध्य कैसे साधन कर सकेगी।

प्रार्थना, जीवन और प्राण का आधार है। प्रार्थना

ही वह अनुपम साधन है, जिसके द्वारा प्राणी आनन्दधाम मे स्वच्छन्द विचरण कर सकता है। जो प्रार्थना प्राणरूप बन जाती है, वह भले ही सीधी-सादी भाषा मे कही गई हो, ग्राम्यभाषा द्वारा की जाती हो या प्राकृत सस्कृत भाषा द्वारा की जाती हो, प्रार्थना करने वाले को चाहे सगीत से परिचय हो या न हो, उसके स्वर मे लालित्य हो अथवा न हो, वह प्रार्थना सदा कल्याणकारिणी होगी।

प्रार्थना का सम्बन्ध भाषा से या जिह्वा से नही है। जिह्वास्पर्शी भाषा तो शुक भी बोल लेता है। मगर वह भाषा केवल प्रदर्शन की वस्तु है। निर्मल अन्त.करण में भगवान् के प्रति उत्कृष्ट प्रीतिभावना जब प्रबल हो उठती है, तब स्वयमेव जिह्वा स्तवन की भाषा का उच्चारण करने लगती है। स्तवन के उस उच्चारण में हृदय का रस मिला होता है। ऐसा स्तवन ही फलदायी होता है। प्रार्थना के विषय मे जो प्रवचन किया जाता है उसका एक मात्र प्रयोजन भी यही है कि सर्वसाधारण के हृदय मे प्रार्थना के प्रति प्रीति का भ व उत्पन्न हो जाय— प्रार्थना मे अन्त करण का रस मिल जाय।

आत्मा के आवरणो का क्षय करके ईश्वर बनने का यह सीधा रास्ता है। परमात्मा से साक्षात्कार करने के अनेक उपाय बताये है, लेकिन सबसे सरल मार्ग यही है कि आत्मा मे परमात्मा के प्रति परिपूर्ण प्रेम जागृत हो जाय। यह

प्रेम ऐसा होना चाहिये कि किसी भी परिस्थिति मे ईश्वर का ध्यान खण्डित न होने पावे ।

आत्मकल्याण के लिए गहन तत्त्वो का विचार भले ही किया जाय, पर ऐसा करना सब के लिए सभव नही है । तो क्या आत्मकल्याण का रास्ता सर्वसाधारण के लिये खुला नही है ? अवश्य खुला है । सर्व साधारण के लिए आत्मकल्याण का सरल मार्ग परमात्मा की प्रार्थना करना है । प्रार्थना की इस महिमा से आकृष्ट होकर, अनेक वर्षों से मुझे प्रार्थना करने की लगन लगी है । परमात्मा की प्रार्थना मे मुझे अपूर्व आनन्द और अखण्ड शांति का शीतल एव पवित्र झरना बहता जान पड़ता है ।

परमात्मा के नाम का स्मरण पाप के फल से बचने के लिए करना चाहिए या पाप से बचने के लिए अथवा फल भोगने मे धैर्य-प्राप्ति के लिए ?

'कडाण कम्माण ण मोक्ख अत्थि ।' कृत कर्मों से, उनका फल भोगे बिना छुटकारा नही मिल सकता । अतएव फल से बचने की कामना करना व्यर्थ है । इसके अतिरिक्त कर्म करके उसके फल से बचने की कामना करना एक प्रकार की दीनता और कायरता है । अतएव नवीन कर्मो से बचने के लिए और पूर्वकृत कर्मों का समभाव के साथ फल भोगने की क्षमता प्राप्त करने के लिए ही भगवान् का स्मरण करना चाहिए ।

वास्तव मे जो जीव सम्यग्दृष्टि होते हैं, वह परमात्मा के नाम का आश्रय लेकर दु.ख से बचने की इच्छा नही करते किन्तु यह चाहते है—कि हे प्रभो ! हम अपने पाप का फल भोगते समय व्याकुल न हो, हमे घबराहट न हो और धैर्य के साथ पाप का फल भोगे ।

इस प्रकार कष्टो को सहन करने की क्षमता प्राप्त करने के लिए परमात्मा का नाम स्मरण करोगे तो पाप का फल भोगने के पश्चात् पापमुक्त बन सकोगे और आत्म कल्याण साध सकोगे ।

परमात्मा पर प्रतीति लाओ । भगवान् की भक्ति मे प्रेम रक्खो और उनकी प्रार्थना करके उन्हे अपने हृदय मे स्थापित करो । अगर तुमने मेरी इस बात पर ध्यान दिया, अगर तुमने अपना हृदय भगवान् का मन्दिर बना लिया, तो शीघ्र ही एक दिव्य ज्योति तुम्हारे अन्तःकरण मे उद्भूत होगी । उस ज्योति के सामने मैं तुच्छ हूँ। यही नही, वरन् मैं भी उसी ज्योति का उपासक हूँ । तुम भी उसी ज्योति की उपासना करो ।

एक लक्ष्य पर पहुंचने के साधन या मार्ग अनेक होते हैं, पर सर्व साधारण के लिए जो मार्ग अधिक सुविधाजनक हो वही उत्तम मार्ग है । आत्मशोधन के सम्बन्ध मे भी यही बात है । आत्मशोधन के अनेक मार्गो मे से भक्ति-मार्ग पर प्रत्येक व्यक्ति चल सकता है। इस मार्ग पर जाने

में क्या बालक, क्या वृद्ध, क्या अशक्त, क्या स्त्री, क्या पुरुष, किसी को कोई प्रतिबन्ध नहीं है। प्रत्येक प्राणी भक्ति के मार्ग पर चल सकता है और आत्म-कल्याण की प्राप्ति कर सकता है।

१-ऋषभदेव-स्तवन

श्री आदिश्वर स्वामी हो,
प्रणमूं सिर नामी तुम भणी, प्रभु अन्तरयामी आप,
मो पर मेहर करीजे हो,
मेटीजे चिन्ता मन तणी, मारा काटो पुराकृत पाप ।।श्री।।
आदि धरम कीधी हो,
भर्त क्षेत्र सर्पिणी काल मे, प्रभु जुगल्या धर्म निवार,
पहला नरवर मुनिवर हो,
तीर्थंकर जिन हुआ केवली, प्रभु तीरथ थाप्या चार ।।श्री०।।
मा मरुदेवी देव्या थारी हो,
गज होद्दे मोक्ष पधारिया, तुम जन्म्या हि प्रमाण,
पिता नाभि महाराजा हो,
भव देव तणो करी नर थया, पछे पाम्या पद निरवाण ।।श्री०।।
भरतादिक सौ नन्दन हो,
बे पुत्री ब्राह्मी सुन्दरी, प्रभु ए थारा अङ्गजात,
सघलाई केवल पाम्या हो,
समाया अविचल जोत में, प्रभु त्रिभुवन में विख्यात ।।श्री०।।
इत्यादिक बहु तार्या हो,
जिण कुल मे प्रभु तुम ऊपन्या, कांई आगम मे अधिकार ।।श्री०।।
अवर असख्य तार्या हो,
उधार्या सेवक आपरा, प्रभु सरणा आधार ।।श्री०।।

१-ऋषभदेव

भगवान् ऋषभदेव को हम क्यो नमस्कार करते हैं ? जो असख्य काल पहले हुए हैं, जिन्हे हमने और हमारी सात क्या, सात सौ पीढियो ने भी देखा नही है, जिनका समय इतिहास से भी अतीत है, जिनका परिचय सिर्फ शास्त्रो मे ही पाया जाता है, उन भगवान् ऋषभदेव को नमस्कार करने का प्रयोजन क्या है ? उन प्रभु का नाम सुनते ही हृदय मे उल्लास और भक्तिभाव क्यो उत्पन्न हो जाता है ?

इन प्रश्नो का उत्तर यही दिया जा सकता है कि भगवान् के प्रति हमारे हृदय मे अलौकिक प्रीति का भाव विद्यमान है। और यह अलौकिक प्रीति भी निष्कारण नही है। भगवान् ने जगत् को शाश्वत कल्याण का मार्ग बतलाया है। उनका ससार के ऊपर असीम उपकार है। उपकारी के उपकार को कोई सज्जन पुरुष नही भूल सकता। जो मनुष्य उपकार को उपकार न माने, वह पशु से भी गया-बीता है।

प्यासे आदमी को गगा का शीतल जल मिल जाय तो उसे कितना आनन्द और कैसा सतोष होता है ? मगर उसे यह भी समझना चाहिए कि गगा यही नही पैदा हो गई है, बल्कि आगे से आई है। अगर हिमालय से गगा का

आगमन न हुआ होता तो उसे शीतल जल कैसे मिलता ? अतएव गगा के उत्पत्ति स्थान हिमालय आदि का भी उपकार माना जाता है । ऐसा मानना व्यवहार के अनुकूल है ।

ठीक इसी तरह, ससार से व्याकुल बना देने वाले सतापो से सतप्त प्राणियो को अपूर्व शान्ति प्रदान करने वाली धर्मरूपी गगा प्राप्त हुई है । इस अवसर्पिणी काल में इस धर्म-गगा की अर्थात् परमात्मा की वाणी की उत्पत्ति कहाँ से है ? कहना होगा—

श्री आदिश्वर स्वामी हो, प्रणमूँ

भगवान् ऋषभदेव ने इस जगत् मे जन्म लेकर धर्म-रूपी वाणीगगा का शीतल-सतापसहारक स्रोत बहाया है । ऐसी स्थिति मे भगवान् ऋषभदेव का असीम उपकार मानना चाहिए या नही ? कदाचित् कहा जाय कि धर्म के विषय मे भगवान् ऋषभदेव का उपकार है, तो क्या जो बातें धर्म से पृथक् समझी जाती है, उनके विषय मे ऋषभदेव भगवान् का उपकार मानने की जरूरत नही है ?

आप आज जिस विवाह के अवसर पर हर्ष मनाते हैं और उत्साह दिखलाते हैं, उसे चलाने वाला कौन है ? जिस व्यापार से पैसा पैदा करके आप शक्ति और सुख के साथ जीवन बिता रहे हैं, उसकी सवप्रथम शिक्षा देने वाला कौन है ? जिस राज्यशासन के बिना एक घड़ी भी ससार में शाति नही रह सकती, जिसके अभाव मे शान्तिपूर्वक धर्म

की आराधना भी नही हो सकती, उस राज्यशासन को आरम्भ करने वाला कौन है ?

'ऋषभदेव भगवान् !'

असल मे बात यह है कि जिन कार्यो को हम व्यावहारिक अथवा सासारिक कहते है और जिनका धर्म के साथ कतई सम्बन्ध नही समझते, उनमे भी अनेक कार्य ऐसे है जो परोक्ष रूप से धर्म मे सहायक होते हैं। उदाहरण के लिए विवाह-सस्कार को ही लीजिए। विवाह सासारिक कृत्य ह। यह सत्य होने पर भी क्या यह सत्य नही हं कि विवाह ब्रह्मचर्याणुव्रत का पालन करने मे सहायक है ? अगर विवाह प्रथा न रहे तो मनुष्य, पशुओ से भी बुरी हालत मे पहुच जाय और धर्म-कर्म मिट्टी मे मिल जाएं। राज्यशासन के सम्बन्ध मे भी यही बात है। राज्यशासन के बिना लूटपाट, चोरी डकेती, व्यभिचार, खूनखराबी आदि के फैलाव को कौन रोक सकता ह ? इन सब अनाचारो को रोकने के लिए शासन की अनिवार्य आवश्यकता रहती है। इसीलिए राजशासन भी धर्मशासन का सहायक है।

नीति के विना धर्म नही टिक सकता। भगवान् ऋषभदेव विशिष्ट ज्ञान के धारक थे। उन्होने इस तथ्य को भलीभाति समझ लिया था। अतएव उन्होने नीति और धर्म-दोनो की ही शिक्षा दी।

भगवान् ऋषभदेव के उपकार को न मानने या भूल

जाने के कारण ही आज जगत् की दुर्दशा हो रही है। अगर उनका उपकार मानकर उन्हे याद किया जाय तो मनुष्य, पशु बनने से रुक सकता है। मगर आज दुनिया उसके उपकार को, उनके आदर्शो को, उनके उपदेशो को भूल रही है। आज उनकी बताई हुई नीति का ह्रास हो रहा है। व्यवहार, खान-पान, विवाह-शादी आदि के अवसर पर उस नीति को याद करते हो ?

भगवान् ऋषभदेव ने दस प्रकार का धर्म बतलाया है। उन्होने एकदम से मोक्षमार्ग की स्थापना नही की, बल्कि पहले ससार-नीति की स्थापना की है। यह बात जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति सूत्र से भलीभाति प्रगट होती है।

उस समय ससार मे बडी ही विकट घटना घटी थी। कल्पवृक्षो ने सहायता देना बन्द कर दिया था। और उस समय के लोगो को पता नही था कि अन्न कहाँ से लाएँ और प्राण कैसे बचाएँ ? उस समय की इस भयानक मुसीबत की कल्पना करना भी कठिन है। ऐसे घोर सकट के समय भगवान् ऋषभदेव सहायक न होते तो कौन जाने क्या स्थिति होती ? मनुष्य, मनुष्य को खाने लग जाता और न मालूम क्या-क्या कुकर्म होने लगते ? मगर जिस समय ससार घोर कष्ट मे पड़ जाता है, उस समय महापुरुष उसका त्राण करता है। कष्ट–सागर मे पडी हुई नौका को वह पार लगा देता है।

उस समय की परिस्थिति बड़ी ही भीषण थी। देश मे त्राहि-त्राहि मची थी। आपत्ति मे कौन किसका सहायक होता है ? विपदा के समय अपना शरीर भी वैरी बन जाता है। इस कथन के अनुसार उस समय कोई किसी का सहायक नही था। उस समय की प्रजा का निर्वाह कल्पवृक्षो से होता था। मगर अब उन्होने अन्न वस्त्र देना बन्द कर दिया था। स्त्रिया मर्यादा भग करने लगी। किसी का किसी पर अनुराग नही रहा। ऐसी विकट परिस्थिति मे, जब जीवन के लिए सबसे बडा सकट उपस्थित था, भगवान् ऋषभदेव ने आगे आकर सब को शान्ति प्रदान की। उन्होने लोगो को बतलाया कि कल्पवृक्ष की राह मत देखो। भीख मागना दीनता है। अब कर्मयुग का आरम्भ हुआ है। पुरुषार्थ करके जीविका उपार्जन करो, यही तुम्हारे लिए हितकर और सुखकर है।

तुलसी कर पर कर करो, कर तल कर न करो।
जा दिन कर तल कर करो, वा दिन मरण करो॥

तात्पर्य यह है कि दान देना तो अच्छा है, मगर दीनतापूवक दान लेने की अपेक्षा मर जाना श्रेयस्कर है, ऐसा तुलसीदासजी का कथन है।

मागना और मरना बराबर है। अनुभव करो और अभ्यास करो तो पता चले। भगवान् ऋषभदेवजी ने कहा— इस प्रकार पराये भरोसे रहने और माग कर खाने-पहनने

से मनुष्यत्व पर नही पहुंच सकते। पराधीनता मे पड़े रहने से दुख दूर नही हो सकता। मुक्ति का अधिकारी बनने के लिए स्वाधीनता की आवश्यकता है। मैं आप लोगो को भीख मागना छुड़ाकर दानार बनाता हूँ। आप पृथ्वी को दो तो वह आपको देगी। भीख मागना भूल जाओ।

अभी तक युगलिया कल्पवृक्ष से लेकर कल्पवृक्ष को बदले मे क्या देते थे ?

'कुछ भी नही ?'

बिना उद्योग किए, पराया दिया खाते थे। तब उनमे बडी बात कहा से आती ? पर भगवान् ऋषभदेव ने उन्हे उद्योग करने की शिक्षा दी। गीता मे जो कर्मयोग बतलाया गया है, उसका तत्त्व ऋषभदेव से आरम्भ होता है।

ऋषभदेव ने लोगो को बतलाया कि तुम अब तक कल्पवृक्ष के भरोसे थे, किन्तु उद्योग करने से कल्पवृक्ष तुम्हारे हाथ मे ही आ जायगा। मनुष्य अपने हाथ से उत्तम भोजन बना सकता है या नही ? भगवान् ऋषभदेव ने लोगो को कृषि करना सिखला कर कहा कि तुम स्वय अपने हाथो से अच्छा-अच्छा भोजन बनाकर खा सकते हो।

आप लोग आज अच्छे-अच्छे भोजन किसके दिये खाते हैं ? सेठानी के दिये या नौकर के दिये ? नही ! अगर परम्परा को समझो तो यह ऋषभदेव का दिया भोजन है। उन्होने ही इसका उत्पन्न करना और बनाना सिखलाया है।

लेकिन भगवान् ने भोजन की यह क्रिया जीवन कायम रखने के लिए बतलाई है। आपका बडप्पन इसी मे है कि केवल जीवन के लिए अन्न समझो। जीवन के लिए भोजन कर सकते हो, पर भोजन के लिए जीवन मत समझो।

ससार मे दो प्रकार के मनुष्य है। दोनो मे जमीन-आसमान सरीखा अन्तर है। एक प्रकार के मनुष्य जीने के वास्ते खाते हैं। उन्हे जीने का अधिकार है। अन्न सब प्राणी खाते है। यह जीवन अन्नमय है। साधुओ को भी अन्न खाना ही पडता है। खाये बिना जीवन नही रह सकता। दूसरे प्रकार के मनुष्य खाने के लिए जीते हैं। जो खाने के लिए जीता हैं वह हीनता को पकडे बिना नही रहेगा। ससार मे जो जीने के लिए खाता है, वह अपने शरीर की रक्षा करता है और जो खाने के लिए जीता है, वह शरीर और परलोक दोनो को बिगाडता है।

आज आप मे खाने-पीने, कृषि और व्यापार आदि की स्वतन्त्रता है, वह ऋषभदेव जी की बतलाई हुई है। उन्होने ऐसी स्वतन्त्रता बतलाई है जो मुक्ति प्राप्त करने के लिए समर्थ बना देती है। इस कर्मभूमि का परिपूर्ण आरम्भ भगवान् ऋषभदेव से ही हुआ है।

जिन ऋषभदेव ने ससार का इतना महान् उपकार किया है, उनके लिए अब कुछ लोग कहते हैं कि ऋषभदेव ने बड़ा पाप किया! जगत् को पापमय देखने वाले यह

एकान्त पापवादी लोग जगत के सारे पाप उन पर ही डाल देते हैं। कहते हैं—व्यापार और खेती करना, विवाह-शादी करना, मकान बनवाना आदि सभी पाप के काम ऋषभदेवजी ने ही बतलाये हैं, अत इन सब पापो के फलस्वरूप उन्हे बारह महीनो तक आहार नही मिला और एक हजार वर्ष तक तपस्या करनी पडी।

मित्रो ! यह चर्चा गूढ है। भगवान् ऋषभदेवजी को बहुत कष्ट सहना पड़ा, यह सही नही है। छह महीनों तक तो उन्होने भोजन ही नही करना चाहा था और छह महीने तक विधिपूर्वक भोजन न मिलने के कारण वह निराहार रहे। उन्होने ससार को पूर्वोक्त कार्य सिखलाये, इससे यदि पाप हुआ तो पुण्य भी कुछ हुआ या नही ? अगर भगवान् जीविका का उपाय न समझाते तो न जाने कितना अनर्थ होता ! मनुष्य, मनुष्य को खा जाता और ससार नरक बन जाता। मित्रो ! फिर कोरा पाप ही पाप क्यो गिनते हो और पुण्य की गिनती ही नही करते ! खर्च को नामे लिखते हो और जमा को छिपाने की चेष्टा करते हो ? कलकत्ते मे आपका मुनीम हो। उसका खर्च तो लिख लो मगर उसने जो कमाई की है, उसे जमा न करो तो क्या हिसाब बराबर कहा जायगा ?

'नही !'

लेकिन यह बात जाने दीजिए। जरा इस बात पर

विचार तो कीजिये कि भगवान् ऋषभदेव क्या आप लोगो से भी कम ज्ञानी थे ? आपको जिस काम मे एकान्त पाप ही पाप नजर आता है, उसमे क्या भगवान् को नजर नही आया होगा ? फिर वे जान बूझकर ऐसा क्यो करते ? भगवान् ऋषभदेव की नीयत क्या थी ? बिगाडने की थी या सुधारने की ? बिगाड़ने और सुधारने वाले की नीयत एक-सी है ? भाइयो, नीयत को देखे। प्रत्येक कार्य का फल नीयत पर निर्भर होता है।

कार्य का फल नीयत पर किस प्रकार निर्भर है, इस विषय मे एक उदाहरण प्रसिद्ध है। वह इस प्रकार है—

दो मित्र थे। उनमे से एक ने कहा—फला जगह की वेश्या बहुत अच्छी है। आज ही महफिल मे उनका नाच देखने चले। बडा मजा आयगा।

दूसरे ने कहा— आज एक महात्मा भी पधारे हैं। उनका धर्मोपदेश सुनने चलना अच्छा है। इससे जीवन की उन्नति होगी और आत्मा का कल्याण होगा।

इस प्रकार दो मित्रो की दो प्रकार की मति हुई। एक वेश्या की महफिल मे जाना चाहता है और दूसरा साधु के व्याख्यान मे। इन दोनो की मति पर विचार करके नीयत का प्रभाव देखिए।

दोनो मित्र अपने-अपने अभीष्ट स्थान पर गये। दूसरा मित्र जब साधु के पास गया तो वहा वैराग्य की रूखी बाते

हो रही थी । फला चीज का त्याग करो, इस काम में पाप है, उस काम मे पाप है, इस प्रकार की बातो के सिवाय वहाँ राग रंग की बातें कहा से होती ? उन बातो को सुनकर वह सोचने लगा— कहा आकर फँस गये ! यहाँ तो सभी बाते रूखी ही रूखी हैं । मेरा मित्र तकदीर वाला निकला जो महफिल मे बैठा गाना सुन रहा होगा । मैं वृथा यहा ग्रा गया । इस प्रकार उसकी भावना मे विकार ग्रा गया ।

मित्रो ! क्या पलटा ? साधु पलटे या व्याख्यान पलटे ?

'नीयत पलटी ।'

पहला मित्र, जो वेश्या के यहा गया था, तरह-तरह के मनुष्यो को ग्राते देख ग्रौर वेश्या के घृणित और लज्जा-जनक हाव-भाव देखकर तथा ग्राने वालो की नीच मनोवृत्ति पर विचार करके पछताने लगा । उसने सोचा—वेश्यावृत्ति कितनी नीच है ! वेश्या ने ग्रपना शरीर पैसो के वास्ते वेच दिया है । इसका यह नाच-गान ग्रौर हाव-भाव पैसो के लिए ही है ! वास्तव मे वेश्या किसी की सगी नही—पैसों की है । जैसे मृत कलेवर पर कुत्ते पडते हैं, इसी प्रकार इस पर मूर्ख लोग पडते हैं ग्रौर सभी समझते हैं कि यह मेरी है ! चाहे कोई रोगी हो या कोढी हो, किसी की सगति इसके लिए वर्जनीय नही है । यह नारी के रूप में साक्षात् नरक है । मैं इस नरक में क्यो आ फँसा ? मेरा मित्र भाग्यवान् है जो मुनिराज का व्याख्यान सुनकर अपना जीवन

धन्य बना रहा होगा।

अब जरा इसकी नीयत पर विचार कीजिए। ऐसी नीयत रखने वाले को, वेश्या के पास जाने पर भी पाप हुआ या पुण्य ?

'पुण्य।'

नीयत पलटने से पाप भी पुण्य के रूप मे परिणत हो गया। एक साधु के पास जाकर और व्याख्यान सुनकर भी पाप मे पड़ा और दूसरा वेश्या के पास जाकर भी पुण्य का भागी हो गया। अतएव यह सच्चाई कभी नही भूलना चाहिए कि पाप और पुण्य हृदय की भावना पर निर्भर है। कहा है—

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयो.।

अर्थात्—बन्धन और मुक्ति का प्रधान कारण मन है।

श्री आचाराग सूत्र मे कहा गया है—

'जे आसवा ते परिसवा, जे परिसवा ते आसवा।"

अर्थात्—नीयत के कारण बन्ध के स्थान भी सवर के स्थान हो जाते हैं और सवर के स्थान भी आस्रव के स्थान हो जाते हैं।

जो लोग भगवान् ऋषभदेव को पाप लगना कहते हैं, वे स्वय कितने ज्ञानी हैं ? उन्हें कितना ज्ञान है जो भगवान् ऋषभदेव का पाप देखने लगे हैं ? क्या ऋषभदेवजी ने खोटी नीयत से काम किया था ? जरा उस समय की परिस्थिति

पर विचार करो। ऋषभदेवजी ने सबको गडहे में गिरने से बचा लिया–ससार को मुसीबत से छुटकारा दिलाया। तो क्या यह एकांत पाप हुआ ? जबान मिली है तो जरा सोच-विचार कर बोलना चाहिए, अन्यथा जबान मिलना मुश्किल हो जायगा। भगवान् ऋषभदेव ने अनीति छुड़ाकर लोगो को नीति का मार्ग बतलाया, पाप से बचाकर कल्याण के मार्ग पर लगाया। उन्होने किसी का अकल्याण नही किया और न अकल्याण करने की भावना को ही हृदय मे स्थान दिया। फिर उन्हे किस प्रकार एकान्त पाप लगा, यह समझ मे नही आता। अपनी खोटी जिद पर अडकर भगवान् को पापी बनाने वाले को क्या कहा जाय !

मित्रो ! अपने मन मे विचार करो कि ऋषभदेव अगर विवाह का नियम न बतलाते तो नर और नारियो की हालत क्या कुत्तो और कुत्तियो सरीखी न हो जाती ? अगर विवाह करने से ही पाप होता है और विवाह न करने वाला ही धर्मात्मा होता है तो कुत्ता-कुत्तियो का विवाह कहाँ होता है ? फिर उन्हे धर्मात्मा और ब्रह्मचारी कहना पड़ेगा ! वह विवाह न करके भी क्या ब्रह्मचर्य पालते हैं ?

'नही !'

ऐसी स्थिति मे मनुष्यो का विवाह न होता तो वे पशुओ से भी गये-बीते हो जाते या नही ? ऋषभदेवजी ने नियम बना दिया तो पाप के लिए या पाप से बचने के

लिये ? आरभ-समारभ तो प्रत्येक कार्य मे होता है। गाडी मे बैठकर व्याख्यान सुनने जाना पाप है या पुण्य ?

'भाव से पुण्य !'

गाडी पर सवार होकर एक आदमी वेश्या के घर जाता है और दूसरा साधु के पास जाता है। दोनो का फल क्या एक सा है ? कदापि नही। इसी प्रकार ऋषभदेवजी की भावना को देखना चाहिए।

भगवान् के अनन्त नाम और अनन्त गुण हैं। उनका कोई पार नही पा सकता। देहधारी की तो बात ही क्या है, देवो का गुरु कहलाने वाला बृहस्पति भी पार नही पा सकता। जब बृहस्पति भी पार नही पा सकते तो अपन कैसे पार पा सकते हैं ? फिर भी जितनी प्रार्थना हो सकती है या होती है, वह आत्मा के विकास का सहारा है। जिस तरह सूर्य से कमल विकसित और प्रफुल्लित होता है, उसी तरह परमात्मा की प्रार्थना से हृदयकमल खिल जाता है। आत्मा अपूर्व आनन्द अनुभव करने लगता है। इसीलिये ज्ञानियो ने कहा है—

श्री आदीश्वर स्वामी हो, प्रणवो सिर नामी तुम भणी।

यहा तक प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव के विषय मे जैनशास्त्र के अनुसार थोडा-सा कथन किया गया है। अब जरा और सामान्य विचार करना आवश्यक है।

भगवान् पार्श्वनाथ, शान्तिनाथ और महावीर के गुणों

का अभ्यास सब को होते हुए भी विशेषत. जैन ही उनका नाम लेते हैं, परन्तु ऋषभदेव का नाम ऐसा है, जिससे जैन ही नही बल्कि हिन्दूमात्र के हृदय मे जागृति होती है।

भगवान् ऋषभदेव ने ही सब से पहले इस अधकार-मय जगत् मे प्रकाश किया है। इस भरतक्षेत्र में असत् से सत् की ओर, अन्धकार से ज्योति की ओर और मृत्यु से अमृतत्व की ओर ले जाने वाले भगवान् ऋषभ ही हुए हैं। इसी कारण उनके विषय मे, जैन साहित्य मे कहा है—

आदि धरमनी कीधी हो, भरतक्षेत्र सर्पिणीकाल मे,
प्रभु जुगल्या धर्म निवार।

इस छोटे से पद मे हजारो श्लोको की महिमा भरी है। प्रार्थना ऐसी ही होनी चाहिए। प्रार्थना मे विस्तार की नही, सग्रह की ही आवश्यकता है।

इस पद मे यह बतलाया गया है कि इस भरतक्षेत्र मे, मौजूदा अवसर्पिणी काल मे, ऋषभदेव ने धर्म का प्रकाश किया। जुगलियो मे स्वाभाविक कर्म नही था, इससे धर्म भी नही था। यद्यपि बिना कर्म के कोई जी नही सकता परन्तु उस समय असि, मषि और कृषि कर्म नही था। आज जैसे जगली जीव वृक्षो के फल आदि खाते और उन्ही के नीचे निवास करते हैं, इसी प्रकार युगलिया लोगो की आवश्यकताएँ कल्पवृक्षो से पूरी होती थी। इस प्रकार उनमें कर्म (पुरुषार्थ) नही था और धर्म भी नही था। बिना कर्म

के धर्म नही और बिना धर्म के मोक्ष नही। भगवान् ऋषभ-देव ने सर्वप्रथम कर्म सुधारा और फिर धर्म का प्रकाश किया।

नैतिक जीवन के अभाव मे धर्म नही रह सकता। नैतिक जीवन परतन्त्र हुआ और गुलामी मे फँसे कि धर्म भी चला जाता है। गुलामो का धर्म गुलामी है। जिस प्रकार गुलामो को इज्जत का खयाल नही रहता, उसी प्रकार धर्म का भी खयाल नही रहता। भगवान् ऋषभदेव ने जुगलियों को सबसे पहले स्वतन्त्र बनाकर शिक्षा दी कि कल्पवृक्षो के प्रति भिखारी मत बनो। यह भीख मागना छोड़े बिना धर्म की पात्रता नही प्राप्त हो सकती।

खेद है कि आज बहुत–से हट्टे-कट्टे अनधिकारी व्यक्ति भी भीख माँगते देखे जाते हैं। ऐसे लोग धर्म का क्या पालन करेंगे! जिन्हें कर्म-अकर्म का भान नही है, जिन्हे नैतिक जीवन बिताने की परवाह नही है, वे धार्मिक जीवन व्यतीत करना कैसे जान सकेंगे?

भगवान् ऋषभदेव ने कल्पवृक्षो से भीख मागना छुडा-कर दूसरो से भीख मागना क्यो नही सिखाया? अगर कल्पवृक्षो ने देना बन्द कर दिया था तो क्या हुआ। भगवान् ऋषभदेव तो समर्थ पुरुष थे। उन्होने कल्पवृक्षो के समान ही दूसरा कोई प्रबन्ध क्यो नही कर दिया? इसमे बड़ा गम्भीर रहस्य है। बिना गहरा विचार किये उस रहस्य को नही समझा जा सकता।

एक आदमी भीख मागकर अपना जीवन-निर्वाह करता है और दूसरा उद्योग करके— मिहनत-मजदूरी करके—खेती, नौकरी, व्यापार आदि से जीवन व्यतीत करता है। इन दोनो मे किसका जीवन अच्छा है ?

'उद्योग करने वाले का ।'

भीख मागने वाले की आत्मा इतनी गिरी हुई होगी कि उसमे सत्य नही ठहरेगा, जबकि उद्योग करने वाले का जीवन तेजस्वी होगा ?

यही विचार करके भगवान् ऋषभदेव ने सबसे पहले युगलियो को स्वतन्त्र बनाया । जब वे स्वतन्त्र हो गये और उनमे स्वतन्त्रता का तेज फूटने लगा, तब भगवान् ने प्रभावशाली धर्म प्रकट कर दिया । वास्तव मे स्वतन्त्रता के बिना आत्मज्ञान की ज्योति प्रकट नही होती । इसलिए भगवान् ने परतन्त्रता को धर्म मे बाधक जान उसे हटाकर ससार को कल्याण का मार्ग बतलाया ।

श्रीमद्भागवत मे वेदव्यास जी ने ऋषभदेव भगवान् के विषय मे लिखा है :—

नित्यानुभूतिनिजलाभनिवृत्ततृष्णाः,
श्रेयस्य तद्रचनया चिरसुप्तबुद्धेः ।
लोकस्य य· करुणयाऽभयमात्मलोक—
माख्यान्नमो भगवते ऋषभाय तस्मै ॥

जिसे वेदव्यासजी नमस्कार करे उसे कौन हिन्दू नमस्कार

नही करेगा ? वेदव्यासजी कहते हैं—मै उन ऋषभदेव को नमस्कार करता हूँ जिन्होने नित्य आत्मानन्द प्राप्त कर लिया है अर्थात् केवलज्ञान प्राप्त कर लिया है। केवलज्ञान प्राप्त करने से यह गुण हुआ कि मोह और तृष्णा का विलय हो गया। मोह और तृष्णा को जीतकर भगवान् परमानन्दमय हो गये।

भ० ऋषभदेव स्वय परमात्मरूप हो गये, यह तो उनका स्वय का ही विकास और हित हुआ। पर हमे यह भी देखना चाहिए कि उनसे ससार का भी कुछ हित हुआ या नही ? इसके लिए मैं कई बार कह चुका हूँ कि जो हमको प्रकाश न दे वह सूर्य नही, जो प्यास न बुझावे, वह पानी नही, अर्थात् उपकार करने के कारण ही इनका महत्त्व है। फिर जिन्हे हम तीर्थंकर कहते हैं, परमात्मा मानते हैं, वह यदि हमारा कल्याण न करे तो उन्हे हम परमात्मा कैसे माने ?

ऋषभदेव भगवान् के विषय मे वेदव्यासजी कहते हैं कि उन्होने ससार पर कृपा करके निजानन्द को प्रकट करने का सतत उपदेश दिया और अपना मोह जीतकर ससार को मोह जीतने का आदर्श ही नही समझाया वरन् उपदेश भी दिया। उन्होने कहा—मत डरो। निर्भय होओ। इस आत्मा मे तुमने ही भय उत्पन्न किया है। वास्तव मे आत्मा को कोई भय नही है।

लोग डराने से डरते हैं। आजकल मनुष्य साप, सिंह

आदि से भी सभवत. उतना न डरते होगे, जितना मनुष्य से ही डरते हैं। लोगो ने अपनी भीति को विशाल बना लिया है। जिम भूत को कभी देखा नही, अपनी कल्पना से उसका भी निर्णय कर डाला है।

मारवाड के भाई बहिनो को देखो तो उनमे बिरले ही मिलेगे जिनके शरीर पर ताबीज, गडे या डोरे न हो। उनकी समझ से तावीज आदि के कारण भूत नही लगता! मगर जो भय भूतरूप होकर भीतर घुस गया है, वह इन तावीजो से कैसे निकले?

भय के भूत से धूर्तो की शक्ति ऐसी बढ गई है कि उस शक्ति के आगे अर्थात् धूर्तों द्वारा भ्रम मे डाल देने से परमात्मा की भक्ति का प्रभाव पडना मुश्किल हो रहा है। बहिनो को तो अपनी छाया मे ही भूत दिखाई देता है। जहां चार बहिने इकट्ठी हुई, बस यही चर्चा चली! मतलब यह है कि मनुष्यो ने अपने आपके लिए आप ही भय पैदा कर लिया है। इसीलिए भगवान् कहते हैं—'जितो भयान्!' साराश यह है कि डरो मत। आपकी आत्मा को निर्भय बनाओ। इस तरह भगवान् ने आत्मा को अभय देने का उपदेश दिया है। अन्य ग्रन्थो मे भी लिखा है—

'वर्द्धते भी।'

तुममे डर बढ रहा है। उसे निकाल फैको और अभय हो जाओ।

आज अनेक भाई और बहिने अपने बालको को केवल रोना बन्द करने के लिए या अन्य प्रयोजन के लिए डराते हैं। उन्हे मालूम नही है कि इस तरह डराने का परिणाम क्या होता है ? अभी से बच्चे डरपोक होते जाते हैं और समझ आने पर पहले के सुने हुए शब्दो के सस्कार अपना काम करते है। अर्थात् आगे चलकर बालक खूब डरपोक बन जाता है। मैं पूछता हूँ, आपने कभी अपनी नजर से भूत देखा है ?

'नही !'

नही देखा है। फिर भी तुमसे यदि कोई कहे कि सौ रुपये लेकर आधी रात को श्मशान मे चले जाओ तो कितने भाई तैयार होगे ?

'सौ मे से पाच-चार।'

क्यो ? इसीलिए कि यद्यपि तुमने भूत नही देखा है, फिर भी बालकपन का भूत का सस्कार डरा रहा है।

मैं यह नही कहता कि भूत या देवता है ही नही। परन्तु प्रश्न व्याकरण सूत्र मे कहा है कि जो भूत से डरता है वह मरता है और जो नही डरता, भूत उसकी सेवा करता है।

जितो भवान्, वर्द्धते भी।

अर्थात् तुम हार गये, क्योकि तुम्हारे हृदय मे भय का निवास हो गया है।

'मा हन मा हन' का पाठ तुम सुनते हो। इसमें सभी का समावेश हो गया या नही ? फिर तुम दूसरो को अभय-दान देने को कहते हो, परन्तु अपनी आत्मा को क्यो भयभीत बनाये हो ? पहले अपनी आत्मा को अभयदान दो अर्थात् अपने भीतर भय मत रहने दो।

आज कई एक साधुओ और सतियो को भी जन्तर-मन्तर पर भरोसा है, परन्तु यह भरोसा आत्मा को गिराने वाला है। जैनसिद्धान्त मे भय को कही स्थान नही दिया गया है।

थोड़ी देर के लिए मान लें कि ससार मे भय का स्थान है, परन्तु कही निर्भय-स्थान भी है या नही ? यदि है तो निर्भय स्थान को छोडकर भयस्थान मे क्यो पडते हो ?

आप 'अभयदयाण' का रोज पाठ करते है परन्तु उस पर विश्वास नही है। अभयदान का दाता मिलने पर भी अभयदान न लेकर भय का ही सग्रह करो, यह कौनसी बुद्धि-मानी है ? आपको विश्वास होना चाहिए कि मैंने परमात्मा को प्राप्त किया है, फिर डर किसका है ? हृदय में ऐसी निर्भीकता आये बिना काम नही चल सकता।

वेदव्यास कहते हैं- भगवान् ऋषभदेव ने ससार को अभयदान दिया है। लोग निभय होकर विचरने लगे।

शास्त्र मे कहा है—'असाहिज्जा देवा।'

यह पाठ कितना जोरदार है ! परन्तु जिसके हृदय

मे भ्रम है उसके लिए यह पाठ किस काम का ? जिसके हृदय मे कायरता बस गई है, उसके लिए वीरता का उपदेश काम नही आता। आपको अपने अन्त.करण से भय का सस्कार निकालकर निर्भयता लानी चाहिए। इतना न कर सको तो भी कम से कम इन कोमलमति बालको के हृदय मे तो भय का सचार मत करो।

जिस कृष्ण के विषय मे यह कहा जा सकता है कि उन्होने जनमते ही पूतना को मार डाला था, उन्ही कृष्ण का भजन करते हुए भी लोग डाकिनी से डरते हैं, यह कितनी लज्जा की बात है ! जब तक आप लोगो के दिल से ऐसा मिथ्या भय नही जायगा, परमात्मा का पता लगना मुश्किल है।

प्राचीनकाल के श्रावक देवता, गधर्व, राक्षस आदि किसी से नही डरते थे। दो उगलियो पर जहाज उठाकर देवता आकाश मे ले गया और उसने वही मे पटक देने का भय दिखाया। तब भी श्रावक के हृदय मे भय का सचार नही हुआ। सुदर्शन सेठ श्रावक ने अर्जुनमाली के मुद्गरो का जरा भी भय नही खाया, इसका क्या कारण है ? प्राचीनकाल के श्रावक इतने निडर और आजकल के श्रावक इतने डरपोक क्यो है ? इसमे क्या रहस्य है ? इसमे रहस्य यही है कि पहले ऐसे शब्द सुनाये जाते थे, ऐसी शिक्षा दी जाती थी कि राक्षस के सन्मुख दिखाई देने पर भी भय नही होता था। इसके विपरीत आज ऐसे शब्द सुनाये जाते है—

ऐसे सस्कार डाले जाते है कि लोग कल्पना के भूत से भी भयभीत हो जाते हैं ! निर्ग्रन्थ प्रवचन के मानने वाले श्रावक इस प्रकार डरपोक हो, यह कितनी कायरता है ।

पहले के लोग डरना तो दूर रहा, सहधर्मी की सेवा करके पुण्य बाधते थे और अब नगण्य बात के लिए सहधर्मी की ही खराबी करने को तैयार हो जाते हैं ! और चाहे कोई स्वार्थ हो या न हो, केवल रोष मे आकर सहधर्मी को हानि पहूचाने के लिए कटिबद्ध हो जाते हैं । ऐसे लोग अगर समकित पावे भी तो कैसे पावें ? भाइयो, इस बात की प्रतिज्ञा करो कि कम से कम अकारण किसी सहधर्मी को या किसी भी अन्य मनुष्य को कष्ट न देंगे ।

जो बिना कारण दूसरे की जड काटने को तैयार रहता है, उसे आत्मा को 'अभय' बनाने का उपदेश किस प्रकार लग सकता है ? बिना मतलब दूसरे का अनिष्ट करके क्रोध का पोषण करना कितना अनुचित है, इस बात का विचार करो ।

प्राचीनकाल मे मतलब होने पर भी काका और भतीजे दिन भर युद्ध करते और रात को एक दूसरे की सेवा करते थे । मेवाड के पृथ्वीराज और सूरजमल को देखो । वे दिन भर लडते और रात को एक साथ भोजन करके एक दूसरे के घावो पर पट्टी बाधते थे और अगामी दिन के लिए सावधान रहने की आगाही करते थे ! एक वह

भी मनुष्य थे और एक आप हैं कि कर तो कुछ भी नही सकते, फिर भी औधा–सीधा करने की नियत रखते हैं। इसी प्रकृति के कारण आपका क्षत्रित्व चला गया और कायरता आ घुसी है !

दो कुत्ते आपस मे लडते हैं। उनमे जो छोटा और निर्बल होता है वह हार कर बडे का कुछ बिगाड नही कर सकता, इसलिये छोटे-छोटे पिल्लो पर ही अपना क्रोध निकालने लगता है। यही स्थिति आज मनुष्य-ससार मे दिखाई देती है। जो बडो का कुछ बिगाड नही सकते, उनसे जो हार मान जाते हैं, वे गरीबो पर या स्त्री-बच्चो पर टूट पडते हैं। मगर यह लक्षण वीरता का नही, कायरता का है। मैं आशा करता हूँ कि यह बात कभी न कभी आप लोगो के हृदय मे आएगी और आपको कल्याण का मार्ग सूझेगा। मैं अपनी इसी आशा के सहारे अपने हृदय के उद्‌गार आपके पास तक पहुचा रहा हूँ। मित्रो ! अपने मन को उच्च कोटि पर लाओ तो कल्याण जल्दी होगा।

वेदव्यास कहते हैं—

नित्यानुभूतिनिजलाभनिवृत्ततृष्ण,
श्रेयस्य तद्रचनया चिरसुप्तबुद्धे।
लोकस्य य करुणयाऽभयमात्मलोक—
माख्यान्नमो भगवते ऋषभाय तस्मै ॥

बहुत दिनो से सोये हुए लोगो को जगा दिया। जिस

धर्म का अठारह कोडाकोडी वर्षों से लोप हो गया था, उस धर्म को भगवान् ऋषभदेव ने फिर प्रकट किया।

[२]

करूं मैं सेव ऋषभदेव प्रथम जिनन्दा,
मरुदेवी मात तात नाभि के नन्दा ॥करूं०॥

भगवान् ऋषभदेव की इस प्रार्थना में अपूर्व बात मिलती है। इस पर यहां विचार करना है। इस भजन के द्वारा आत्मा को शिक्षा दी गई है कि :—

करूं मैं सेव ऋषभदेव प्रथम जिनन्दा।

हे आत्मन्! मैं भगवान् ऋषभदेव की सेवा करने का निश्चय करता हूँ। वे ऋषभदेव कौन हैं?

मरुदेवी मात तात नाभि के नन्दा।

वे महारानी मरुदेवी की आखो के तारे और महाराज नाभि के कुल के चन्द्रमा हैं।

इनकी सेवा करने से क्या लाभ है? इस प्रश्न पर जरा विचार कीजिए। सेवक और सेव्य मे भेद है। जो सेवा करता है वह सेवक कहलाता है और जिसकी सेवा की जाती है वह सेव्य कहलाता है।

प्रश्न हो सकता है कि सेवा तो प्रत्येक की करनी

चाहिए। जो सेवक है वह सेव्य और असेव्य का भेद क्यो करे ? फिर जो सेवा-आराधना करने के योग्य हो, उसी की सेवा की जाय अन्य की नही, इस प्रकार का भेदभाव करना तो उचित नही है। हा, जिसको सेवा की आवश्यकता है उसकी सेवा पहले करनी चाहिए। उदाहरणार्थ एक आदमी सशक्त है और दूसरा अशक्त है, तो सेवाधर्मी मनुष्य पहले अशक्त की सेवा करेगा, क्योकि उसे सेवा की आवश्यकता है।

मान लीजिए, किसी माता के पाच पुत्र हैं। उनमें एक छोटा है जो पडा रहता है और उसमे खाने की शक्ति नही है, दूसरा रोगी रहने से अशक्त है, तीसरा अपग या अन्धा है, चौथा शक्तिमान है किन्तु उसकी शक्ति का अभी विकास नही हुआ है, पाचवा शक्तिमान् भी है और उसकी शक्ति का विकास भी हो चुका है। माता की भावना सभी पुत्रो पर समान है। वह पाचो की सेवा करेगी, किन्तु जो अशक्त हैं— असमर्थ हैं, उनकी सेवा पहले करेगी।

सेवा के मुख्य दो प्रयोजन हैं—अशक्त की सेवा अशक्त को शक्ति देने के लिए की जाती है, दूसरे प्रकार की सेवा का प्रयोजन यह होता है कि मैं स्वय अशक्त हूँ, इसलिए मुझे शक्ति मिले। भगवान् की सेवा उन्हे अशक्त समझकर नही की जाती वरन् अपने को अशक्त मानकर शक्ति को प्राप्त करने के लिए की जाती है।

जैसे सूर्य को देखने वालो की गरज नही है, बल्कि

देखने वालो को ही सूर्य की गरज है, सरोवर को प्यासे की जरूरत नही है, बल्कि प्यासे को सरोवर की जरूरत है, कपडे को पहनने वाले की परवाह नही वरन् पहनने वाले को ही कपड़े की आवश्यकता है, इसी प्रकार भगवान् को भक्त की—सेवक की गरज नही किन्तु भक्त को ही भगवान् की आवश्यकता है। तात्पर्य यह कि जब जगत् के इन छोटे-छोटे पदार्थों को ही तुम्हारी गरज नही है तो जगत् के नाथ, जगदीश्वर भगवान् को तुम्हारी क्या गरज हो सकती है ?

प्यासे को सरोवर की आवश्यकता है, किन्तु जिस सरोवर में जल हो उसी की आवश्यकता रहती है, निर्जल सरोवर से प्यासे का प्रयोजन पूरा नही होता। इसी प्रकार जो कपडा, कपडा पहनने का प्रयोजन पूरा करता है, उसी की अपेक्षा की जाती है। साराश यह कि साधारणतया जीवनोपयोगी पदार्थों के व्यवहार मे भी इस बात की अपेक्षा रखी जाती है कि वे हमारे प्रयोजन को पूरा करे। इस प्रकार जब इन पदार्थों की भी छानवीन की जाती है तो क्या इस बात की छानवीन नही करनी चाहिए कि अनादि काल से अशक्त और दुखो का पात्र बने हुए इस आत्मा को किसकी सेवा से लाभ होगा ? इसीलिए कहा है।

हे प्रभो ! अनादि काल से मेरे गले मे यम की फासी पडी हुई है। काल चौरासी के चक्कर मे घुमा रहा है। अब आप अपनी भक्ति मुझे दीजिए। जिससे मैं—

करू मैं सेव ऋषभदेव प्रथम जिनन्दा।
मरुदेवी मात तात नाभि के नन्दा ॥

जिस कठ मे आदिनाथ की भक्ति है उस कठ मे यम की फासी नही लग सकती। अब तक के जन्म-मरण का कारण यही था कि जिसकी भक्ति करनी चाहिए थी, उसकी भक्ति नही की और जिनकी भक्ति की वे स्वय जन्म-मरण के चक्कर मे पडे हुए थे।

प्रभो! मेरी अपनी शक्ति से बन्धन नही टूटे है! इसलिए मैं आपकी भक्ति चाहता हूँ।

मित्रो! वेदव्यास ने भी जिनकी प्रार्थना की है वही भगवान् ऋषभदेव तुम्हारे फन्दे को काटने मे समर्थ हैं। तुमने भगवान् ऋषभदेव की भक्ति की होती तो अवश्य यम के फन्दे से मुक्त हो गये होते। मगर तुम तो उनकी भक्ति मे लगे रहे जो स्वय जन्म-मरण से नही छूटे हैं। ऐसी स्थिति मे तुम्हारा छुटकारा कैसे होता ?

सूर्य तो नित्य उदित होता है। उसका प्रकाश पाकर जिन्हें काम करना हो, कर लें। इसी प्रकार परमात्मा की लोकोत्तर शक्ति के सहारे आत्मा का कल्याण करना हो तो कर लो। जो अवसर मिल गया है, सभव है फिर कभी न मिले।

अवसर वेर वेर नहिं आवे!

२- भगवान् अजितनाथ

प्रार्थना ।

[कुविसन मारग माथे रे धिग-धिग वह–देशी]

श्री जिन अजित नमू जयकारी, तू देवन को देवजी ।
जितशत्रु राजा ने विजया राणी को, आतमजात तुमेवजी ॥
श्री जिन अजित नमूं जयकारी ॥१॥

दूजा देव अनेरा जग मे, ते मुझ दाय न आवेजी ।
तह मन तह चित्त अमने, तू हिज अधिक सुहावे जी ॥२॥

सेव्या देव घणा भव-भव मे, तो पिण गर्ज न सारीजी ।
अब के श्री जिनराज मिल्यो तू, पूरण पर-उपकारीजी ॥३॥

त्रिभुवन मे जस उज्जवल तेरो, फैल रह्यो जग जानेजी ।
वन्दनीक पूजनीक सकल को, आगम एक बखानेजी ॥४॥

तू जग जीवन अन्तरजामी, प्राण आधार पियारोजी ।
सब विधि सायक सत सहायक, भक्त वत्सल व्रत थारोजी ॥५॥

अष्टसिद्धि नवनिधि को दाता, तो सम और न कोईजी ।
बधे तेज सेवक को दिन-दिन, जेथतेथ जय होईजी ॥६॥

अनन्त-ज्ञान-दर्शन सम्पत्ति ले, ईश भयो अविकारीजी ।
अविचलभक्ति 'विनयचद' को दो, जाणु रीझ तुम्हारीजी ॥७॥

परमात्मा के एक-एक नाम मे एक-एक अपूर्व गुण भरा हुआ है। उस नाम को स्मरण करने से उस गुण का स्मरण हो जाता है और प्रार्थना करने मे विशेष सुविधा होती है। भगवान् का 'अजातनाथ' नाम भी एक अपूर्व गुण शक्ति का स्मरण कराने वाला है। उनके नाम मे क्या यथार्थता है, यह बात समझ लेने से कीर्तन-भजन करने वाले को उस नाम के बहुत-से गुण आसानी से समझ मे आ सकते हैं।

'अजित' का अर्थ है—जयकारी। जो किसी के द्वारा जीता न गया हो और जिसने सबको जीत लिया हो, जिसकी विजय चरम और परम विजय हो, वह 'अजीत' कहलाता है।

कोई मनुष्य लडाई करके किसी को जीत लेता है तो वह एक को जीतने वाला कहा जाता है ससार को जीतने वाला नही। इसके अतिरिक्त विजेता ने जिस एक को हराया है, उस हारे हुए व्यक्ति के हृदय मे विजेता के प्रति विद्वेष का भाव उत्पन्न हो जाता है। वह दिन-रात सताप किया ही करता है। अतएव एक को जीतना भी वास्तविक जीतना नही है। विजेता की सच्ची विजय वह है जिसमें पराजित व्यक्ति विजेता के प्रति मनसा, वाचा, कर्मणा वैरभाव न रक्खे। अर्थात् पराजित, विजयी का चेरा बनकर उसका गुण-गान करने लगे। यही जीतना सचा जीतना है। 'अजीत' ऐसे ही विजेता हैं। पर 'अजीत' की व्याख्या इतने ही मे

पूर्ण नही हो जाती । उसकी व्याख्या के लिए काफी समय की आवश्यकता है ।

मैंने जिनकी प्रार्थना 'जिन अजित' कह कर की है उन्होने राग-द्वेष को पूरी तरह जीत लिया है और राग-द्वेष को जीतने के कारण ही उनका नाम 'अजित' है ।

अर्जुनमाली, सुदर्शन सेठ का शत्रु था, परन्तु सुदशन सेठ ने उसे जीत लिया । उनके जीतने की पद्धति निराली ही थी और वह यह थी कि सुदर्शन अपने हृदय मे अर्जुन-माली के प्रति किंचिन्मात्र भी द्वेष नही लाये । यही नही, बल्कि पहले दो करण तीन योग से द्वेष का त्याग था, पर मुकाबिले के समय तीन करण और तीन योग से द्वेष का त्याग कर दिया । अर्जुन, सुदर्शन को मारने चला था, परन्तु उसी का क्रोध मारा गया !

इसे कहते है विजय । अहिंसा की प्रबल भावना के द्वारा जो विजय प्राप्त की जाती है, वह विजय अन्तिम और परिपूर्ण होती है तथा विजेता और विजित दोनो के कल्याण का द्वार खोल देती है । उस विजय मे विजेता तो विजयी होता ही है, पराजित होने वाला भी विजयी होता है । वहा सघर्ष का उपशम ही नही, विनाश हो जाता है और विजेता तथा विजित—दोनो मे से मगलमय मैत्री की स्थायी स्थापना होती है ।

सुदर्शन को भली-भाति ज्ञात था कि एक आत्मा

दूसरे आत्मा का शत्रु नही हो सकता। शत्रुता करना आत्मा का विभाव है—विकार है। वस्तुत आत्मा के दुर्गुण ही शत्रु हैं। आत्मा तो स्वभावत. प्रत्येक दशा मे निर्मल है।

क्रोधरूपी शत्रु का यदि क्रोध से ही बदला लिया जायगा तो शत्रुता बढेगी, घटेगी नही। कीचड से भरा हुआ पैर कीचड से साफ नही होता, इसी प्रकार क्रोध से क्रोध की उपशान्ति नही होती। शास्त्र मे कहा है—

उवसमेण हणे कोहं।

अर्थात् उपशान्त होकर क्रोध को जीतना चाहिए।

जब तुम अपने क्रोध को जीत लोगे तो तुम्हारे विरोधी का क्रोध आप ही समाप्त हो जायगा। जैसे अग्नि को ईंधन न मिलने पर वह आप ही शान्त हो जाती है, उसी प्रकार क्रोध को, क्रोध का ईंधन न मिले तो वह भी नष्ट हो जाता है।

यह विजय का निष्कटक और सरल मार्ग है। धर्म-निष्ठ बनना है तो इसी मार्ग पर चलो। जब तक इस राज-मार्ग पर नही चलते, समझ लो कि धर्म की परिभाषा से अनभिज्ञ हो।

जो अपने ऊपर मुद्गर लेकर आवे उसे अपनी आत्मा के तुल्य समझना और मित्र बना लेना कोई सहज काम नही है। सुदर्शन मे ऐसी मति थी। इसी कारण अर्जुन उनके अधीन हो गया। अब जरा विचार कीजिए कि जिसके भक्त मे—लघु भक्त मे—इतना जोश है कि उसने वैरी को

भी अपनी मैत्रीभावना के द्वारा अपने वश मे कर लिया, उस परमात्मा मे कितनी क्षमता न होगी ? अर्थात् उसने सारे ससार को इसी प्रकार जीत लिया है, तभी तो उनका नाम परमात्मा है ।

त्रिभुवन में जस उज्ज्वल तेरो,
फैल रह्यो जग जाणे जी।

जिसके लिए त्रिभुवन के प्राणी एक भावना से मित्र रूप हो गये हैं, उस त्रिभुवनपति को त्रिभुवन वन्दना करता है ।

अगर आपको विजयशाली बनना है तो विजय के महान् सदेश-वाहक, विजय का अमोघ मन्त्र देने वाले, विजय के मगल-मार्ग पर प्रयाण करके उस पथ को पुनीत करने वाले, विजयमूर्त्ति श्री अजितनाथ भगवान् को अपने हृदय-मन्दिर मे स्थापित करो । क्रोध को जीतो । द्वेष को नष्ट करो । मैत्री भावना का प्रदीप प्रज्वलित करो । चित्त मे किसी प्रकार का विकार न रहने दो । अगर आपने इतना कर लिया तो आप विजयशाली हैं । विश्व की कोई प्रचण्ड से प्रचण्ड शक्ति भी आपको पराजित नही कर सकती , आप आत्मविजयी अर्थात् विश्वविजयी बन जाएँगे । उस अवस्था मे आप मे और भगवान् अजितनाथ मे कोई अन्तर नही रह जायगा ।

[ख]

अजित जिनन्दजी सो लगन लगावे ।
सुख-सम्पति वछित फल पावे ।।

अजितनाथ भगवान् की यह स्तुति है। परमात्मा अजितनाथ के साथ अपनी लगन लगा देने पर प्राणी सुख-सम्पत्ति के लिए सौभाग्यशाली बनता है। मगर प्रश्न यह है कि लगन लगे कैसे ?

यो तो सभी प्राणियो की इच्छा रहती है कि परमात्मा के प्रति प्रेम रहे तो अच्छा ही है। मगर परमात्म-प्रेम का मार्ग कौन सा है, इस बात को समझना आवश्यक है। किस रास्ते से भगवान् से गाढा प्रेम होकर प्रीति बनी रहे, यह बतलाने के लिए ही उपदेश देने की आवश्यकता होती है।

प्राणी प्रत्येक वस्तु से प्रीति करता है । यह उसकी एक वृत्ति है। मगर यह नही भूलना चाहिए कि जैसी वस्तु से प्रीति की जाती है, उसे वैसा ही फल मिलता है। सासारिक पदार्थों से जो प्रीति होती है वह भोग-विलास के लिए होती है और उसका फल मोह की वृद्धि होता है । मोह ससार-परिभ्रमण का मुख्य कारण है। अतएव जो लोग ससार-भ्रमण से बचना चाहते हैं उन्हे भोग-सामग्री सम्बन्धी प्रीति का त्याग करना ही उचित है । मगर वह प्रीति निरालम्बन नही रह सकती। उसका आलम्बन परमात्मा को बनाना चाहिए । परमात्मा को आलम्बन बनाकर जगाई हुई प्रीति परमानन्द का कारण

है, असीम शांति और अक्षय सुख का स्रोत है, शाश्वत कल्याण का हेतु है और ससारभ्रमण का अन्त करने वाली है। इसलिए विवेकशील पुरुष अपनी प्रीतिरूप शक्ति का मुँह भोगसामग्री की ओर से हटाकर परमात्मा की ओर फेर देते हैं। ऐसा करके वे जिस निराकुलता का अनुभव करते हैं, वह भोगलोलुप, विषयो के दास, इन्द्रियों के गुलाम लोगो को कभी नसीब नही होती। वह निराकुलता कहने की वस्तु नही है, अनुभव से ही उसका मजा लिया जा सकता है।

प्रीति अनन्ती पर थकी,
जे तोडे हो ते जोडे एह के।
परम पुरुष थी रागता,
एकता हो दाखे गुण-गेह के॥

इस विषय मे यह सूचना दी गई है कि पुद्गलो से जितना प्रम है, सासारिक पदार्थो से जितनी प्रीति है, उसे तोडकर परमात्मा मे प्रेम लगा दे तो आत्मा, परमात्मा के साथ एकता प्राप्त कर सकता है।

साँसारिक पदार्थो से प्रीति का नाता तोडकर परमात्मा के साथ जोडने के लिए ज्ञान की आवश्यकता है। ज्ञान के अभाव मे मनुष्य भ्रम मे पड जाता है। भूलकर उल्टे मार्ग पर चला जाता है। अत' वस्तुस्थिति को समझना चाहिए। आत्मा से पूछना चाहिए कि प्रीति समान से की जाती हे

या हीन और तुच्छ से ? राजा अगर किसी नीच पुरुष के साथ प्रीति करे तो उसका राजपद शोभा नही देता। इस बात को दूर रख कर सासारिक दृष्टि से देखो तो भी मालूम हो जाता है कि जैसे की प्रीति तैसे का साथ ही शोभा देती है। कहा भी है—'समाने शोभते प्रीतिः' अर्थात् समानशील वाले और समान आदतो वालो मे ही मित्रता होती है। विषम—असमान के साथ की हुई प्रीति न सुखदाई होती है, न शोभा देती है और न स्थायी ही होती है। लहसुन और कस्तूरी को मिलाया जाय तो कस्तूरी की दुर्दशा ही होगी। इसी प्रकार असमान के ससर्ग से उत्तम वस्तु का भी मान घट जाता है।

इतना समझ लेने के पश्चात् अब देखना चाहिए कि आत्मा के समान शील-गुण वाला कौन है, जिसके साथ उसे प्रीति करनी चाहिए ? आत्मा चिन्दानन्द स्वरूप है। पुद्गलो मे न चित् है और न आनन्द है। अतएव पुद्गल आत्मा के समान गुण वाले नही है। पुद्गल रूपी हैं, आत्मा अरूपी है। पुद्गल सडने-गलते और नष्ट होते हैं, आत्मा अजर-अमर अविनाशी है। पुद्गल स्थूल है, आत्मा सूक्ष्म है। दोनो एक दूसरे से विपरीत धर्म वाले हैं। दोनो मे कोई समानता नही है। ऐसी स्थिति मे पुद्गलो के प्रति आत्मा की प्रीति कल्याणकारिणी नही हो सकती।

जो पुद्गल बडे-बड़े चक्रवर्त्तियो के अधिकार मे नही

चले वह तेरे अधिकार मे कैसे चलेंगे ? जब तू यह जानता है तो पुद्गलो को समेटने मे, उन्हे अपने अधिकार मे करने मे क्यो लगा है ?

दूसरी ओर देखे तो स्पष्ट मालूम हो जायगा कि परमात्मा के साथ आत्मा की पूरी समानता है। जो गुण, जो स्वभाव और जो शील आत्मा का है, वही परमात्मा का है। परमात्मा का स्वभाव प्रकट हो गया है। परमात्मा ने अपने समस्त आवरणो को हटा दिया है और आत्मा अभी तक हटा नही पाया है। यही दोनो मे अन्तर है। मगर यह अन्तर स्वाभाविक नही है, मौलिक नही है। वस्तुस्वभाव से दोनो एक हैं। अतएव आत्मा की प्रीति परमात्मा के साथ होना ही उचित है।

यह सब समझकर भी, अरे आत्मा ! तू किस चक्कर मे पडा है ? तू परमात्मा को भूलकर पुद्गलो के साथ प्रीति का नाता जोडता है ! क्या तेरे लिए यही उचित है ?

कल्पना करो, तुम्हारे घर किसी का विवाह है। जिस दिन विवाह होने वाला है, उसी दिन कोई मेहमान जाना चाहता है और तुम्हारे रोकने पर भी नही रुकता है, तो तुम्हारे मन मे क्या विचार उत्पन्न होगा ? यही न कि यह समय जाने का नही, आने का है। अगर जाते हैं तो भविष्य मे इनके साथ सम्बन्ध नही रक्खेंगे। मेहमान आपका कोई अपमान या अमगल करके नही जा रहा है, फिर भी आप

आगे उससे सरोकार न रखने का विचार कर लेते है। किन्तु ऐसे अवसर पर जब यह पुद्गल छूटते है तब साक्षात् अमगल दीखता है। पुत्र के विवाह के समय पिता मर जाय तो अमगल दीखता है या नही ? फिर उस मेहमान के विषय मे आप जो विचार करते हैं, वही विचार इन पुद्गलो के विषय मे क्यो नही करते ? क्यो नही सोचते कि इनके साथ भविष्य मे प्रीति नही रक्खेंगे ?

बुद्धिमान पुरुष पुद्गलो के स्वभाव का विचार करके परमात्मा के साथ प्रीतिसम्बन्ध स्थापित करते हैं, और जो ऐसा करते है वही वास्तव मे बुद्धिमान हैं।

परमात्मा का आदेश है कि पुद्गलो से प्रीति हटाने पर ही मुझसे प्रीति हो सकती है। अगर पुद्गलो से प्रीति करोगे तो मुझसे प्रीति नही हो सकेगी।

आत्मा चाहे सुख मे हो चाहे दुःख मे हो, साधु हो या गृहस्थ हो, कुछ भी हो और कही पर हो, हृदय मे शान्ति रखकर विकारो को निकाल दो, तो परमात्मा के साथ आप ही आप प्रीति जुड जायगी। किसी भी क्षेत्र और किसी भी काल मे यह प्रीति जोड़ी जा सकती है, चाहिए सिर्फ निर्मल अन्त.करण।

कई लोग परमात्मा के आगे लड्डू और ऊपर जेवर चढा कर परमात्मा से प्रीति जोडने का प्रयास करते हैं और कोई दूसरी दिखावटी क्रियाएं करके प्रीति जोड़ना चाहते हैं, मगर

वह मार्ग सही नही है । गीता मे भी कहा है :—

अद्वेष्टा सर्वभूताना, मैत्र करुण एव च ।
निर्ममो निरहकार, समदुःखसुख क्षमी ।

—अ० १२

अर्थात् जो किसी भी प्राणी से द्वेष न रख, उनसे मैत्रीभाव रखता है, करुणाशील होता है, ममता और अहकार से रहित होता है, वही परमात्मा से प्रीति करता है। आत्मा जैसे ही इस स्थिति में पहुंची कि परमात्मा के साथ प्रीति जुड़ी।

आत्मा का परमात्मा के साथ ज्यो-ज्यो प्रेम बढता चला जाएगा त्यो-त्यो आत्मिक और सासारिक सुख भी बढता जायगा।

कहा जा सकता है कि अभी हमे सासारिक पदार्थों की चाह है। जब तक यह चाह नही छूटती तब तक परमात्मा के साथ प्रीति कैसे जुड़ सकती है ? इसका उत्तर कठिन नही है। थोड़ा-सा सूक्ष्म विचार करने से इस प्रकार का स्वय ही समाधान किया जा सकता है। बात यह है कि आप इन सासारिक वस्तुओ मे जितनी आसक्ति रक्खोगे, उतनी ही यह आपसे दूर भागेगी। आसक्ति रखने पर कोई वस्तु मिल भी जाती है तो वह दु.ख का कारण बनती है। उदाहरणार्थ— उदार पुरुष के पास धन होता है तो वह उस धन से सुख पाता है। इसके विपरीत कृपण पुरुष उसी धन से दुख पाता है और मरते समय तक हाय-हाय करता है। इसका कारण यही है कि

उदार पुरुष धन के प्रति उतनी आशक्ति नही रखता, जितनी कृपण रखता है। इससे स्पष्ट है कि आसक्ति दुःख का कारण है।

साराश यह है कि बाह्य वस्तुओ मे जितनी-जितनी आशक्ति कम होती जायगी, वस्तुएँ वैसे-ही-वैसे बिना बुलाये आएँगी और जैसे जैसे अधिक आशक्ति रक्खोगे, तैसे तैसे वह दूर भागेंगी।

परमात्मा के भजन से दो लाभ हैं—आत्मिक सुख और सासारिक सुख। सुबाहुकुमार को आप ही आप सब पदार्थों की प्राप्ति हुई। वह पदार्थ मे आशक्त नही थे, इस कारण पदार्थ भी मिलते गये और उनकी आत्मा भी ऊँची चढती गई।

जो वस्तु राजा से मिल सकती है, उसके लिए किसी नीच के पास जाने की क्या आवश्यकता? अमृत के मिलते हुए जो रोग उससे मिट सकता है, उसके लिए विष, जो धोखे की चीज है, क्यो पिया जाय? परमात्मा की प्रीति मे किसी प्रकार का धोखा नही है और उससे ससार के समस्त दुःख मिट जाते हैं। ऐसी स्थिति मे दुःखो को दूर करने के लिए साँसारिक पदार्थों का सेवन करना उचित नही है, क्योकि उनके द्वारा अकल्याण होने का खतरा है।

[ग]

श्री जिन अजित नमूं जयकारी,

तू देवन को देवजी ॥

भगवान् अजितनाथ की इस प्रार्थना मे अनेक ऐसी बातें हैं, जिन पर विशेष रूप से ध्यान खीचने की आवश्यकता ह । उन सब पर अगर सक्षेप मे भी प्रकाश डाला जाय तो पर्याप्त समय लगेगा । अत. आज एक ही बात पर आपका ध्यान आकर्षित करना है । इस प्रार्थना मे भगवान् अजितनाथ के विषय मे कहा गया है—

तू देवन को देवजी !

अर्थात्—अजितनाथ भगवान् देवो के भी देव हैं ।

देव प्राय स्वर्ग मे रहते हैं और उनकी गति मनुष्य गति से अलग गिनी गई है । मनुष्य की अपेक्षा देवो का सुख असख्यात गुणा है । उनकी ऋद्धि और सम्पदा के आगे मानवीय ऋद्धि और सम्पदा की कोई गिनती ही नही है । साधारणतया मनुष्य देव होने की आकाक्षा करते हैं । फिर भगवान् अजितनाथ को देवो का भी देव क्यो कहा गया है ? अजितनाथ तो मनुष्य गति मे उत्पन्न हुए थे । वे देवों के देव कैसे हुए ? इस प्रश्न पर यहा विचार करना है ।

साधारण मनुष्यो के मस्तिष्क मे भोगोपभोगो और सासारिक सुखो के प्रति जो विशिष्ट आकर्षण देखा जाता है उसी के कारण यह प्रश्न उठता है । अगर आत्मिक दृष्टि से देखा जाय तो स्वर्गलोक की अपेक्षा मर्त्यलोक मे और देवभव की अपेक्षा मनुष्यभव मे अधिक विशिष्टता है , त्रिभुवननाथ का जन्म स्वर्ग मे नही होता, मर्त्यलोक मे ही होता

है । स्वर्ग मे इन्द्र है पर भगवान् वहाँ नही जनमते । श्रीस्थानागसूत्र मे कहा है कि देवता तीन बातो की कामना करते हैं ।

देवता प्रथम तो मनुष्य जन्म चाहते हैं । अब विचार करना चाहिए कि मनुष्य जन्म मे क्या विशेषता है ? क्या मनुष्य के शरीर मे हीरे-पन्ने जड़े हैं ? कदाचित् हीरे-पन्ने भी जडे हो तब भी क्या मर्त्यलोक स्वर्ग की बराबरी कर सकता है ? फिर देवता क्यो मनुष्य-जन्म चाहते हैं ?

दूसरी कामना देवो की यह है कि मनुष्य-जन्म मे भी हम आर्यकुल मे उत्पन्न हो । अनार्यकुल मे हमारा जन्म न हो ।

तीसरी कामना देवो की यह है कि हमारा जन्म आर्यक्षेत्र मे ही हो, जहा साक्षात् भगवान् के दर्शन होते हैं ।

देवता आर्यकुल मे जन्म चाहते हैं, अनार्यकुल मे नही । लेकिन आर्य कौन है और अनार्य किसे कहना चाहिए ? जो बुरे कामो से बचें, जिनकी नैसर्गिक भावना ही बुरे कामो से बचने की हो वे आर्य कहलाते हैं और जिन्हे बुरे काम प्रिय हो, जो बुरे कामो से घृणा नही करते हो वे अनार्य हैं ।

मित्रो ! जरा सावचेत होकर खयाल करो कि देवगण भी आर्यकुल और आर्यक्षेत्र की कामना करते हैं । आज लोग फ्रास और अमेरिका आदि देशो की बडाई करते हैं और पेरिस पर तो लट्टू हैं, किन्तु सच पूछो तो वे भारतवर्ष की एक झोपडी की भी बराबरी नही कर सकते । भारत

के झोंपड़ियो मे रहने वालो में भी अभी बहुत से ऐसे निकलगे जो अपना सिर भले ही दे दे किन्तु किसी जीव की हत्या नही करेंगे। स्त्रियां अपने प्राण भले दे दे मगर शील हर्गिज न देंगी। और फ्रास मे? वहा शील का कोई महत्त्व ही नहीं गिना जाता। बडे-से-बड घर की स्त्रिया भी शील खोने मे घृणा नही करती। अब दोनो की तुलना करके देखो कि भारत अच्छा देश है या फ्रास आदि अन्य देश अच्छे हैं?

एक सुन्दर महल है। सगमरमर का उसका फर्श है। दीवाले चिकनी और मनोहर चित्रो से सुशोभित हैं। उन पर सोने आदि से मीनाकारी की गई है। एक ओर ऐसा सुन्दर महल है और दूसरी ओर काली मिट्टी का खेत है। इन दोनो मे से आप किसे बड़ा समझते हैं?

'खेत को!'

क्यों? महल तो बडा सुन्दर है। उसमे सुगन्ध भी आती है। खेत न सुन्दर है और न उसमे से सुगन्ध भी आती है। फिर वह खेती के लिए महल को पसन्द करेगा या खेत को?

खेत को!'

क्योकि खेती खेत मे ही हो सकती है। महल सुन्दरता मे भले ही बड़ा प्रतीत हो, पर गहराई से विचार करो तो मालूम होगा कि उसकी सुन्दरता खेत के ही प्रताप से

है । खेत मे अन्न न पके तो महल कब तक टिकेगा ?

उस सुन्दर महल मे किसी आदमी को रखकर उसे खेत की कोई चीज न दो और उससे कहो- तुम महल के सौन्दर्य का उपभोग करो । महल मे मौज करो । तो उसे आनन्द मिल सकेगा ?

'नही ।'

इस प्रकार अगर तुलनात्मक दृष्टि से विचार किया जाय तो स्पष्ट मालूम होने लगेगा कि खेती ही महल से बढकर है । खेत से मनुष्य को जीवन मिलता है, महल से नही ।

इस मर्त्यलोक मे सब औदारिक शरीर के धारक प्राणी हैं । यहा के मनुष्यो का शरीर हाड मास आदि सात धातुओ से बना है । यहाँ रोग-शोक आदि भी लगे हुए हैं । इसके विपरीत देवगण वैक्रियशरीरी हैं—इच्छानुसार रूप बना सकते हैं । न उनको रोग है, न शोक है । इस दृष्टि से देव महल के समान सुन्दर हैं । इस सुन्दरता की तराजू पर अगर देव और मनुष्य को तोला जाय तो देव मनुष्यो से घृणा करें । इसके अतिरिक्त देव विमानो मे जो स्वच्छता है, वैसी स्वच्छता भी यहाँ कहाँ ! यहा तो अशुचि, दुर्गन्ध आदि सभी कुछ है । फिर देवलोक छोटा और मनुष्य लोक बडा कैसे ?

यही विचार करने की आवश्यकता है । विचार करने से जान पडेगा कि पुण्य की खेती करने का स्थान मर्त्यलोक

ही है। मर्त्यलोक की कमाई से देवलोक मिलता है। देवलोक की कमाई से देवलोक नही मिलता।

अगर मर्त्यलोक की कमाई देवलोक में न हो तो देवलोक भयकर हो जाय। वहा यही का पुण्य है। इसी कारण देवगण मनुष्य होने की कामना करते हैं, जैसे किसान आषाढ के लिए लालायित रहता है। किसान चाहता है, कब आषाढ आवे और कब हमारी खेती हो! देव लालायित रहते हैं कि कब हम मनुष्य जन्म धारण करें और पुण्य की खेती उपजाएँ!

मित्रो! इसी मर्त्यलोक मे सम्यग्ज्ञान उत्पन्न होकर सवर तथा निर्जरा आदि का धर्म होता है देवलोक में नही। मनुष्य-जन्म ही साक्षात् परमानन्द की प्राप्ति का कारण है— कोई भी देव देवभव से परम पद को प्राप्त नही कर सकता। आध्यात्मिक विकास की चरम सीमा मनुष्यभव में ही प्राप्त होती है। देवगण मोक्षमहल की पहली सीढी तक ही चढ सकते हैं। आगे जाने का सामर्थ्य उनमे नही है, जबकि मनुष्य-भव से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है।

आपको मनुष्यजन्म, आर्यकुल और आर्यक्षेत्र आदि की वह सब सामग्री मिली है, जिसके लिए देवराज इन्द्र भी तरसता है। फिर भी अगर आप अपना कल्याण न करे तो कितने परिताप की बात है! आप लोगो को कल्याणमार्ग से विमुख देखकर ज्ञानियो को चिन्ता होती है। वे सोचते

हैं—यह अपना मनुष्यजन्म वृथा गवा रहे हैं, कौवे को रत्न फेक कर उडाने की मूर्खता कर रहे है। इसलिए कहता हूँ—भाइयो ! कुछ कल्याण के कार्य करो। बोलो—

श्रीजिन अजित नमूँ जयकारी,
तू देवन को देवजी।

प्रभो ! मैं तुझे नमन करता हूँ। कामी, क्रोधी, दभी, लोभी देव मुझे नही सुहाते। मुझे तू ही रुचता है। तू देवों का भी देव है। प्रभो ! मेरा भी नाथ बन। मुझे तार दे। मेरा कल्याण कर। मैं अपने को तेरे शरण मे अर्पित करता हूँ।

३- श्री सम्भवनाथ

प्रार्थना ।

[आज म्हारा पारसजी ने चालो वन्दन जइए-यह देशी]

आज म्हारा सम्भव जिन का, हित चित सु गुण गास्या ।
मधुर-मधुर स्वर राग अलापी, गहरे शब्द गु जास्यां राज ।।
आज म्हारा सम्भव जिन का, हित चित सु गुण गास्या ।१।

नृप "जीतारथ" 'सेना" राणी, ता सुत सेवक थास्यां ।
नवधा भक्तिभाव सो करने, प्रेम मगन हुइ जास्या राज ।।२।।

मन वच काय लाय प्रभु सेती, निसदिन सांस उसास्यां ।
सम्भव जिन की मोहनी मूरति, हिये निरन्तर ध्यास्यां राज ।।३।।

दीन दयाल, दीन बन्धु के, खानाजाद कहास्यां ।
तन धन प्राण समरपी प्रभु को, इन पर वेग रिझास्या राज ।।४।।

अष्ट कर्म दल अति जोरावर, ते जीत्या सुख पास्यां ।
जालम मोह मार को जामे, साहस करी भगास्या राज ।।५।।

ऊब्रट पंथ तजी दुर्गति को, शुभगति पथ समास्यां ।
आगम अरथ तणे अनुसारे, अनुभव दशा जगास्यां राज ।।६।।

काम क्रोध मद लोभ कपट तजि, निज गुणसु लव लास्यां ।
'विनयचन्द' सम्भव जि तूठ्यां, आवागमन मिटास्यां राज ।।७।।

आज म्हारा सभव जिनजी का हित चित से गुण गास्यां,
मधुर-मधुर सुर राग अलापी, गेहरे शब्द गुजास्या राज ॥आज०॥

परमात्मा से प्रेम का साधन क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि उत्कृष्ट से प्रेम करने के लिए उत्कृष्ट भाव होना चाहिए। गदी बातें गदे चलाव-यह सब मोह के प्रभाव से प्रिय हो रहे हैं। इन गदी बातो से और गदे चलाव से जब तक मोह न उतरे, परमात्मा से आत्मा का पूरा प्रेम नही जुडता।

महात्माओ ने और ज्ञानियो ने परमात्मा से प्रेम करने के उपाय बताये है। उन उपायो को भक्तो ने बालभाषा मे अपने साथियो को समझाया है जैसे—

आज म्हारा सभव जिनजी रा,
हित चित से गुण गास्यां राज।

अर्थात्–आज मैं अपने प्रभु का स्वच्छ हृदय से गुण-गान करूँगा। यहाँ, आज, शब्द विशेष ध्यान देने योग्य है। इस 'आज' का मतलब क्या है ?

दुनिया के लोग कहते हैं कि फला काम आज करूँगा। अमुक काम को आज ही कर डाले, कल की कौन जाने ? आज तो अपनी स्थिति, शरीर और बुद्धि आदि अनुकूल है, इसलिए जो आज न कर पाये तो कल क्या कर सकेंगे ? इसलिए जो सोचा है सो आज ही कर लो।

काल करे सो आज कर, आज करे सो अब ।
पल में परलय होयगो, बहुरि करोगे कब ।

इस प्रकार का अवसर साध कर दुनिया वाले बोध देते हैं कि किसी काम के लिए वृथा समय गँवाना उचित नही है ।

दुनियादारी के काम जो आज नही हुए, वह कल नही हो पाते, ऐसा जब दुनियादार सोचते हैं तो ज्ञानियों के हृदय मे भी यही बात उत्पन्न होती है कि—

आज म्हारा सभव जिनजी रा,
हित चित से गुण गास्यां राज ।

अर्थात्—आज मैं भगवान् का भजन करूंगा । अगर आज, जब कि शरीर आदि की स्थिति अनुकूल है, उसका भजन न कर सका तो फिर कब भजूंगा ?

जोधपुर मे वच्छराजजी सिंघी धनी और कुलवान् आदमी थे। पूज्य रघुनाथजी महाराज ने, जो फक्कड़ और ज्ञानी महात्मा थे, सिंघीजी से कहा—आपने मनुष्यजन्म पाया है। इस जन्म को पाकर कुछ कल्याण का भी काम करते हो ?

वच्छराजजी बोले—महाराज ! कल्याण का काम करके करना क्या है ? रहने को अच्छी हवेली है, सिंघी परिवार मे जन्म लिया है, जागीर है, स्त्री है, नौकर-चाकर आदि सभी कुछ है पहले बहुत कर आये हैं। अब क्या करना है ?

रघुनाथजी महाराज ने कहा– पहले कर आये सो तो ठीक है। उसका फल मिला ही है। परन्तु अब मर कर अगर कुत्ते हुए तो इस हवेली मे कोई आने देगा ?

वच्छराजजी –नही महाराज, फिर तो कोई नही आने देगा।

रघुनाथजी महा० – इसीलिए कहता हूँ कि कुछ कल्याण का कार्य करो। अभी नही करोगे तो फिर कब करोगे ?

मित्रो ! बुद्धिमान मनुष्य विचार करेगा कि पहले किया सो अब पाया। अगर अब न करेंगे तो क्या मिलेगा ? पहले कितने–कितने दु ख उठाये हैं, कौन-कौन-सी योनियाँ भुगती हैं, उन्हें देखते हुए आज जिस स्थिति में हो, उस स्थिति मे भजन न करोगे तो कल क्या करोगे ? कल की किसने देखी है। कल मर कर कही गधे, कुत्ते आदि हुए तो फिर क्या कर सकोगे ? इसीलिए ज्ञानी कहते हैं—

> आज म्हारा सभव जिनजी रा,
> हित चित से गुण गास्या।
> मधुर-मधुर राग अलापी, स्वर०
> गेहरे शब्द गुंजास्यां राज ॥

अर्थात् हम कल पर भरोसा न करके आज ही परमात्मा का भजन करेंगे और उसके भजन के मीठे-मीठे स्वर गुञ्जा देंगे। इस काम को भविष्य के लिए नही छोड़ेंगे। हम चाहे पढे-लिखे न हो, हम मे चाहे बुद्धि न हो, केवल

हमारी निष्ठा भगवान् के स्मरण में लग जाय तो फिर हमें भव सागर की चिन्ता नहीं।

भाइयो ! कल की कौन जानता है कि कल क्या होगा ? हाथ की माला हाथ मे ही रह जाती है और प्राण-पखेरू उड जाते हैं। भजन करने से विचार को भी पूरा कर पाने का समय तक नही मिलता।

आजकल माला भी कैसी फेरी जाती है ? :—

माला तो कर मे फिरे, जीभ फिरे मुख मांय।
मनडा तो चहु दिसि फिरे, सुमिरन यह न कहाय।

माला कही फिर रही है, जीभ कहीं फिर रही है और मन कही और ही जगह फिर रहा है ! ऐसा भजन भी कोई भजन है ?

माला फेरने की यह पद्धति गलत है, इतना ही नही, बल्कि माला फेरने का उद्देश्य भी अकसर गलत होता है। कोई किसी मतलब से माला घुमाता है और कोई प्रयोजन से फेरता है ! अधिकाश लोग तो रुपयो के लिए माला फेरते हैं। माला फेरते समय वे रुपयों का ही ध्यान करते हैं। ऐसे लोगो का तप, व्रत आदि भी प्रायः इसीलिए होता है। कल्दार की प्राप्ति ही उनके लिए भगवान् की प्राप्ति है। भला, ऐसे लोगो को परमात्मा के प्रति प्रीति कैसे हो ? मित्रो ! प्रेम का मार्ग बड़ा दुर्गम है। बिना कष्ट उठाये प्रेम का मजा नही मिलता। नि स्वार्थ होकर, बिना किसी

कामना के भगवान् का भजन करना ही सच्चा भजन है। ऐसा भजन करने वाले विरले ही मिलते हैं और वही भजन के असली फल को प्राप्त करते हैं।

दीनदयालु दीनबन्धु के,
खाना जाद कहास्या।
तन धन प्राण समर्पी प्रभु को,
इन पर वेग रिझास्या राज ॥

परमात्मा का सेवक बनने के लिए क्या होना चाहिए? परमात्मा को आप दीनदयाल कहते हैं। आप दीनदयाल के खानाजाद नौकर हैं। दीनदयाल वह कहलाता है जो गरीबो पर दया करे। परमात्मा के, जो गरीब पर दया करता है, आप खानाजाद नौकर हैं तो आपमे क्या लक्षण होना चाहिए? परमात्मा को दीन प्यारे लगते हैं और आपको कौन प्यारे लगते हैं? दीन या ढींग? दीन प्यारे लगते हो तब तो वह दीनदयाल तुम्हारा और तुम उसके सेवक, अगर ढींग प्यारे लगे तो क्या तुम उसके सेवक-नौकर कहला सकते हो? नही।

माया से माया मिली, कर कर लम्बे हात।
तुलसीदास गरीब की, कोइ न पूछे वात।

मित्रो! परमात्मा को प्रसन्न करना हो, उसके प्रेम जगाना हो तो वह तुम्हारे सामने मूर्त्तिमान खडा है। उसे अपना लो। दीन से प्रेम लगा कि समझ लो परमात्मा से

प्रेम लग गया । श्रो जो दीनो का गला काटने में हिचकता न हो, उन पर दया करना पाप समझे तो उस परमात्मा को दीनदयाल कहने का तुम्हे अधिकार नही है । ईश्वर से प्रेम बाधने का उपाय दोनो के प्रति हृदय मे दयाभाव रखना ही है । उन पर दया का भाव रक्खो श्रौर उनके दुःख को श्रपना ही दुख समझो । ऐसा करने पर तुम परमात्मा के खानाजाद सेवक कहला सकते हो ।

सभव है, आप मेरे कथन के श्रभिप्राय को न समझे हों । इसलिए मैं एक दृष्टान्त द्वारा आपको समझा देता हूँ।

किसी हाकिम के सामने मुकदमा पेश हुश्रा । हाकिम न्याय करने बैठा । वादी कहने लगा—गरीबपरवर, दीनदयाल, मेहरबान, दया करके न्याय कीजिए । मेरी इस पर इतनी रकम बाकी है । यह देता नही है । दया करके दिलवा दीजिए ।

प्रतिवादी कहता है दीनानाथ, मेरा उलटा इस पर इतना लेना बाकी है । कृपा करके दिला दीजिए ।

अब बतलाइए, हाकिम किस पर दया करे ?

इतने मे पहला कहता है— मेरा लेना इससे दिला दीजिए । इसकी मत सुनिये । यह मुझमे जो रकम मांगता है, उस पर श्राप विचार मत कीजिए । श्राप तो मेरा लेना मुझे दिला दीजिए ।

हाकिम श्रगर इसी के कथनानुसार दूसरे की न सुनकर

उससे रुपया दिलवा दे तो क्या यह न्याय होगा ?

'नही ।'

यदि वह हाकिम, हाकिम है तो यही कहेगा कि उसका देना उसे चुकाओ और अपना लेना तुम ले लो । ऐसा कहने वाला हाकिम ही न्यायी कहा जायगा, अन्यथा नही ।

इसी प्रकार आप परमात्मा को दीनदयाल कहते हैं तो दीन लोग आपसे अपना देना मागते हैं, अपना हक चाहते हैं । तुम उन पर करुणा करो । तभी तुम परमात्मा की करुणा चाह सकते हो । तुम किसी पर करुणा न करो और फिर भी परमात्मा की करुणा चाहो तो, अगर वह न्यायी है तो, आप पर दया कैसे करेगा ?

भक्त कहते हैं—मैं उस परमात्मा का खानाजाद तभी होऊँगा जब तन, मन, धन उसको समर्पित करके उसकी भक्ति करूँगा । जब सर्वस्व समर्पण करके कहा जाय—प्रभो ! मुझे इसकी आवश्यकता नही है । मुझे तो केवल तेरा प्रेम चाहिए ।

प्रश्न हो सकता है—भगवान् तो वीतराग हैं । उन्हें तन, मन और धन की आवश्यकता नही । फिर यह सब उन्हे किस प्रकार समर्पित करना चाहिए ? कैसे उसका खानाजाद बनना चाहिए ? इसका समाधान इस प्रकार है :—

भगवान् की भक्ति और तन दोनो हैं तो भक्त कहेगा कि भक्ति भी रहे और तन भी रहे, मगर यदि कोई ऐसा समय आ जाय कि जब या तो भक्ति ही रहे या प्राण ही

रहे, तो उस समय किसकी रक्षा की जाय ? भक्ति और प्राण में से किसे बचाया जाय ?

जो प्राणो की परवाह न करके भक्ति की रक्षा करे उसी को सच्चा भक्त समझना चाहिए। यही भक्त की पहिचान होती है। साधारण लोग कहेंगे—हम भक्ति लेकर क्या करें ? हमे धन चाहिए। धन के लिए ही तो भक्ति करते है। धन त्यागना पडा तो भक्ति किस काम की ? और तन के लिए भी यही बात है। भक्ति जाय तो भले जाय पर तन नही जाना चाहिए।

देव तलवार लेकर कामदेव श्रावक के सामने खडा था। वह कह रहा था—'महावीर के धर्म का त्याग कर दे, अन्यथा तेरे टुकडे-टुकड़े कर दूंगा।' ऐसे समय मे क्या करना चाहिए ?

'अरणक ने जो किया वही करना चाहिए।'

'अरणक ने क्या किया ?'

'तन-धन त्याग दिया।'

तन के टुकडे टुकडे हो जाने पर भी आत्मा को हाथ लगाने की किसी मे शक्ति नही है। आत्मा कदापि नही मर सकता। तन जाता है तो जाय, तन के बदले धर्म है, ऐसी दृढता धारण करने पर ही परमात्मा के प्रति प्रेम होगा।

अर्जुन माली प्रतिदिन छह पुरुषो की और एक नारी

उससे रुपया दिलवा दे तो क्या यह न्याय होगा ?

'नही ।'

यदि वह हाकिम, हाकिम है तो यही कहेगा कि उसका देना उसे चुकाओ और अपना लेना तुम ले लो । ऐसा कहने वाला हाकिम ही न्यायी कहा जायगा, अन्यथा नही ।

इसी प्रकार आप परमात्मा को दीनदयाल कहते है तो दीन लोग आपसे अपना देना मागते हैं, अपना हक चाहते हैं । तुम उन पर करुणा करो । तभी तुम परमात्मा की करुणा चाह सकते हो । तुम किसी पर करुणा न करो और फिर भी परमात्मा की करुणा चाहो तो, अगर वह न्यायी है तो, आप पर दया कैसे करेगा ?

भक्त कहते हैं—मैं उस परमात्मा का खानाजाद तभी होऊँगा जब तन, मन, धन उसको समर्पित करके उसकी भक्ति करूँगा । जब सर्वस्व समर्पण करके कहा जाय—प्रभो ! मुझे इसकी आवश्यकता नही है । मुझे तो केवल तेरा प्रेम चाहिए ।

प्रश्न हो सकता है—भगवान् तो वीतराग हैं । उन्हें तन, मन और धन की आवश्यकता नही । फिर यह सब उन्हे किस प्रकार समर्पित करना चाहिए ? कैसे उसका खानाजाद बनना चाहिए ? इसका समाधान इस प्रकार है :—

भगवान् की भक्ति और तन दोनों है तो भक्त कहेगा कि भक्ति भी रहे और तन भी रहे, मगर यदि कोई ऐसा समय आ जाय कि जब या तो भक्ति ही रहे या प्राण ही

रहें, तो उस समय किसकी रक्षा की जाय ? भक्ति और प्राण में से किसे बचाया जाय ?

जो प्राणो की परवाह न करके भक्ति की रक्षा करे उसी को सच्चा भक्त समझना चाहिए। यही भक्त की पहिचान होती है। साधारण लोग कहेंगे—हम भक्ति लेकर क्या करें ? हमे धन चाहिए। धन के लिए ही तो भक्ति करते हैं। धन त्यागना पडा तो भक्ति किस काम की ? और तन के लिए भी यही बात है। भक्ति जाय तो भले जाय पर तन नही जाना चाहिए।

देव तलवार लेकर कामदेव श्रावक के सामने खडा था। वह कह रहा था—'महावीर के धर्म का त्याग कर दे, अन्यथा तेरे टुकड़े-टुकडे कर दूगा।' ऐसे समय मे क्या करना चाहिए ?

'अरणक ने जो किया वही करना चाहिए।'

'अरणक ने क्या किया ?'

'तन-धन त्याग दिया।'

तन के टुकडे टुकड़े हो जाने पर भी आत्मा को हाथ लगाने की किसी मे शक्ति नही है। आत्मा कदापि नही मर सकता। तन जाता है तो जाय, तन के बदले धर्म है, ऐसी दृढता धारण करने पर ही परमात्मा के प्रति सच्चा प्रेम होगा।

अर्जुन माली प्रतिदिन छह पुरुषो की और एक नारी

की हत्या करता था। उसके डर के कारण कोई भी पुरुष भगवान् महावीर के दर्शन करने के लिए जाने का साहस नही कर सका। दर्शन और वन्दना करने जाएँ तो कैसे जाएँ! रास्ते मे अर्जुन मुद्गर लिये, प्राण लेने को बैठा है। मगर सुदर्शन सेठ सच्चा श्रावक था। वह ऐसे विकट सकट के समय भी, अर्जुन माली के मुद्गर की परवाह न करके भगवान् की वन्दना करने के लिए चल दिया। लोगो ने समझाया, वह नही माना। अगर उसे प्राणो का मोह होता तो और लोगो की तरह वह भी क्या घर से निकलता?

'नही!'

इसी को कहते हैं समर्पण! भगवान् के आगे तन, मन, धन के ममत्व को त्याग देना ही समर्पण करना कहलाता है। भक्त के हृदय मे ईश्वर का प्रेम है तो वह तन, मन, धन की चिन्ता नही करता। वह परमात्म-प्रेम के लिए तन, मन, धन समर्पित करने से तनिक भी नही हिचकता।

सुदर्शन ने भगवान् की भक्ति के लिए, परमात्म प्रेम के लिए अर्जुन माली का भय नही किया तो अर्जुन उसका बाल भी बाका कर सका?

'नही!'

यह तो केवल भक्ति की कसौटी की। यदि आपको परमात्मा से प्रीति है, तो उसकी भक्ति प्रिय है, तन, तन, धन का मोह त्यागना पड़ेगा। या तो ईश्वर से प्रेम कर

लो या इन चीजो से प्रेम कर लो । एक साथ दोनो से प्रेम नही हो सकता । मन, वचन और तन को एकत्र करके, उस दीनदयाल के प्रेम की मूर्ति हृदय मे धारण करके जो पुरुष उसकी भक्ति के रग मे रगा रहता है, वह भक्त शीघ्र ही अपना कल्याण करेगा ।

आप सुबह से शाम तक कितने कीड़े देखते हैं ? उन कीडो-मकोड़ो मे भगवान् का गुणगान करने की शक्ति है ?

'नही !'

उनमे परमात्मा को समझने की योग्यता है ?

'नही !

तो इन कीडो-मकोडो को देखकर यह विचार करना चाहिए कि इन योनियो मे मैं कई बार जन्मा हूँ और मरा हैं । अनादिकाल-अबतक का सम्पूर्ण समय मैंने इन्ही योनियो मे व्यतीत किया है । मुझे परमात्मा के गुणगान का अवसर नही मिला । आज मैं मनुष्य की अवस्था मे हूँ और मेरे लिए भजन करने के सब साधन प्रस्तुत हैं । अगर आज भजन न करूँगा तो फिर कब करूँगा ? कीड़ो मकोड़ो और अपनी स्थिति का मिलान करके सोचना चाहिए कि आज यदि भगवान् के भजन का अवसर न साधूँगा तो कब साधूँगा ? मेरी और कीडों की स्थिति मे क्या अन्तर है ? अगर आप यह मानें कि मैं कीड़ों से बड़ा हूँ, मुझमे कीड़ो को मसल डालने की शक्ति विद्यमान है, तो क्या आपकी शक्ति इसी

लिए है ? छोटे प्राणियों को नष्ट करने मे ही आपकी शक्ति की सार्थकता है ? वास्तव मे नाश करने वाला बड़ा नही कहलाता ।

सतो और सतियो को भी विचार करना चाहिए कि हम ससार मे सब से बड़े दर्जे पर हैं। यह बडप्पन हमे ईश्वर की आराधना करने—आत्मकल्याण करने की प्रतिज्ञा के कारण प्राप्त हुआ है। अतएव हमे ईश्वर–भजन करने का यह अवसर नही चूकना चाहिए ।

मित्रो ! कीडो-मकोडो मे और आप मे जो विशेषता है उस विशेषता से आपने लाभ न उठाया तो आपमे और उनमे अन्तर ही क्या रहा ? विषयों का आनन्द तो कीडे भी लूटते हैं। मिष्ठ पदार्थ भी खाते हैं। बल्कि एक दिन मैंने कहा था कि मनुष्य, कीड़ो-मकोडो का जूठा खाते हैं। भ्रमर का सूघा हुआ फूल सब सूघते हैं। मक्खियो का जूठा शहद सब खाते हैं। अधिक क्या कहूँ, आप जो रेशम पहनते हैं वह कीड़ो का ही कलेवर है। कीड़ो के सुन्दर शरीर को नष्ट करके तुम सजे हो। इसे पहन कर गर्व में मत फूलो, बल्कि लज्जित होओ। अपने घर का भी गर्व मत करो। कीड़े ऐसा घर बनाते हैं जो उनकी शक्ति के अनुसार बहुत बडा गिना जा सकता है। कीडियो को देखो, कैसे बिल बनाती हैं। उनका शरीर देखते हुए उनका घर बड़ा है या तुम्हारे शरीर को देखते हुए तुम्हारी हवेली ?

वह भी तुमने दूसरे पुरुषो की सहायता लेकर बनाई है। कीडिया किसी मनुष्य की सहायता न लेकर पृथ्वी के भीतर से मिट्टी निकालकर चढती और अपना घर बनाती हैं। ऐसी अवस्था मे तुम कीडो से बडे कैसे रहे ? जरा विचार करो कि यह शरीर सासारिक भोगो मे लगाने के लिए है अथवा परमात्मा का भजन करने के लिए है ?

मनुष्य-शरीर की सामग्री अगर उन भोगों मे लगाई, जिन्हें कीडे भी भोगते हैं तो मनुष्य एक बडे कीड़े के समान ही है। यही सोचकर ज्ञानी कहते हैं कि आज मैं परमात्मा के गुण गाऊंगा। इसके अतिरिक्त मनुष्य देह का दूसरा कोई फल नही है। जो ज्ञानी हैं वे इस मनुष्य शरीर द्वारा बड़ी सिद्धि प्राप्त करने से कभी नही चूकते। कौन ऐसा समझदार मनुष्य है जो रत्न को दमड़ी के मोल बेचकर रत्न का अपमान करे ? और जहा पर्याप्त लाभ होता हो वहां सच्चा जौहरी रत्न खर्च करने से भी कभी नही चूकेगा।

पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज एक दृष्टान्त दिया करते थे। वही दृष्टान्त मैं आपको सुनाता हूँ :—

किसी नगर से तीन जौहरी व्यापार के उद्देश्य से बाहर निकले। पहले के जौहरी आदि व्यापारी देहात आदि में भ्रमण करने निकल जाया करते थे। तदनुसार यह जौहरी भी पृथक्-पृथक् बाहर निकले। एक को दूसरे के निकलने का हाल मालूम नही था।

लिए है ? छोटे प्राणियों को नष्ट करने मे ही आपकी शक्ति की सार्थकता है ? वास्तव मे नाश करने वाला बडा नही कहलाता ।

सतो और सतियो को भी विचार करना चाहिए कि हम ससार मे सब से बड़े दर्जे पर हैं। यह बडप्पन हमे ईश्वर की आराधना करने—आत्मकल्याण करने की प्रतिज्ञा के कारण प्राप्त हुआ है। अतएव हमे ईश्वर-भजन करने का यह अवसर नही चूकना चाहिए ।

मित्रो ! कीड़ो-मकोड़ो मे और आप मे जो विशेषता है उस विशेषता से आपने लाभ न उठाया तो आपमे और उनमे अन्तर ही क्या रहा ? विषयो का आनन्द तो कीडे भी लूटते हैं। मिष्ठ पदार्थ भी खाते हैं। बल्कि एक दिन मैंने कहा था कि मनुष्य, कीड़ो-मकोडो का जूठा खाते हैं। भ्रमर का सूघा हुआ फूल सब सूघते हैं। मक्खियो का जूठा शहद सब खाते हैं। अधिक क्या कहूँ, आप जो रेशम पहनते हैं वह कीड़ो का ही कलेवर है। कीड़ो के सुन्दर शरीर को नष्ट करके तुम सजे हो। इसे पहन कर गर्व में मत फूलो, बल्कि लज्जित होओ। अपने घर का भी गर्व मत करो। कीड़े ऐसा घर बनाते हैं जो उनकी शक्ति के अनुसार बहुत बडा गिना जा सकता है। कीडियों को देखो, कैसे बिल बनाती हैं। उनका शरीर देखते हुए उनका घर बड़ा है या तुम्हारे शरीर को देखते हुए तुम्हारी हवेली ?

वह भी तुमने दूसरे पुरुषो की सहायता लेकर बनाई है। कीडियां किसी मनुष्य की सहायता न लेकर पृथ्वी के भीतर से मिट्टी निकालकर चढ़ती और अपना घर बनाती हैं। ऐसी अवस्था मे तुम कीडो से बडे कैसे रहे ? जरा विचार करो कि यह शरीर सासारिक भोगो मे लगाने के लिए है अथवा परमात्मा का भजन करने के लिए है ?

मनुष्य-शरीर की सामग्री अगर उन भोगो मे लगाई, जिन्हें कीडे भी भोगते हैं तो मनुष्य एक बडे कीड़े के समान ही है। यही सोचकर ज्ञानी कहते हैं कि आज मैं परमात्मा के गुण गाऊंगा। इसके अतिरिक्त मनुष्य देह का दूसरा कोई फल नही है। जो ज्ञानी हैं वे इस मनुष्य शरीर द्वारा बड़ी सिद्धि प्राप्त करने से कभी नही चूकते। कौन ऐसा समझदार मनुष्य है जो रत्न को दमडी के मोल बेचकर रत्न का अपमान करे ? और जहा पर्याप्त लाभ होता हो वहां सच्चा जोहरी रत्न खर्च करने से भी कभी नही चूकेगा।

पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज एक दृष्टान्त दिया करते थे। वही दृष्टान्त मैं आपको सुनाता हूँ :—

किसी नगर से तीन जौहरी व्यापार के उद्देश्य से बाहर निकले। पहले के जौहरी आदि व्यापारी देहात आदि में भ्रमण करने निकल जाया करते थे। तदनुसार यह जौहरी भी पृथक्-पृथक् बाहर निकले। एक को दूसरे के निकलने का हाल मालूम नही था।

एक ग्राम मे किसी कृपक को कृषि कार्य करते समय एक हीरा मिला। कृपक हीरे को पहिचानता तो था नही, उसने एक सुन्दर पत्थर समझ कर उठा लिया। सोचा— अगर पैसे-दो पसे मे विक जायगा तो अच्छा ही है। उसी ग्राम मे एक वणिक् रहता था और नमक-तमाखू आदि का व्यापार करता था। कृपक हीरा लेकर उसके पास पहुंचा। वह भी हीरे का परीक्षक नही था। फिर भी उसे वह अच्छा लगा। उसकी तराजू मे पासग था। हीरा पासग के वरावर हो गया। इस कारण उसने अपनी तराजू में वाध कर पासग मिटा लिया और कृषक को दो पैसे का सौदा उसके वदले दे दिया।

एक जौहरी घूमता-फिरता उसी ग्राम मे आया। उसे भूख लगी थी। वह खाने का सामान लेने उस वणिक् की दुकान पर आया। खाने के सामान मे वणिक् की दुकान पर भुने चने थे। वणिक् ने जव चने तौलने के लिए तराजू उठाई तो जौहरी को वह हीरा दिखाई दिया। देखते ही वह हीरे की उत्तमता को समझ गया। उसने सोचा—हीरा मूल्यवान् तो है, मगर इसका भेद खोल दिया तो वनिया देगा नहीं, या वहुत मूल्य मागेगा। अतएव जौहरी ने कहा— तराजू मे यह कंकर क्यो वाध रक्खा है सेठजी ?

वणिक्—आ गया, इससे बांध दिया है।

जौहरी - हम व्यापारी हैं। पैसे मिलें तो थाली की

रोटी भी बेच दें। फिर इसकी तो बात ही क्या है!

जौहरी क्या लोगे?

वणिक् जानता था कि यह जौहरी है। बिना मतलब ककर क्यो खरीदने लगा? उसने फिर भी डरते-डरते कहा—सौ रुपये लूँगा।

जौहरी ने सोचा—चीज तो बहुत मूल्यवान् है और माँगता है सौ रुपया। मगर सौ मे से भी बचे उतना ही लाभ है। यह सोचकर उसने कहा—पचहत्तर रुपये ले लो।

वणिक् ने जौहरी की बात सुनकर सोचा—मैं इसे दो-चार पैसो का समझता था, पर जौहरी की बात से ७५) रु० का पक्का ठहरा! सम्भव है और भी ज्यादा कीमत का हो। उसने जौहरी से कहा—एक कोडी भी कम न लूगा।

जौहरी ने सोचा—सौ रुपया तो मागता ही है। यहाँ दूसरा कोई इसका ग्राहक नही। जल्दी क्यो करूँ? मान जायगा तो ठीक, नही तो दस-बीस ज्यादा देकर ले लूँगा। यह सोच कर उसने कहा—ठीक है, आटा सामान दे दो। रोटी बनाकर खा लें। फिर जैसा होगा, देखा जायगा।

जौहरी बहुत खुश था कि आज बाहर निकलना सार्थक हो गया। १००) रु० मे लाख रुपयो की चीज मिल रही है। वह अब अपनी ही है। दूसरा कौन लेगा? यह सोच-कर वह भोजन बनाने खाने मे लग गया।

संयोगवश दूसरा जौहरी भी उस वणिक् की दुकान पर

पहुंचा। उसने भी खाने-पीने के सामान के विषय मे पूछ-ताछ करते समय उस हीरे को देखा और उसकी कीमत पूछी। वणिक् ने सोचा—उससे १००) रु० मागे थे, इससे हजार क्यो न कह दू ? और उसने एक हजार रुपया कीमत कह दी। पहले जौहरी की तरह इसने भी लोभ मे पड़कर आठ सौ कहे। वणिक् ने देने से इन्कार कर दिया। इस जौहरी ने भी पहले के समान ही सोच कर रत्न लेने मे ढील की। यह भी भोजन बनाने-खाने मे लग गया। वणिक् ने सोचा—चलो, १००) रु० के बदले ८००) रु० का माल तो पक्का हुआ

दोनो जौहरी अलग अलग भोजन बनाने मे लग गये। दोनो अपने-अपने मन मे प्रसन्न थे। अतः दोनो माल-मसाला उड़ाने मे मस्त हो गये।

इसी बीच तीसरा जौहरी भी वणिक् की दुकान पर जा पहुंचा। उसने भी भोजन-सामग्री के विषय मे प्रश्न करके आटा-दाल आदि तुलवाना चाहा। वणिक् ने तराजू उठाई। जौहरी की नजर हीरे पर पड़ी। उसने भी पूछा— इसे बेचते हो ?

वणिक्—बेच भी देगे।

जौहरी—क्या लोगे ?

वणिक् ने सोचा—दूसरे से एक हजार मांगे थे। इससे एक बिन्दु और बढाकर क्यो न मांगू ? और उसने दस

हजार मोल बता दिया ।

जौहरी ने सोचा इस पर किसी का हाथ पड़ गया है, अन्यथा दस हजार माँगने की इसकी हिम्मत नही हो सकती थी । इसके अतिरिक्त वणिक् अगर इसकी इतनी कीमत समझता तो इसे तराजू मे न बाध रखता । लेकिन अब इन बातो पर विचार करना वृथा है । जब हमे ६० हजार का लाभ हो रहा है तो यह दस हजार क्यो न पावे ?

जौहरी ने कहा –अच्छा, दस हजार लो और यह कंकर मुझे दे दो ।

वणिक् ने सोचा चीज तो कोई बहुत कीमती है, पर मुह से कह दिया है । अगर बहुत कीमती है तो इसका भाग्य । मुझे तो दो पसे की तमाखू मे मिली है ।

वणिक् ने हीरा तराजू से खोल कर जौहरी को दे दिया और जौहरी ने दस हजार की हुंडी दे दी । इसके पश्चात् जौहरी ने पूछा—इसे खरीदने के लिए और भी कोई आया था ? वणिक् ने कहा—दो जौहरी पहले आये थे । वे रोटी बनाने खाने मे लगे हैं ।

जौहरी ने सोचा—अब यहा ठहरना झगड़े मे पड़ना है । और उसने चने खरीद कर, जेबों मे डाले और अपने घर की ओर रवाना हो गया ।

पहला जौहरी भोजन और विश्राम करके तीसरे पहर वणिक् के पास आया । उसने कहा सौ रुपये तो बहुत होते

हैं। जरा विचार कर कहो।

वणिक्—किस चीज का सौ रुपया बहुत है ?

जौहरी—उस ककर का।

वणिक्—वह ककर नही था। वह तो एक वडी चीज थी।

जौहरी—(आश्चर्य से) थी, तो क्या अब नही है ?

वणिक्—नही, वह तो विक चुकी।

जौहरी—कितने मे ?

वणिक्—दस हजार मे।

जौहरी—सेठ, तुम डूब गये !

वणिक्—क्यो ?

जौहरी—वह तो एक लाख की चीज थी !

वणिक्—तो मैं कैसे डूबा ? डूबे तो तुम डूबे ! वह लाख रुपये की है, यह तुम जानते थे, मैं तो नही जानता था ! मेरे यहा वह दो पैसे मे आई और दस हजार मे विकी !

इतने मे दूसरा जौहरी चिल्लाता हुआ आया—खबरदार ! चीज पहले मैंने देखी है, मैं लूँगा। जौहरी ने कहा—अब क्या लोगे, वह तो पहले ही ले ली गई !

जौहरी वोला—सेठ, तुमको वहुत घाटा हुआ है। अब तुम मानो और उसे मुझे वेच दो। हम उस जौहरी पर दावा करके उससे चीज़ ले लेंगे।

वणिक् ने कहा—ऐसे झूठे काम तुम करो मैं नही करता। तुम आठ सौ मे ले जाते, उसका तो दावा नही,

श्रौर वह दस हजार मे ले गया सो उस पर दावा ! मुझसे यह नही होगा ।

अन्त मे दो जौहरी पश्चात्ताप करने लगे कि थोड़े-से लोभ मे बड़ा लाभ गँवा दिया !

तीसरा जौहरी नीतिमान् था । उसने उस वणिक् के साथ भाईचारा जोडा । उसने कहा—तुम मेरे सेठ हो श्रौर मैं तुम्हारा ग्राहक हूँ । मेरे साथ परायापन न रख कर सदा मिलते रहा करो ।

धीरे-धीरे उसने वणिक् को शहर के व्यापार से परिचित करके उसे अच्छा व्यापार करा दिया ।

मित्रो ! इन जोहरियो मे कौन प्रवीण है ?

'तीसरा ।'

इस कथा का प्रमाण शास्त्र मे भी मिलता है । शास्त्र मे पाठ आता है—

जहा य तिन्नि वाणिश्रा, मूल घेत्तूण निग्गया ।
एगोत्थ लहइ लाह, एगो मूलेण आगओ ॥
एगो मूल पि हारित्ता आगया तत्थ वाणिया ।
ववहारे उवमा एसा, एव धम्मे वियाणह ॥

श्री उ० ७ वा अ० १५-१६ गा०

अर्थात् तीन वणिक् व्यापार के लिए निकले । उनमे से दो तो गफलत मे रह गये श्रौर एक बाजी मार गया !

लेकिन हमे इन व्यापारियो की बात सुन कर अपने

विषय में विचार करना चाहिए। हम किस जौहरी का अनुकरण करें ?

भाइयो ! धर्म हीरा के समान है। हीरे का तो मूल्य हो भी सकता है पर धर्म सर्वथा अमूल्य है। इस अनमोल धर्मरत्न को खाने पीने और गुलछर्रे उडाने मे मस्त रहकर खो देने से अन्त मे पश्चात्ताप का भागी होना पडता है। पश्चात्ताप करने पर भी बिगडी बाजी का सुधरना कठिन है। इसलिए विवेक का उपयोग करो। ऐशो-आराम मे जीवन की यह अनमोल घडिया मत खोओ। धर्म के लिए समय मिलने पर भी धर्म ध्यान न करके समय खोना कितना अनुचित है ? भजन मे कल्याण जान करके भी भजन न करना और दूसरी गप्पो मे पडना अदूरदर्शिता है। लोग समझते हैं कि भजन करने का समय वही है जब माला हाथ में लेकर बैठें ! उस समय भी उन्हे नीद आती है और माला हाथ मे पडी रह जाती है। भजन करने का यह तरीका नही है। भजन ऐसे होता है—

आज म्हारा सम्भव जिनजीरा,
हित चित से गुण गास्यां राज।

आज मैंने मनुष्य-अवस्था पाई है। मुझे भजन करने का अवसर मिला है। इसलिए मैं सभवनाथ भगवान् का भजन करूँगा। और—

मन वच काय लाय प्रभु सेती,
निश दिन श्वास उश्वासां ।
संभव जिनजी की मोहनी मूरत,
हिये निरन्तर ध्यासा राज ॥आज०॥

सभवनाथ भगवान् की मोहिनी मूर्ति हृदय मे बैठते ही अपूर्व आनन्द की प्राप्ति होगी।

मित्रो ? जो आयु गई सो गई, परन्तु जो रही है उसे तो रक्खो ! मेरा यह सन्देश है कि ईश्वर भजन के आनन्द को छोड कर गन्दी बातों मे मत पड़ना । यह सही है कि आप गृहस्थी मे रहते हैं, मगर गृहस्थी मे रहकर भी विकथा छोडो और भगवद्भजन मे समय लगाओ । इतना करने से भी दुःख से बचोगे ।

[ख]

भगवान् संभवनाथ की यह स्तुति है । भगवान् सभवनाथ के नाम या परमात्मा के और नामो से प्रीति होने में क्या गुण है ? तथा परमात्मा का हित-चित्त से गुणगान किस प्रकार करना चाहिए ? इस विषय पर मैं थोड़ा-सा प्रकाश डालना चाहता हूँ ।

कई भाइयों का कहना है कि परमात्मा को हमने देखा नही है, तब उसके गुणों से या उसके गुणगान से हमे अनुराग किस प्रकार हो सकता है ? उनके इस कथन मे परमात्मा के प्रति सन्देह मौजूद है । इस सदेह के कारण वे

परमात्मा का गुणगान करने से उदासीन रहते हैं। किन्तु जिन्हे इस प्रकार का सन्देह नही है उन्हे भी गुणगान मे वैसा तल्लीन नही देखते जैसे कि वे लक्ष्मी के गुणगान और आराधना मे रहते हैं। वे लोग—

भज कल्दार भज कल्दार, कल्दार भज मूढमते !

इस मन्त्र मे जितना चित्त लगाते हैं उतना परमात्मा के भजन मे नही लगाते। वे कल्दार मे अपना हित देखते हैं, इसीलिए उसमे उनका चित्त ज्यादा लगता है। परमात्मा तो दिखाई नही देना और रुपया गोल-गोल चमकता हुआ नजर आता है। अतः उसमे विशेष प्रीति होती है। किसी ने कहा है :—

मात कहे मेरा पूत सपूता,
बहिन कहे मेरा भैया।
घर की जोरू यों कहे,
सब से बडा रुपैया॥

मतलब यह है कि रुपया आखो से दिखाई देता है और उससे होने वाला हित भी प्रत्यक्ष है, इस कारण लोग उससे प्रीति करते हैं। और परमात्मा दीखता नही है, इसीलिए उसके विषय मे सदेह करते हैं या उसकी उपेक्षा करते हैं।

यद्यपि इस विषय को सरलता से समझाना और समझना कठिन है, यद्यपि ध्यान देने से जल्दी समझा भी जा सकता है।

किसी वस्तु को जानने और समझने के लिए अकेला प्रत्यक्ष ही साधन नही है । हम लोगो के प्रत्यक्ष प्रमाण से तो बहुत कम, स्थूल समीपवर्ती पदार्थ ही जाने जाते हैं । इनके अतिरिक्त बहुत बड़ी वस्तुराशि ऐसी है जो प्रत्यक्ष से हमे नही जान पड़ती । उसकी भी सत्ता है और वह भी प्रमाण-सगत है । उसका दर्शन हमे या तो कारणसबध से होता है या कार्यसबध से अथवा आगम से । किसी वस्तु का दर्शन कारण-सबध से होता है और किसी का कार्यसबध से । इस विषय को समझने के लिए एक उदाहरण लीजिए :—

आप यमुना के किनारे खडे हैं । आप जिस जगह खडे है उस जगह से यद्यपि यह नही दिखाई देता कि यमुना कहा से निकली है और कहा तक गई है । आप उसका आदि-अन्त नही देख पाते । फिर भी उस बीच के भाग को देख-कर यह अवश्य विश्वास करते हैं कि जब यमुना का बीच है तो उसका आदि और अन्त भी कही न कही होगा ही । अब विचारना चाहिए कि आपने यमुना के आदि और अन्त को, प्रत्यक्ष न देखने पर भी कैसे समझ लिया ? इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मनुष्य के पास ऐसा भी कोई ज्ञान है जो प्रत्यक्ष से भिन्न है और उस ज्ञान का उपयोग वह सदा किया करता है । अगर वह ज्ञान, जिसे न्याय शास्त्र मे अनुमान और तर्क आदि नामो से कहा गया है, न हो तो लोकव्यवहार एक दिन भी चलना कठिन हो जायगा । फिर

क्या कारण है कि लौकिक बातो में जिस ज्ञान का उपयोग करते है, उसका धार्मिक बातो मे नही करते ? ईश्वर के विषय मे क्यो कहा जाता है कि वह प्रत्यक्ष से दिखाई नही देता, इसलिए उसका अस्तित्व ही नही !

अगर परमात्मा का स्वरूप प्रत्यक्ष से दिखाई नही देता तब भी वह अनुमान प्रमाण से और आगम प्रमाण से सिद्ध है। प्रत्यक्ष भी सिर्फ इन्द्रियो से नही होता। उसका दायरा भी बहुत विशाल है। इन्द्रियो से होने वाला प्रत्यक्ष तो सिर्फ लौकिक-व्यावहारिक दृष्टि से प्रत्यक्ष कहलाता है। असली प्रत्यक्ष वह नही है। असली प्रत्यक्ष वह है जो इन्द्रिय या मन के द्वारा न होकर सीधा आत्मा से ही होता है। ऐसा प्रत्यक्ष योगियों को होता है, इसलिए वह योगिप्रत्यक्ष भी कहलाता है। योगिप्रत्यक्ष परमात्मा के स्वरूप को साक्षात् जानता है। अतएव यह कहना कि प्रत्यक्ष से परमात्मा नही दिखाई देता, ठीक नही है। उस प्रत्यक्ष को पाने के लिए साधना और तपश्चर्या की आवश्यकता है। जो लोग सम्पूर्ण श्रद्धा के साथ साधना मे निरत रहते हैं उनमे अलौकिक शक्ति पैदा हो जाती है। उनके आत्मा के बन्धन कट जाते हैं। वे परमात्मा के स्वरूप को देखते ही नहीं, स्वय भी क्रमशः परमात्मा बन जाते हैं। यह अन्तिम सिद्धि है। इसका आरम्भ परमात्मा के प्रति श्रद्धा और प्रीति से होता है। श्रद्धा और प्रीति को उत्पन्न करने के लिए भगवान् का नाम-स्मरण सर्व प्रथम

उपयोगी होता है ।

मित्रो ! परमात्मा के नाम-स्मरण मे और ध्यान में अपूर्व शक्ति है । उसकी महिमा का बखान करना मेरे लिए सभव नही है । बड़े-बड़े महात्मा, सत और पण्डित भी हार मानते हैं । परमात्मा के ध्यान और स्मरण से अत्यन्त कठोर कर्मों का भी विनाश हो जाता है । आपके कल्याण का सरल से सरल कोई मार्ग अगर है तो यही है । अगर आपके चित्त मे अपना कल्याण करने की इच्छा जागी हो तो आप इस उपाय का सहारा लीजिए । निस्सदेह आपका कल्याण होगा ।

४-श्री अभिनन्दन स्वामी

प्रार्थना ।

श्री अभिनन्दन दुखनिकन्दन। वन्दन पूजन योगजी ।
आशा पूरो चिन्ता चूरो, आपो सुख आरोगजी ॥१॥

'सबर' राय 'सिधारथ' राणी, तेहनो आतमजातजी ।
प्राण पियारो साहब साचो, तू ही मात ने तातजी ॥२॥

कइएक सेव करें शकर की, कइएक भजे मुरारजी ।
गणपति सूर्य उमा कइ सुमरे, हूँ सुमरु अविकारजी ॥३॥

देव कृपा सूं पामे लक्ष्मी, सो इण भव को सुखजी ।
तो तूठा इन भव परभव में, कदी न व्यापे दुखजी ॥४॥

यद्यपि इन्द्र नरेन्द्र निवाजे, तदपि करत निहालजी ।
तू पूजनीक नरेन्द्र इन्द्र को, दीनदयाल कृपालजी ।५॥

जब लग आवागमन न छूटे, तब लग ए अरदासजी ।
सम्पत्ति सहित ज्ञान समकित गुण, पाऊ दृढ़ विश्वासजी ॥६॥

अधम उधारण विरुद तिहारो, जोवो इण ससारजी ।
लाज 'विनयचन्द' की अब तो ते, भवनिधि पार उतारजी ॥७॥

[क]

श्री अभिनन्दन दुख निकदन,
वदन पूजन जोग जी ॥

प्राणी का स्वभाव है कि वह अपने लिए सब कुछ करता है। लोक कहते हैं, अमुक आदमी अमुक का काम करता है पर जरा गहराई से सोचें तो प्रगट होगा कि सब अपने-अपने काम मे लगे हैं। कोई किसी दूसरे के काम में नही लगा है। जिस पदार्थ का जो स्वभाव या गुण है, उसके अनुसार वह वर्त्त रहा है और दूसरे लोग उससे भले लाभ उठा लें। उसी वर्त्तना के द्वारा हम बहुत-से पदार्थों को जानते हैं।

प्रकाश और उष्णता देने के कारण हम सूर्य को सूर्य मानते हैं। जल अगर प्यास न बुझावे तो उसे जल कौन कहे ? पवन श्वास न दे तो वह पवन ही क्या ? तात्पर्य यह है कि प्रत्येक अपने-अपने काम में लगा है। जिस परमात्मा के हम गीत गाते हैं उसमे यदि दूसरे के दुःख को हरण करने की अलौकिक शक्ति न होती तो उसे भी कोई परमात्मा न कहता। इस गुण का जिसमें अभाव है वह परमात्मा नही कहलाता।

हम अपनी आत्मा को सुखी बनाने के लिए परमात्मा को मानते-पूजते हैं। अपनी आत्मा के सुख के लिए उसे मानना पड़ता है। प्यासा पुरुष पानी से रूठ कर बैठ जाय,

भूखा आदमी भोजन पर कुपित होकर बैठ जाय, जो अंधेरे मे है वह अगर प्रकाश से रूठ जाय तो इसमे हानि किसकी ? रूठने वाला हानि उठायगा या जिनसे रूठा है वे पदार्थ हानि उठावेगे ?

'रूठने वाला !'

इसी तरह हम परमात्मा से रूठ कर बैठ रहे, उससे प्रीति न करें तो इसमे परमात्मा की कुछ हानि नही है, बल्कि हमारी ही हानि है। आधि-व्याधि रोग, दुःख आदि से घिरा हुआ मनुष्य अगर उस दुःख हरनेवाले को याद न करे, परमात्मा उसे न सुहावे तो समझना चाहिए कि उसका दुर्भाग्य है।

लोग अपने भाग्य को इसी से अच्छा समझते हैं कि उन्हे भोजन, पानी, प्रकाश और वैद्य आदि यथासमय मिल जाते हैं। वे इन छोटी-छोटी बातो से अपना सद्भाग्य समझ लेते हैं। इसी तरह भक्त लोग ईश्वरभक्ति मे सुख मानते हैं। उसके मिल जाने पर अपने भाग्य को सद्भाग्य समझते है। वे कहते हैं—

श्री अभिनन्दन दुखनिकन्दन, वदन पूजन जोग जी,
आसा पूरो चिन्ता चूरो, आपो सुख आरोग जी।

हे अभिनन्दन, तू दु.ख का नाश करने वाला है, इसीलिए तू वदनीय और पूजनीय है।

लोग आज सब तरह से दुःखी हैं परन्तु भगवान् से, जिनमे दुखो के नाश करने का गुण है, विमुख रहते हैं। ऐसा तो कही नही देखा जाता कि प्यास लगने पर मनुष्य पानी के

पास न जाते हो और उसकी इच्छा न करते हो, बल्कि पानी के पास जाते हैं और पानी की इच्छा करते हो परन्तु दुख मे पड़े हुए भी भगवान् की इच्छा करने वाले बहुत कम हैं।

लोग दुख मे पड़े हुए हैं, फिर भी भगवान् से विमुख हैं। इसका कारण क्या है ? इस कारण पर विचार करोगे तो परमात्मा से प्रेम-सम्बन्ध स्थापित होगा। परमात्मा का सच्चा स्वरूप क्या है ? और दुःख कैसे पैदा होते तथा कैसे नष्ट होते हैं ? यह जान लेते तो परमात्मा से विमुख न होते। किन्तु दुख क्या है, दुख का रूप क्या है, यह नही जानते और इसी कारण परमात्मा से विमुख हो रहे हैं।

दाद रोग वाले दाद को खुजलाते हैं। क्या उससे आराम मिलता है ?

'नही !'

फिर भी क्या लोग खाज को खुजलाते नही है ? ऐसे ही अज्ञानी सुख और दुख की अज्ञानता के कारण परमात्मा से भेट नही करता और उससे विमुख रहता है। जो सुख और दुख को समझ लेगा, वह पपमात्मा से भेट किये बिना कदापि न रुकेगा।

सुख और दुख वास्तव मे क्या चीज है ? लोग मानते है कि इच्छित वस्तु का मिलना सुख और न मिलना दुःख है। परन्तु मनमानी चीज मिल जाना सुख कैसे है ? उसी चीज से एक सुख मानता है और दूसरा दुःख मानता है,

फिर वह चीज सुखदायक कैसे हुई ? सोने के आभूषण पहनने वाली को पीतल के आभूपण दो तो वह प्रसन्न होगी ?

'नही !'

और जिसे पीतल के भी आभूषण न मिलते हो, उसे पीतल के आभूषण दो तो वह प्रसन्न होकर पहनेगी और सुख मानेगी। वास्तव मे ससार की इन सामान्य वस्तुओ मे सुख और दुख अज्ञान से पैदा होते हैं। इनका मिलना सच्चा सुख नही है।

कुत्ता सूखी हड्डी चबाते समय, अपनी दाढ से निकलने वाले खून को चाट कर खुश होता है। वह समझता है कि ससार मे इससे बढकर कोई चीज ही नही है। पर आप सूखी हड्डी चबाते देखकर उसे धिक्कारेंगे। इसका कारण क्या है ? कुत्ता उसमे अपूर्व आनन्द मान रहा है और आप उसे धिक्कारते क्यो हैं ? इसका कारण यही है कि उस कुत्ते को ज्ञान नही है और आपको ज्ञान है। ऐसा ही अन्तर आप मे और ज्ञानियो मे है। आप ससार की वस्तुओ मे सुख मानते हैं और ज्ञानी इन्हें नीरस, अनित्य और दुख का कारण समझकर छोड देते है। तुम्हारा सुख ज्ञानियो की दृष्टि मे दुख है। आप जब तक इन सासारिक दु.खो को—जिन्हें आप सुख समझते हैं—सुख मानते रहेंगे तब तक असली सुख को न पा सकेंगे।

किसी ने मीरा बाई से कहा—तुम्हें राणा सरीखे पति,

राज्य का सुख, वैभव आदि मिला है, फिर भी तुम उदासीन होकर साध्वी जैसी फिरती हो और ससार की कीमत नही समझती। इसमे तुम्हें क्या आनन्द मिलता है ?

मीरा ने उत्तर दिया—

सासारीनो सुख काचो, परणी ने रडापो पाछो,
तेने घेर सिद जंये रे मोहन प्यारा।
मुखडानी माया लागी रे मोहन प्यारा।

मैंने ससार के सुखो की जाच कर ली। वह सच्चे नही निकले ! इन सुखो मे मुझे सत्यता नजर ही नही आई। यह सुख झूठे हैं। मैं इन झूठे सुखो से प्रीति कैसे करूं ? इसीलिए मैंने परमात्मा से प्रीति की। विवाह का सुख सच्चा सुख नही है। मैं स्वामी की दासी बनू, उनकी सेवा करूँ और ब्याह पर रडापा भुगतूँ ! ऐसे कच्चे सुख मे क्यो पड़ूँ !

मित्रो ! मीरा की इस बात पर आप यदि व्यापक दृष्टि से विचार करें तो आपको मालूम होगा कि ससार के सब सुख, सुख नही, अपितु दुःख हैं। जिन वस्तुओ से आप प्रेम करते हैं वे वस्तुएं आपसे तो प्रेम करती ही नही, फिर आपके प्रेम करने से क्या लाभ ? आपने सोने के कड़े से प्रेम किया। उसे पहन कर गर्व अनुभव किया, परन्तु वह कड़ा भी आपसे प्रेम करता है ?

'नही !'

फिर तुम कैसे कच्चे आदमी हो कि उस कड़े से प्रेम करते हो और उस पर अभिमान भी करते हो ?

उस कड़े को आपके सिर पर ही कोई दे मारे तो क्या वह सुख देगा ? चोर चुरा ले जाय तो क्या वह जाने से इन्कार कर देगा ? आपको रोना पडेगा ? फिर पहले ही क्यो नही विचार किया कि जिससे मैं प्रेम करता हूँ, वह मुझसे प्रेम ही नही करता । अगर प्रेम करता तो क्यो मेरा साथ छोड़ता ! भाइयो, यह प्रेम मोह है, अज्ञान है ।

इसी प्रकार ससार की और-और वस्तुओ की परीक्षा कर देखो । सब मे ऐसी ही बात मिलेगी ।

आप अपने शरीर से प्रम करते हैं। जरा इसकी जाँच कर देखो कि यह आपको स्वीकार करता है या नही ! कोई भी मनुष्य अपने बाल सफेद हुए देखना चाहता है ?

'नही !'

सभी यह चाहते हैं कि मेरे बाल काले ही रहे । पर वे काले नही रहते, सफेद हो जाते हैं। ऐसी अवस्था मे यह शरीर किसका रहा—आपका या पुद्गलो का ?

'पुद्गलो का !'

यह अपना कहना नही मानता। अपन इसका कहना माने, यह कितना अज्ञान है ! इस अज्ञान मे लिप्त होकर लोग दु खो को सुख समझते हैं। इस अज्ञान के मिट जाने पर ही समझ मे आ सकता है कि दु ख क्या है और सुख

क्या है ?

मित्रो ! यह ससारी सुख कच्चा है। इसके धोखे मे पड़ना उचित नही है। इस सुख के प्रेम मे पड़ना सच्चा प्रेम नही है। सच्चा प्रेम तो परमात्मप्रेम ही है जो कल्याणकारी है। परमात्मा से प्रेम करना ही सच्चा सुख है। परमात्मा के प्रति साधु होकर ही प्रेम किया जा सकता है और गृहस्थावस्था मे नही किया जा सकता, ऐसा समझना भूल है। गृहस्थ भी अगर इतना समझ ले कि यह वस्तु, जो हमसे प्रेम नही करती, वास्तव मे हमारी नही है, तो वह दुःख से बच सकेगा।

सोने का कड़ा अगर चोर चुरा ले गया तो उसमे दुख क्यो माना जाय ? वह हमारा नही था। हमारे न होने का प्रमाण यही है कि चोर उसे ले गया। जो वास्तव मे हमारा है उसे चोर या और कोई ले ही कैसे सकता है ? कडा सुख के लिए पहना था, फिर उसके निमित्त से दुख क्यो मनाया जाय ?

इसी प्रकार प्रत्येक वस्तु के सम्बन्ध मे अगर अनित्यता और अन्यता का विचार किया जाय तो दुख नही होगा। ऐसा समझने वाले मौत को भी मगलरूप समझते हैं। वे मौत से किंचित् भी भय नही करते।

जिस वस्तु मे सुख लिया है, उस वस्तु के लिए अन्तरात्मा मे क्लेश होने से कर्म-बन्धन होता है। ज्ञानीपुरुष उस

वस्तु की अनित्यता समझ लेते हैं, अतः उन्हे न तो दुःख होता है और न कर्मबन्धन ही होता है।

दुःख किस प्रकार जीता जा सकता है? यह बात समझने के लिए एक दृष्टान्त लीजिए :—

किसी पेड की एक डाल पर एक पक्षी और एक बन्दर बैठा है। यह दोनों एक ही झाड के वासी लगते हैं, परन्तु बारीक नजर से देखो तो दोनो के बैठने मे अन्तर है। बन्दर पेड़ के बल पर बैठा है और पक्षी अपने पँखो के बल पर बैठा है। अगर पेड़ या उसकी डाल टूट कर गिर पड़े तो कष्ट बन्दर को ही होगा। चोट बन्दर को ही लगेगी। पक्षी तो उड जायगा।

हम अगर पक्षी की तरह रहें तो हमारा कल्याण है— अकल्याण नही। ससार-डाल यदि टूट कर गिर जाय तो हम नीचे न गिरे ऐसा प्रबन्ध कर लेना चाहिए। ज्ञानियो की यही तो विशेषता है कि वे इस प्रकार का प्रबन्ध पहले ही कर लेते है। जो ऐसा नही करते, ससार सदैव उनके लिए दुःखदायी रहता है।

ससार की वस्तुएँ दुःखदायी न हो तो, इसके लिए क्या करना चाहिए?

श्री अभिनन्दन दुःखनिकन्दन, वन्दन पूजन जोगजी।
आशा पूरो चिन्ता चूरो, आपो सुख आरोगजी॥

भगवान् अभिनन्दन की शरण मे जाने से—उनकी

भक्ति मे तल्लीन रहने से आत्मा दु.ख में नही पड़ेगा। आप लोग आज मौज-मजे मे डूब कर इस बात को भूल रहे हैं, परन्तु जिस दिन ससार की डाल टूटेगी उस दिन सैकड़ो पश्चात्ताप करने पर भी आप कुछ न कर सकेंगे।

आप मेरी बातो को भलीभाति समझ जाएँ, इसीलिए यह उदाहरण दिये हैं। महापुरुषो के चरित भी इसी के लिए हैं।

[ख]

प्राणी मात्र सुख की ही अभिलाषा करता है। दु.ख कोई नहीं चाहता। सुख की प्राप्ति के लिए सब प्राणी न्यारे-न्यारे प्रयत्न करते हैं, परन्तु उन सबको यह ज्ञान नही है कि सच्चे सुख की कुजी क्या है ? अर्थात् सच्चा सुख कैसे प्राप्त किया जा सकता है, जिसके मिलने पर दु'ख न हो। इसी अज्ञान के कारण अधिकाश प्राणी सुख के इच्छुक होते हुए भी दु ख के भागी हो रहे हैं।

ठडी बरसाती हवा चलने पर कीड़े मकोड़े अपने-अपने स्थानो से बाहर निकल कर ऐसी जगह घूमने लगते हैं, जहां गाड़ी, तागे आदि का आवागमन होता रहता है। यह कीड़े-मकोड़े बाहर तो सुख के लिए निकले थे, परन्तु ज्ञान न होने से सुख की वह चाह घोर दु ख का कारण बन जाती है और उन्हे प्राणो से हाथ धोना पड़ता है। इसी प्रकार ज्ञानहीन मनुष्य सुख के लिए उद्योग करता है, पर वह उद्योग दु.ख

का हेतु सिद्ध होता है। जिस वस्तु में सुख समझ कर उससे मोह करते हैं, वही दुखदायी हो जाती है। इसका कारण मनुष्य का अज्ञान ही है। अज्ञान के ही प्रताप से सुख चाहने और सुख के लिए प्रयत्न करने पर भी दुःख ही पल्ले पडता है।

कीडे-मकोड़े तो अज्ञान हैं ही, परन्तु जो समझदार कहलाते हैं उनमे भी अज्ञान मौजूद है। यह समझ लीजिए। जिसको सादा अन्न भी नही पचता, वह मिष्ठान्न क्यो खाता है।

'अज्ञान से !'

मिष्ठान्न खाया जाता है सुख के लिए, मगर अज्ञान के कारण ही मिष्ठान्न दु खदायी हो जाता है। मनुष्य कहता है—क्या करूँ, पचता नही। वह पहले क्यों नही सोचता कि जब पचता नही तो खाऊँ क्यो ?

आपके जीवन मे रात-दिन यह खेल होते हैं, पर अज्ञान के वश आप लोग इन पर विचार नही करते। अगर खाने और खेलने मे ध्यान रक्खा जाय तो दु.ख पास फटकने भी न पाय।

दस प्रकार की तरकारी, चटनी, आचार, पापड़ आदि किसलिए बनवाये जाते हैं ? इसीलिए तो कि बिना भूख भी इनके सहारे भोजन खाया जाय ! जिसे भूख लगने पर ही खाना है उसे इन चीजो की सहायता लेने की आवश्यकता नही होती। भूख मे तो रूखी सूखी रोटी भी आनन्द ही देगी।

खाने मे ही नही, पहनने-ओढने तथा गहने आदि मे भी देखते हो कि कितना दु ख है, परन्तु सुख की अभिलाषा से मोह के वश होकर उन्ही को अपनाते जाते हो !

जो पुरुष विवेक को विस्मृत करके किसी काम को किये जाता है वह चाहे साधु हो या गृहस्थ, वह अज्ञानी ही कहलाएगा । यह अज्ञान पाप से पैदा होता है और उस पाप को काटने का सामर्थ्य प्राप्त करने के लिए प्रार्थना की जाती है—

श्री अभिनन्दन दु खनिकन्दन,
वन्दन पूजन जोगजी ।

इसके पश्चात् कहा जाता है—

आसा पूरो चिन्ता चूरो,
आपो सुख आयोग जी ।

जब हमारे हृदय मे यह है कि हमारा दुःख नष्ट होना ही चाहिए, तब हमको भगवान् अभिनन्दन की शरण लेना उचित है । उनकी शरण मे जाने से सब चिन्ताओ का नाश होकर आशाएँ पूरी होगी और कभी नष्ट न होने वाला सुख प्राप्त होगा । इन भगवान् को दु.खनिकन्दन कहा है— अर्थात् दु खो का नाश करने वाले हैं । भगवान् दूसरों का दु.ख नष्ट करते है, इसी से वह वन्दनीय है और पूजनीय हैं ।

लोग सूर्य को वन्दनीय और पूजनीय इसलिए मानते है कि वह अन्धकार का नाश करके आंखो को ज्योति देता

कलम ? आप कहेंगे, कि कर्त्ता हम हैं और निमित्त कलम है। परन्तु दीपावली के दिन कलम की पूजा क्यो करते हैं ? कलम बनाई है तुमने, और लिखते भी हो तुम्ही, फिर पूजा करते हो कलम की। इसका क्या कारण है ?

'वह सहायता देती है !'

इसी तरह परमात्मा काम नही कराता। वह तो तटस्थ है, मगर उसी की बताई हुई क्रिया से ही काम होता है। इससे सूर्य की महिमा सूर्यभक्तो ने गाई है और परमात्मा की महिमा परमात्मा के भक्तो ने गाई है !

जिस तरह अक्षर लिखने मे कलम सहायक होती है, उसी तरह यदि परमात्मा मोहादि का नाश करने मे सहायक न हो तो कभी काम नही हो सकता अर्थात् सुख प्राप्त नही हो सकता।

आप जो अक्षर लिखते हैं, वह दूसरो से देखकर ही लिखते हैं। किसी शिक्षक ने आपको सिखाने के लिए अक्षर पट्टी पर लिख कर बतलाये होगे। उन्ही को देखकर आपने दूसरे अक्षर लिखे होगे। यह सत्य है न ?

'जी हा !'

उन अक्षरो ने आपसे कहा था कि आप हमको देख कर लिखें ?

'नही !'

फिर भी उनका उपकार-मानते हो ?

'हां !'

ऐसे ही यदि पूर्वकालीन महात्मा, अरिहन्त पद पर न पहुंचते तो उसके साथ वाले किस आदर्श को देखते ? आज हम लोग जो कुछ धर्मकार्य करते हैं, वह पूर्वकाल से महात्माओ के ही प्रकाश से कर रहे हैं, इसलिए उनका उपकार मानना चाहिए। यह उपकार मानकर ही भक्त लोगो ने कहा है :—

श्री अभिनन्दन दु खनिकन्दन,
वदन पूजन जोग जी ।

हे भगवान् अभिनन्दन ! तू दु.खो का नाश करने वाला है। इस कारण वन्दनीय और पूजनीय है। इसके बाद—

आसा पूरो चिन्ता चू.ो,
आपो सुख आरोग जी ।

मैं आपकी शरण आया हूँ। दूसरो की शरण मे गया था तो उन्होने उल्टा संसार मे डाल दिया। शुभ सहायक के बिना आत्मा नही चढ़ती और मुझको जो सहायक मिले थे वे अशुभ थे। उनसे सहायता लेने पर पापानुबधी पुण्य मिलता है जो थोड़ा सुख और फिर दु ख देता है। आपकी सहायता से पुण्यानुबधी पुण्य की प्राप्ति होती है, जिससे आत्मा चढ़ कर फिर गिरती नही है।

सुबाहुकुमार को तेरी सहायता मिल जाने से कोई कष्ट न उठाना पड़ा और धीरे-धीरे मोक्ष भी मिल गया। इसीलिए

है । मगर सूर्य के उपकार की व्याख्या इतनी ही नही है, बल्कि ससार के सचालन के लिए प्रकाश वही देता है। उसी के प्रताप से अन्न पकता है, जल बरसता है और फल-फूल उत्पन्न होते हैं । अपने शरीर मे जो रक्त दौड रहा है वह सूर्य की ही गर्मी से । अपन जो शब्द सुनते हैं सो सूय के ही प्रताप से । यदि सूर्य वायु को गर्म न करे तो शब्द वही जाड़े मे ठिठुर जाय—दूर तक पहुचे ही नही । मतलब यह है कि जड़ पदार्थो का खेल सूर्य पर निर्भर है । ऐसी अवस्था मे अगर कोई सूर्य को वन्दनीय मानता है तो क्या वह सूर्य पर ऐहसान करता है ?

'नही !'

इस चिदानन्द ने अनन्त सूर्यो का प्रकाश पाया है परन्तु इसके आन्तरिक कर्म नही कटे । इससे सिद्ध होता है कि द्रव्य के प्रताप से व्यावहारिक कार्य हुए, आन्तरिक कार्य नही हुए। यह चिदानन्द सूर्य विमान मे भी उत्पन्न हो आया, फिर भी इसका निस्तार नही हुआ। इसलिए अब भावसूर्य भगवान् अरिहन्त को देख । यह भगवान् अरिहन्त सूर्य की भाति, किन्तु आन्तरिक दुःख का नाश करने वाला है । इसलिए मेरा वन्दनीय और पूजनीय वही है ।

प्रश्न किया जा सकता है कि भगवान् आकर दुःखों का नाश तो करते नही, फिर उनकी प्रार्थना करने से क्या लाभ है ? वह तो वीतराग हैं । उन्हें दूसरे के दुःख दूर

करने और न करने से क्या मतलब ? इस प्रश्न का भी समाधान करना उचित है ।

सूर्य अपने तेज से प्रकाशमान होता है। वह किसी को काम मे लगाता है ? अर्थात् क्या वह यह कहता है कि तू यह काम कर ?

'नही !'

सूर्य सब को काम मे लगावे तो कोई गरीब रहे ?

'नही !'

यद्यपि सूर्य के निमित्त से वस्त्र-भोजन-सामग्री आदि की उत्पत्ति होती है, फिर भी अगर कोई कहने लगे कि जब सूर्य सब काम करता है तो मैं क्यो करू ? तो समझना कि ऐसा कहने वाला मूर्ख है। उसने सूर्य की असलियत ही नही समझी। सूर्य तो तटस्थ रहकर प्रकाश कर देता है और उसका प्रकाश होने पर सब अपने-अपने काम मे लग जाते हैं।

इस प्रकार काम तो सब अपन ही करते हैं, परन्तु करते तो सूर्य के प्रकाश से ही हैं न ?

'हा !'

तो यह तात्पर्य निकला कि सूर्य निमित्त है और उपादान कारण दूसरे-दूसरे हैं। सूर्य रूप निमित्त के बिना वे काम नही हो सकते। संभव है, इतना कहने पर भी आप न समझे हो। इसलिए और सरल करके समझाता हूँ।

आप कलम से लिखते हैं । बताइए कर्त्ता आप हैं या

कलम ? आप कहेंगे, कि कर्त्ता हम हैं और निमित्त कलम है। परन्तु दीपावली के दिन कलम की पूजा क्यो करते हैं ? कलम बनाई है तुमने, और लिखते भी हो तुम्ही, फिर पूजा करते हो कलम की। इसका क्या कारण है ?

'वह सहायता देती है !'

इसी तरह परमात्मा काम नही कराता। वह तो तटस्थ है, मगर उसी की बताई हुई क्रिया से ही काम होता है। इससे सूर्य की महिमा सूर्यभक्तो ने गाई है और परमात्मा की महिमा परमात्मा के भक्तो ने गाई है !

जिस तरह अक्षर लिखने मे कलम सहायक होती है, उसी तरह यदि परमात्मा मोहादि का नाश करने मे सहायक न हो तो कभी काम नही हो सकता अर्थात् सुख प्राप्त नही हो सकता।

आप जो अक्षर लिखते हैं, वह दूसरो से देखकर ही लिखते हैं। किसी शिक्षक ने आपको सिखाने के लिए अक्षर पट्टी पर लिख कर बतलाये होगे। उन्ही को देखकर आपने दूसरे अक्षर लिखे होगे। यह सत्य है न ?

'जी हा !'

उन अक्षरो ने आपसे कहा था कि आप हमको देख कर लिखें ?

'नही !'

फिर भी उनका उपकार मानते हो ?

'हां !'

ऐसे ही यदि पूर्वकालीन महात्मा, अरिहन्त पद पर न पहुंचते तो उसके साथ वाले किस आदर्श को देखते ? आज हम लोग जो कुछ धर्मकार्य करते हैं, वह पूर्वकाल से महात्माओ के ही प्रकाश से कर रहे हैं, इसलिए उनका उपकार मानना चाहिए। यह उपकार मानकर ही भक्त लोगो ने कहा है :—

श्री अभिनन्दन दुखनिकन्दन,
वदन पूजन जोग जी।

हे भगवान् अभिनन्दन ! तू दुखो का नाश करने वाला है। इस कारण वन्दनीय और पूजनीय है। इसके बाद—

आसा पूरो चिन्ता चूरो,
आपो सुख आरोग जी।

मैं आपकी शरण आया हूँ। दूसरो की शरण मे गया था तो उन्होने उल्टा संसार मे डाल दिया। शुभ सहायक के विना आत्मा नही चढती और मुझको जो सहायक मिले थे वे अशुभ थे। उनसे सहायता लेने पर पापानुबधी पुण्य मिलता है जो थोड़ा सुख और फिर दुख देता है। आपकी सहायता से पुण्यानुबधी पुण्य की प्राप्ति होती है, जिससे आत्मा चढ कर फिर गिरती नही है।

सुबाहुकुमार को तेरी सहायता मिल जाने से कोई कष्ट न उठाना पड़ा और धीरे-धीरे मोक्ष भी मिल गया। इसीलिए

मैं सब जंजाल छोडकर तेरी शरण मे आया हूँ। तुझ मे रागद्वेष नही है। रागी से राग करने पर आत्मा मोह मे डूबकर कर्मबन्ध करता है और विरागी अर्थात् तुझ परमात्मा से राग करने पर आत्मा कल्याण करके परमात्मदशा को प्राप्त हो जाता है। इसीलिए मैं तेरी शरण मे आया हूँ।

मित्रो ! नाम तो परमात्मा का लिया है, परन्तु परमात्मा से प्रेम करो या परमात्मा के आदेशानुसार प्राणी मात्र से प्रेम करो, बराबर है। जैसे राजा की सहायता करना राज्य की सहायता करना है और राज्य की सहायता करना राजा की सहायता है। इसे समझने के लिए उदाहरण लीजिए :—

एक सेठ का लडका कुएँ मे डूब रहा है। किसी दयालु ने उस डूबते हुए लडके को बचा लिया। ऐसी दशा मे सेठ उस बचाने वाले पर खुश होगा या नही ?

'होगा !'

इसी प्रकार परमात्मा सब का माता पिता है। तुम परमात्मा की सेवा करना चाहते हो तो उसकी सन्तान पर कृपा रखखो, उन पर दया करो। चाहे राग से ही सेवा करो, परन्तु वही पुण्य बधेगा जो अरिहन्त की सेवा करने पर बधता है।

कई लोग कहते हैं—परमात्मा कहा है ? उनको समझाना चाहिए कि ससार के सब जीव स्वभावतः परमात्मा

ही है। सुधर्मा स्वामी कहते हैं—

दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाण,
सच्चेसु वा अणवज्ज वयंति।
तवेसु वा उत्तम बभचेरं,
लोगुत्तमे समणे नायपुत्ते॥

ज्ञातपुत्र भगवान् महावीर ने मुझे समझाया है कि प्राणियो को अभयदान का पात्र समझो, तो सुख तुम्हारे समीप ही है। और भयभीत प्राणियो को अभयदान देने वाले के समीप ही परमात्मा है।

मित्रो ! दवाई का पात्र कौन है—रोगी या निरोगी ?

'रोगी !'

चिकित्सक किसे दवाई देता है ?

'रोगी को !'

अगर कोई चिकित्सक रोगी को दवा न दे तो उसे आप क्या कहेंगे ?

'मूर्ख !'

इसी आधार पर समझो कि भगवान् ने सब दानो में अभयदान को उत्ताम बतलाया है, परन्तु अभयदान का पात्र कौन है ? अभयदान उसी को दिया जा सकता है जो भय पाया हुआ हो, भय के दुःख से पीड़ित हो। जिसे भय ही नही है उसे अभयदान लेने की क्या आवश्यकता है ?

लेकिन आपको तो यह समझाया जाता है कि किसी

का दुःख दूर कर दोगे तो कर्मबन्ध हो जायगा। कहाँ तो भगवान् का उपदेश और कहा तेरापथियों का कथन ! तेरापंथियों का कहना है कि भय न उपजाना, बस यही अभयदान है।

इनसे पूछना चाहिए कि भय न उपजाना अभयदान है तो जिसको भय हुआ है, उसका भय मिटा देना क्या भयदान हुआ ? मित्रो ! जो अभयदान का पात्र हो उसको अभयदान दो। अभयदान का पात्र भयग्रस्त जीव ही है।

भयभीत प्राणी को अभयदान देने की आज्ञा जैनशास्त्र मे तो है ही, पुराणों ने भी अभयदान की महिमा गाई है। महाभारत मे कहा है :—

> एकत. काचनो मेरु कृत्स्ना चैव वसुन्धरा।
> एकस्य जीवित दत्ता-न्न च तुल्य कदाचन ॥

अर्थात् हे युधिष्ठिर ! एक ओर कंचन का मेरु और रत्नमय पृथ्वी का दान करो और दूसरी ओर भयभीत को अभयदान दो। इन दोनो मे अभयदान ही श्रेष्ठ दान है।

[ग]

मैं प्रतिदिन प्रार्थना के विषय मे कुछ कहता हूँ। प्रार्थना करना और प्रार्थना के विषय मे अपने भावों को प्रकट करना मेरे लिए यह वहुत प्रिय कार्य है। इसलिए आज भी कुछ कहता हूँ।

संसार मे जितने भी आस्तिक धर्म के अनुयायी हैं, किसी न किसी रूप मे वे परमात्मा की प्रार्थना अवश्य करते

हैं। परन्तु सच्ची प्रार्थना का रूप कैसा है, इस सम्बन्ध में कहने की इच्छा है।

शास्त्र मे कहा है कि ससार में चार प्रकार के प्रार्थना करने वाले हैं– (१) आर्त्त (२) जिज्ञासु (३) अर्थार्थी और (४) ज्ञानी।

आर्त्त लोग केवल दुःख मिटाने के लिए प्रार्थना करते हैं। सिर दुःख रहा है तो, हे परमात्मा, सिर का दर्द मिटा दे! पेट दुखता है तो, हे भगवन्! पेट अच्छा कर दे! अर्थात् ऐसे लोग चिन्ता और दुख के समय परमात्मा का नाम लेते हैं। इस सम्बन्ध मे एक परम्परा-सी पड गई है:—

तू ही तू याद आवे रे दरद में।

अर्थात्—प्रभो! दुख आ पड़ने पर तू याद आता है। कहने का तात्पर्य यह है कि आर्त्त लोग दुख से पीड़ित होने पर दु.ख को दूर करने के लिए परमात्मा का स्मरण करते हैं।

दुख की सीमा भी निराली-निराली है। बडे को बड़ा और छोटे को छोटा दु.ख होता है। बालकपन मे भूख का दु.ख होता है जो मा के स्तन देने पर मिट जाता है। वही बालक जब बड़ा होता है और लाखो की सम्पत्ति का स्वामी बनता है, उस समय आहार की भूख के दुख के बदले उसका दुख और ही प्रकार का होता है। तब उसे मान-बडाई आदि की नवीन भूख लगती है। उस समय वह मान बड़ाई का इच्छुक होकर पुत्र, स्त्री आदि की अभिलाषा से परमात्मा की प्रार्थना करता है। यह अर्थार्थी है, ज्ञानी नही।

इसने परमात्मा की सत्ता को नही पहचाना।

मुमुक्षु लोग आर्त्ति (पीडा) को नष्ट करने के लिए परमात्मा की प्रार्थना नही करते वरन् वे आर्त्ति के कारण का नाश करने के लिए परमात्मा का भजन करते हैं। वे यह देखते हैं कि दु ख का बीज कहा है? वे दु.ख से डरते नही, दु.ख चाहे जितना हो, परन्तु वे दु ख का अकुर नष्ट करने के लिए परमात्मा से प्रार्थना करते हैं।

जैसे एक चोर चाहता है कि मैं जेल न भेजा जाऊँ। दूसरा चोर कहता है कि मैंने चोरी की है, इसलिए जेल जाने मे हर्ज नही। मगर मैं चाहता हूँ कि जेल जाने का कारण—चोरी करने की टेव–नष्ट हो जाय। इसी प्रकार मुमुक्षु पुरुष पाप से छूटने के लिए परमात्मा की प्रार्थना करते हैं, दुःख से छूटने के लिए नही। उनका कहना है कि दु.ख तो अनेक बार मिटा और उससे तात्कालिक लाभ भी मिला, परन्तु दुःख के कारण नष्ट न होने से वह लाभ स्थायी नही हुआ। अब अगर तात्कालिक लाभ ही चाहिए तो उसके लिए परमात्मा से याचना करने की क्या आवश्यकता है? ऐसा लाभ तो औरो से भी मिल सकता है। ईश्वर से तो मैं यही चाहता हूँ कि मेरे दु.ख के कारणो का ही समूल नाश हो जाय।

अर्थार्थी, परमात्मा को किसी मतलब से याद करते हैं, परमात्मा को अपनी आवश्यकताएँ पूर्ण करने वाला मानकर उसकी भक्ति करते हैं। मतलब न हो तो उसे याद न

करे। इसलिए उन्हे सकट के समय ही परमात्मा की याद आती है। उनका यह परमात्म-स्मरण भी श्रेष्ठ नही है।

हा, ज्ञानी जो प्रार्थना करता है वह अकथनीय है। उसका वर्णन करने की शक्ति किसी मे नही है। आगम कहता है—

तक्का तत्थ न विज्जइ,

तथा—

यत्र वाचो निवर्त्तन्ते।

जिस स्थान पर जाकर वाणी सहित मन लौट पडा, उसका दिग्दर्शन तो कराया जा सकता है परन्तु उस स्थान पर पहुंचने वाला ही उस वस्तु को भली भाति जानता है। गूंगा गुड के स्वाद को क्या बतलाएगा ? गुड मीठा तो उसे लगता है परन्तु उस मिठास का वर्णन करने की शक्ति उसमें नही है। फिर भी जैसे गूंगा गुड़ खाकर उसका स्वाद प्रकट करने के लिए मुंह मटकाता है, उसी प्रकार मैं भी इस विषय में कुछ कहने की चेष्टा करता हूँ।

ज्ञानी कहते हैं—आत्मा और परमात्मा मे भेद ही नही है। मैं किससे क्या मांगूं ?

तू सो प्रभु, प्रभु सो तू है,
द्वैत—कल्पना मेटो।
सुध चेतन आनन्द विनयचन्द,
परमारथ पद भेटो।

रे सुज्ञानी जीवा ! भज ले रे जिन इकवीसवा !

जिसकी दृष्टि मे आत्मा और परमात्मा के बीच भेद ही नही रह गया है वह परमात्मा से क्या याचना करेगा !

एक पतिव्रता स्त्री पूर्णरूप से पति की हो गई। उसकी अर्धांगिनी बन गई। क्या वह कहेगी कि यह मकान मेरा है और यह गहने मेरे हैं, सो मुझे दे दो ?

'नही !'

मगर जो लोग सोने-चांदी के पति-पत्नी हैं वे इन बातो को कैसे समझेंगे ? आज तो दोनो की चाबिया अलग-अलग होती हैं। एक की वस्तु को हाथ लगाने का दूसरे को अधिकार भी नही होता। मगर जो सच्ची पतिव्रता है, अपने पति को प्राणो से भी अधिक चाहती है, वह क्या यह माग करेगी कि अमुक चीज हमे दे दो !

पिता और पुत्र का सम्बन्ध होने पर कौन-सी वस्तु किसकी ? भेद रहने की बात निराली है, परन्तु पूर्ण विश्वास होने पर यह चीज मेरी और यह चीज तेरी, इस तरह का भेदभाव रहता है ?

'नही ?'

इसी प्रकार ज्ञानी परमात्मा के साथ अभेद-सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं। उनमें कोई भेद नही रहता। फिर माग के लिए अवकाश ही कहा है ?

जिस दिन आत्मा उस कोटि पर पहुंच जाता है, सब

सासारिक सुख तुच्छ लगते हैं। आप सोचते होंगे, बिना सिर मुडाये अर्थात् साधु हुए बिना यह सुख नही मिल सकता, परन्तु यह बात नही है। जिसकी भी आत्मा वहाँ पहुंच जाएगी वही इस सुख को पा सकता है। वास्तव मे आत्म-ज्ञान का अनुभव करके परमात्मा का साक्षात् करने का सुख अवर्णनीय है।

ज्ञानियो की यह भावना है। इस वास्ते जो ज्ञानी होकर परमात्मा की प्रार्थना करता है उसकी आत्मिक रचना निराली है। जब आत्मा और परमात्मा की एकता हो जाती है तभी यह निराली रचना बनती है।

'हस' को उलट दीजिए—'सह' बन जायगा। 'सह' का सस्कृत रूप 'सोऽह' है। ज्ञानियो की भावना यह रहती है कि 'ह-स' अर्थात् जो मैं हूँ वही वह है और जो वह है, वही मैं हूँ। मुझमे और परमात्मा मे कोई अन्तर नही है।

य· परमात्मा स एवाह, योऽह स परममस्तत ।
अहमेव मयाऽऽराध्य, नान्य कश्चिदिति स्थिति ।

अर्थात्—जो परमात्मा है वही मैं हूँ। जो मैं हूँ वही परमात्मा है। अतएव मैं स्वय ही अपना आराध्य हूँ। मेरा आराध्य और कोई नही है। यह असली-पारमार्थिक स्थिति है।

मगर ऐसा विचार कर अभिमान नही उत्पन्न हो जाना चाहिए। इस कोटि पर पहुंचने के लिए सम्पूर्ण अभिमान को गला देना होता है। फिर जैसे मिश्री की पुतली जल मे गल

जाती है, ऐसे ही आत्मा, परमात्मा के साथ एकाकार हो जाता है। अगर मिश्री की पुतली पानी मे न गली तो समझ लीजिये कि या तो, वह मिश्री नही है, या जल से मिली नही है। इसी प्रकार जिस आत्मा मे मेरे-तेरे की भेद-कल्पना वनी हुई है, समझ लो कि वह 'सोऽहं' नही बना है।

जिसकी जैसी इच्छा हो, परमात्मा का नाम भजे। वह—

श्री अभिनन्दन दुखनिकन्दन,
वंदन पूजन जोग जी।

श्री अभिनन्दन भगवान् दु.ख का नाश करने वाले हैं। उनकी प्रार्थना चाहे अर्थार्थी करे या ज्ञानी, प्रार्थना से दुखो का नाश होगा ही।

५-श्री सुमतिनाथ स्वामी

प्रार्थना ।

सुमति जिणेसर साहिबाजी 'मेघरथ' नृप नो नन्द ।
'सुमगला' माता तणो जी, तनय सदा सुखकन्द ॥
प्रभु त्रिभुवन तिलोजी ॥१॥

सुमति सुमति दातार, महा महिमा निलोजी ।
प्रणमूँ वार हजार, प्रभु त्रिभुवन तिलोजी ॥२॥

मधुकर नो मन मोहियोजी, मालती कुसुम सुवास ।
त्यूँ मुज मन मोह्यो सही, जिन महिमा सुविमास ॥३॥

ज्यूँ पकज सूरजमुखीजो, विकसे सूर्य प्रकाश ।
त्यूं मुज मनडो गह्योजी, सुनि जिन चरित हुलास ॥४॥

पपईयो पीउ-पीउ करेजी, जान वर्षाऋतु मेह ।
त्यूं मो मन निसदिन रहे, जिन सुमरन सू नेह ॥५॥

काम भोगनी लालसाजी, थिरता न धरे मन्न ।
पिण तुम भजन प्रतापथी, दाझै दुरमति वन्न ॥६॥

भवनिधि पार उतारियेजी, भक्त वच्छल भगवान् ।
'विनयचन्द' नी वीनती, थें मानो कृपानिधान ॥७॥

श्री सुमति जिनेश्वर स.यबा रे ।

ससार की माया के बन्धन से आत्मा का छुटकारा कैसे हो ? यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है । ससार के बन्धनों ने आत्मा को ऐसा जकड रक्खा है कि इससे आत्मा का निस्तार होना कठिन जान पडता है । मगर शास्त्रकार कहते हैं— 'हिम्मत मत हारो । पुरुषार्थ मत त्यागो । हिम्मत करने से सभी कुछ हो सकता है । आत्मा के लिए और कुछ न बने तो भगवान् से प्रीति करना सीखो । भगवान् से प्रीति करने पर आत्मा ससार के बन्धनो से मुक्त हो जाता है ।'

तब प्रश्न खडा होता है कि परमात्मा से प्रीति करना सीखें किससे ? इसे सीखने के लिए किसके पास जाएं ? इस प्रश्न का समाधान करने के लिए शास्त्रकारों का कथन है कि तुमको परमात्मा से प्रीति करना सीखने के लिए और कही नही जाना पडेगा, प्रकृति के नियम और ससार के पदार्थ ही प्रेम करना सिखा देंगे ।

भौंरा जब मकरन्द की सुगन्ध में मग्न हो जाता है तो वह ससार के किसी दूसरे पदार्थ की गरज नही करता । बस, इसी तरह अपने मन को उस परमात्मा से लगा दो, जिससे विषयवासना पैदा न हो ।

शास्त्र मे प्रेम का प्रत्यक्ष उदाहरण अरिष्टनेमि और राजीमती का दिया है । प्रेम की साक्षात् मूर्ति देखना हो तो राजीमती का उदाहरण मिलेगा, जिसमें भगवत्प्रेम ओतप्रोत

है। तोरण से नेमिनाथ लौट गये विवाह किये बिना ही, उसकी तो कोई बात ही नही, पर राजीमती ने भगवान् से जो सम्बन्ध जोडा, उसके लिए उसने कैसे मर्मम्पर्शी उद्गार प्रकट किये !

सखियो ने राजीमती को एक एक ऋतु का पृथक्-पृथक् वर्णन और उसमे होने वाली कामवेदना को अच्छी तरह सुना कर दूसरा लग्न करने के लिए समझाया। पर राजीमती ने उनके कथन का एक ही उत्तर दिया—

प्रीति में मैंने वचन हारा है उसके वास्ते,
प्रेम का जो भाव है सारा है उसके वास्ते।

सुख से बढ़कर दुख मुझे प्यारा है उनके वास्ते,
यह शरीर इस जीव ने धारा है उनके वास्ते।

छोडकर यह देह जब परलोक में भी जायगा,
फिर भी उनके प्रेम में डूबा हुआ ही जायगा।

राजीमती कहती है सखियो, किसे सकटों का भय दिखलाती हो ? सकट तो मुझसे परे हो चुके हैं। तुम कहती हो कि मैं कुँवारी हूँ, पर मैंने अपना हृदय उनके चरणो मे समर्पित कर दिया है। तुम मुझे सासारिक सुखो का प्रलोभन देती हो, पर ससार के सुख मुझे अग्नि के समान सतापजनक दिखाई देते हैं और जो दु.ख तुम्हें घोर से घोर प्रतीत होते हैं वे मेरे लिए आनन्ददायक हैं।

मित्रो ! राजीमती की बात समझ मे आई ? आप

लोगो ने कभी प्रेम किया है ? प्रेम की गति ऐसी ही है। प्रेम में दु ख भी सुखद हो जाता है और सुख भी दु खप्रद बन जाता है। आप लोग प्रेम की नही, मोह की हालत में हैं। मोह मे फस कर, पैसो के लिए भूख-प्यास के सकट ऐसे सहे होगे जैसे साधु भी नही सहते हैं। पर निष्काम प्रेम किया तो केवल भक्तो ने ही। दूसरे उस प्रेम के मिठास को क्या समझें।

राजीमती के दृष्टान्त से आपको कौन-सा तत्त्व ग्रहण करना चाहिए ? वह तत्त्व यही है कि जिससे प्रेम किया जाय उससे सच्चा ही प्रेम किया जाय। बिना सच्चे प्रेम के आनन्द की अनुभूति नही हो सकती। सामायिक और सवर आदि के प्रति सच्चा प्रेम होगा तो वे आनन्ददायक ही प्रतीत होंगे, नही तो उतनी देर भी दु खदायी हो जायगी।

जो राजीमती जैसा प्रेम एक घडी को भी कर लेगा, ससार के सुखो मे मग्न न होकर उसी प्रेम मे आनन्द मानेगा, उसे उसी अनिर्वचनीय आनन्द की प्राप्ति होगी जो राजीमती को प्राप्त हुआ था।

जो प्रेम राजीमती में पैदा हुआ, ससार में अत्यन्त दुर्लभ है। फूल का तो नाश हो सकता है पर राजीमती के प्रेम का नाश नही हो सकता। फूल जल से गल सकता है, अग्नि से जल सकता है; जाड़े से सूख भी सकता है, पर राजीमती के प्रेम का किसी भी प्रकार नाश नही हो सकता।

पवन, पानी और आग— सब मिलाकर भी राजीमती का नाश नही कर सकते। शरीर का अर्थ न करो, प्रेम का अर्थ करो अर्थात् जिसमे प्रेम है उसका नाश नही है।

सीताजी अग्नि के कुड मे कूद पड़ी। अग्नि उन्हें जला सकी ?

'नही !'

क्यो ?

'राम के प्रति प्रेम के प्रभाव से !'

भक्तो ने भगवान् से निवेदन किया है—

कल्पान्तकालपवनोद्धतवह्निकल्प,
दावानल ज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिग।
विश्व जिघत्सुमिव सम्मुखमापतन्त,
दृष्ट्वा भय भवति नो भवदाश्रितानाम्।

—भक्तामरस्त्रोत।

प्रलयकाल की हवा से प्रेरित प्रचण्ड दावानल जल रही हो। उसकी लपटें उठ रही हो। उसकी भयकरता को देखकर ससार भले ही डरे, मगर जिसके हृदय मे तेरे प्रति प्रेम होगा उसे वह भीषण आग भी भयभीत नही कर सकती। भक्त के सामने ऐसी आग भी ठडी पड जाती है।

भक्त प्रह्लाद के विषय मे भी यही बात कही जाती है। आग उसका क्या बिगाड़ सकी ? वह उल्टे जलाने वाले को ही जलाने लगी। यह प्रताप परमात्मप्रेम का ही था।

ईश्वर से प्रेम करो तो कोई अग्नि जला नही सकती।

जिसके हृदय मे परमात्मा का प्रेम है, उस पर हलाहल जहर का भी कोई प्रभाव नही होता। भगवान् महावीर को चण्डकौशिक सर्प ने डँसा। मगर क्या उन पर विष का असर हुआ ?

'नही !'

मीरा को जहर पिलाया गया। क्या वह मरी ?

'नही !'

बल्कि मीराँ ने क्या उद्गार प्रकट किये—

राणा भेजा विष का प्याला पी के मगन होई।
अन्त में से तन्त काढ पाछे रही सोई।

यह सब ईश्वर-प्रेम का ही प्रताप था। जिसके हृदय मे ईश्वरप्रेम का अमृत लबालब भरा होता है, उस पर जहर अपना प्रभाव नही दिखा सकता। वह जहर भी अमृत बन जाता है।

मित्रो ! प्रेम मे आओ। प्रेम बडी चीज है। प्रेम मे आने पर आपको कोई भी दुख नही सता सकता।

चन्दनबाला ने भगवान् महावीर को उडद के बाकले (घूघरी) बहराये। किन्तु हृदय मे प्रेम था तो वे कितने फलीभूत हुए ? आज सुवर्णमय उड़द के बाकले दो तो भी क्या ? ढ़ोग से काम नही चलता, प्रेम होना चाहिए। दान और तप आदि में भाव मुख्य है। सच्चे अन्त.करण से थोड़ा

भी करो तो वह कल्याणकारी है ।

बाइबिल मे लिखा है कि राई जितना भी प्रेम हो तो वह पर्वत जितना काम करेगा । जिसके हृदय मे प्रेम है वह मागना नही जानता, देना जानता है ।

आपके यहा कोई गुमाश्ता कुछ न लेकर काम करे तो उसके प्रेम की कितनी कीमत होगी ?

एक आदमी तुम्हे स्त्री भी देता है और धन भी देता है । इसके बदले तुम क्या देते हो ?

सारे घर की मालकिन बना देते हैं !

क्यो ? प्रेम से । और अगर खरीद कर लाये होते तो ऐसा न होता ।

सब कार्य शुद्ध अन्त करण से करो तो शान्ति मिलेगी । अगर कोई समझता है कि वह सब कुछ काम शुद्ध अन्त.करण से करता है फिर भी शान्ति नही मिलती, तो उसे समझना चाहिए कि कही न कही त्रुटि अवश्य है। उसे वह त्रुटि दूर कर देने का प्रयत्न करना चाहिए । जो प्रेम करके अपना तन, मन, धन परमात्मा को अर्पित करता है, उसे शान्ति मिले बिना रह ही नही सकती ।

[ख]

परमात्मा के प्रति प्रेम-सम्बन्ध स्थापित करने के लिए उनके चरित्र को सुन-समझ लेना उपयोगी होता है । जो महापुरुष होते हैं उनका चरित्र दिव्य होता है । उस दिव्य

चरित्र मे श्रद्धा होने से परम पद की प्राप्ति होती है।

गीता मे कहा है—

> जन्म कर्म च मे दिव्यमेव यो वेत्ति तत्त्वत.।
> त्यक्त्वा देह पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन।

श्रीकृष्ण कहते हैं - अर्जुन ! जो हमारे जन्म-कर्म को साधारण दृष्टि से देखता है, उसे वह साधारण ही दीखता है, और जो दिव्य दृष्टि से देखता है अर्थात् जो हृदय से समझता है वह देह छोडने पर पुनर्जन्म धारण नही करता।

साराश यह है कि परमात्मा का जीवनचरित्र सुनने से परम पद की प्राप्ति होती है। किस भाव से परमात्मा का चरित सुनना चाहिए, यह समझने के लिए प्रकृति के नियम पर ध्यान देने की आवश्यकता है। मैंने अभी जो स्तुति गाई थी उसमे भी कहा है—

> मधुकर नो मन मोहियोजी,
> मालती कुसुम सुवास।

भ्रमर का मन पुष्प पर मोहित हो गया। उसकी प्रीति सुगन्ध से लग गई। फिर वह दुर्गन्ध पर नही बैठ सकता। लाख प्रयत्न करने पर भी वह दुर्गन्ध के पास नही जाता। अतएव भगवान् से एकनिष्ठा प्रीति करने के लिए भ्रमर के उदाहरण को सदैव ध्यान मे रखना चाहिए।

भ्रमर को पुष्पो से ऐसी प्रीति करना किसने सिखलाया ? वह किस पाठशाला मे यह सीखा है ? किसी इतिहास से

पता लगता है ?

'नही !'

अगर सृष्टि की आदि का पता लगे तो इस बात का पता लगे कि भ्रमर ने पुष्प से प्रीति करना कहाँ, किससे और कब सीखा ? जैसे सृष्टि अनादि है, उसी प्रकार भ्रमर की यह प्रीति भी अनादिकालीन है ।

भँवर की प्रीति पुष्प-सुगन्ध पर ऐसी है कि चाहे वह मर जाय परन्तु दुर्गन्ध के पास नही जा सकता । जाना तो दूर, उसका चित्त भी उस ओर नही जा सकता । अब हमें देखना चाहिए कि अपना मन भी भँवर की तरह किसी से अनन्य प्रीति करता है या नही ?

मित्रो ! भँवर की यह प्रीति आप लोगो की जानी हुई है। उक्त भजन को भी आप गाते हैं, परन्तु कभी आपने अपने मन से यह भी पूछा है कि वह परमात्मा से प्रीति करने मे इसका पालन करता है या नही ?

ससार मे सुगध और दुर्गन्ध दोनो हैं और रहेंगे । यह सभव नही कि केवल सुगध ही रहे । दोनो न हों और सिर्फ सुगंध ही हो तो यह नही मालूम हो सकता कि किसकी प्रीति किस पर और कैसी है ?

भँवर की प्रीति सुगन्ध से है, परन्तु मक्खी, जो भँवर की ही तरह का छोटा जीव है, कभी सुगन्ध के पास जाती है ? आप जब चन्दन घिसते हैं तो मक्खी पास मे आती है ?

'नही !'

और बालक की अशुचि पर बहुत आती है। मक्खी को अशुचि से प्रेम करना किसने सिखलाया है, कि हटाने पर भी नही हटती। वह अशुचि के कीटाणुओ को सब जगह फैलाती है। भले आदमियो के मस्तिष्क मे भी भर देती है, दूसरी चीजो पर बैठकर उन्हे बिगाड देती है। मतलब यह है कि वह खुद तो दुर्गन्ध से प्रेम करती ही है, संसार को भी अपनी ही भाति दुर्गन्धप्रिय बनाना चाहती है। अब आप विचार कर ले कि आप अपने मन को कैसा बनाना चाहते है!

मित्रो! अगर परमात्मा से, भँवर की तरह, एक निष्ठा प्रीति रखना हो तो मैं यह सुझाव देता हूँ कि अपने हृदय के भाव अच्छे रखो। जो काम विद्वान् नही कर सकता वह काम सद्भाव से हो जाता है। इसीलिए भक्त-जनो ने कहा है—

मधुकरनो मन मोहियो रे,
मालिति कुसुम सुवास।
तू मुझ मन मोहियो रे,
जिन महिमा सु पियास।

अर्थात् - मेरा मन परमात्मा के चरित्र मे ऐसा मोहित हो जैसे भँवर का मन सुगन्ध पर मोहित होता है।

आप लोग भी परमात्मा से इतना ही मांगो, ज्यादा

न मागो । ज्यादा मागने से इसमे भी गड़बड़ हो जाती है। परमात्मा से प्रार्थना करो कि, प्रभो ! मुझे इतना ही मिल जाय । मैं राज्य, देश आदि ससार के सुख नही चाहता, मुझे तो केवल तेरी प्रीति चाहिए। किसी कवि ने कहा है :—

चाहूँ न सुगति सुमति सम्पति कछु,
रिधि सिधि मान बडाई ।
हेतु रहित अनुराग राम-पद,
रहो उदित अधिकाई ।।

प्रभो ! मुझे न सुगति चाहिए, न सम्पत्ति चाहिए । मुझे ऋद्धि-सिद्धि, मान बडाई भी नही चाहिए । मुझे सिर्फ यही चाहिए कि किसी प्रकार का बदला चाहे बिना तेरे चरणो मे मेरी प्रीति बनी रहे । इसके सिवाय और कुछ भी मैं नही चाहता ।

परमात्मा से प्रीति कैसी होनी चाहिए, इसके लिए एक उपमा और देता हूँ—

ज्यो पकज सूरजमुखी विकसे सूर्य-प्रकाश ।
त्यों मुझ मनडो गहगहे, सुन जिन चरित हुलास ।।

सूरजमुखी कमल अपना मुँह सदा सूर्य की ओर रखते हैं। सूर्य जिधर-जिधर फिरता है, उनका मुँह भी उधर ही उधर फिरता जाता है। शाम को जब सूरज पश्चिम दिशा मे पहुंच जाता है तब उनका मुँह भी पश्चिम में ही हो जाता है। प्रात.काल जब सूर्य पूर्व दिशा में उगता है तो उनका

मुँह भी पूर्व की ओर हो जाता है।

अब विचार कीजिए कि इन्हे सूर्य से ऐसी प्रीति करना किसने सिखलाया ? बन्धुओ ! प्रकृति क्या-क्या दिखलाती है, क्या-क्या सिखलाती है, यह देखो और फिर ग्रन्थो को देखो तो पता चलेगा कि उनमे कैसी अपूर्व शिक्षा भरी पड़ी है।

भक्त कहते है—प्रभो ! जैसे कमल और सूर्यमुखी का प्रेम सूर्य पर रहता है इसी प्रकार मेरे हृदय का प्रेम तेरे चरित्र पर रहे। भजन, स्तवन, चरित, जो भी गाऊ, तेरे ही गाऊ। सूरजमुखी कमल का मुह जैसे सूरज की ओर ही रहता है, मेरे नेत्र तेरे चरित्र पर ही रहें।

हृदय मे इस तरह की दृढता आप लोग भी धारण करें। यह मत सोचो कि परमात्मा साक्षात् नही दिखता तो उससे कैसे प्रेम करें ? जो प्रेम विरह मे होता है वह साक्षात् मिलने पर नही रहता। यह बात चरित द्वारा मैं आपको समझाता हूँ। मैं जो चरित सुनाया करता हूँ वह उपदेश से खाली नही है। चरित मे जो शिक्षा भरी होती है, उसी को बताने के लिए मैं चरित बाचता हूँ।

रुक्मिणी ने जब तक कृष्ण का रथ नही देखा तब तक उसे ऐसी व्याकुलता रही कि कृष्ण के नाम की ही रट लगी रही। रुक्मिणी को इतनी व्याकुलता थी तो उसे कृष्ण मिले हो। आपके हृदय मे परमात्मा के लिए ऐसी व्याकुलता है ? अगर आपको परमात्मा से भेंट करनी है तो हृदय में

ऐसा विरहभाव उत्पन्न करो। फिर परमात्मा से भेंट अवश्य होगी।

जिसके हृदय मे विरह की व्याकुलता होती है उसे अपने प्रेमी के सिवाय और कोई सुहाता ही नही। भँवर को जब तक कमल नही मिलता, वह भनभनाता ही रहता है। सूर्य के बिना सूरजमुखी मुँह फेरता है ?

'नही!'

बस, ऐसी ही दृढता धारण कर लो कि ससार के पदार्थों मे न लुभा कर परमात्मा के स्वरूप मे ही तल्लीन रहूँगा। शरीर कही भी रहे, अन्तःकरण बराबर उसी मे लगा रहे।

मैं आपको थोडी ही देर मे यह समझा रहा हूँ। परन्तु दो मिनिट मे दी हुई चाबी से घड़ी कई दिन चलती है। यह उपदेश भी हृदय मे परमात्मा से प्रेम करने की चाबी है। हृदय को परमात्मा से बराबर लगाओ तो हृदय परमात्मा को बहुत शीघ्र पकड लेगा। आत्मा स्वय सच्चिदानन्द है, इसलिए उसका प्रेम परमात्मा से लगना कोई कठिन काम नही है, केवल हृदय मे विश्वास और दृढता की चाबी भरने की आवश्यकता है।

[ग]

सुमति जिनेश्वर सायबाजी।

परमात्मा सुमतिनाथ की स्तुति करके आत्मा को किस भाव पर जागृत करना चाहिए ? सुमतिनाथ भगवान् सुमति

के दातार हैं।

आत्मा मे दो प्रकार की मति है—एक सुमति और दूसरी कुमति। एक के उदय से दूसरी मति का नाश हो जाता है। अर्थात् दोनो न रहकर एक ही रहने को आत्मा की परम्परा है। किन्तु कुमति को नष्ट करके सुमति को उदित करने के लिए किसी तीसरे की आवश्यकता होती है। जैसे हम लोग देखते तो आख से हैं, फिर भी आख की सहायता के लिए सूर्य के प्रकाश की आवश्यकता होती है। आखें तो हमारी रात्रि मे भी रहती हैं मगर प्रकाश न होने से वे देख नही सकती। इससे सिद्ध है कि आखें यद्यपि देखती स्वय हैं किन्तु उनके लिए सूर्य के प्रकाश की आवश्यकता रहती है इसी प्रकार यद्यपि आत्मा मे ज्ञान-चक्षु है फिर भी परमात्मा रूपी सूर्य के प्रकाश के बिना वे समीचीन रूप से देख नही सकती। इसीलिए प्रार्थना की है—

सुमति जिनेश्वर साहबा जी,
मेघरथ नृपनो नन्द।
सुमगला माता तणो,
तनय सदा सुखकन्द।
प्रभु त्रिभुवन तिलोजी,
सुमति सुमति दातार महा महिमा निलोजी।

हे सुमतिनाथ! आप सुमति के दातार हैं। आप महामहिमा के धारक हैं। सूर्य से आंख को प्रकाश मिलता

है और तुझसे हृदय को प्रकाश मिलता है। इसलिए तुमसे बढकर कोई नही है।

सूर्य से आख को प्रकाश मिलता है इसलिए उनका उपकार माना जाता है, फिर परमात्मा, जो हमे सुमति प्रदान करता है, हमारे हृदय को प्रकाश देकर ज्ञान-चक्षु को प्रकाशित करता है, उसका उपकार न मानना, उसकी स्तुति न करना क्या कृतघ्नता नही है ?

६-श्री पद्मप्रभु स्वामी

प्रार्थना ।

पदम प्रभु पावन नाम तिहारो, पतित उद्धारन हारो ।।टेर।।
जदपि धीवर भील कसाई, अति पापिष्ट जमारो ।
तदपि जीव हिंसा तज प्रभु भज, पावे भवनिधि पारो ।।१।।
गौ ब्राह्मण प्रमदा बालक की, मोटी हत्याचारो ।
तेहनो करणहार प्रभु भजने, होत हत्यासूँ न्यारो ।।२।।
वेश्य चुगल छिनार जुवारी, चोर महा वटमारो ।
जो इत्यादि भजें प्रभु तोने, तो निवृते ससारो ।।३।।
पाप पराल को पुज बन्यो, अति मानो मेरु अकारो ।
ते तुम नाम हुताशन सेती, लहजे प्रज्ज्वलत सारो ।।४।।
परम धर्म को मरम महारस, सो तुम नाम उचारो ।
या सम मन्त्र नही कोई दूजो, त्रिभुवन मोहनगारो ।।५।।
तो सुमरण विन इण कलयुग में, अवर न कोई अधारो ।
मैं वारी जाऊ तो सुमरन पर, दिन-दिन प्रीत बधारो ।।६।।
'सुषमा राणी' को अगजात तू, 'श्रीधर' राय कुमारो ।
'विनयचन्द' कहे नाथ निरजन, जीवन प्राण हमारो ।।७।।

पदमप्रभु पावन नाम तिहारो।

आत्मा को किसी शक्ति की आवश्यकता है। शक्ति अशक्त चाहते हैं। जैसे रोगी को दवाई की, भयभीत को किसी वीर के आश्रय की, भूखे को भोजन की और प्यासे को पानी की आवश्यकता होती है, ऐसे ही अनन्तकाल से सांसारिक क्लेशो मे तप कर अशक्त हुए आत्मा को भी एक शक्ति की आवश्यकता है। वह शक्ति ऐसी होनी चाहिए जो इस तपन को शान्त कर दे।

कहने को ससार के सभी प्राणी रात-दिन इसी उद्योग मे लगे हैं। खाना-कमाना आदि सभी क्रियाएँ इसी प्रयोजन से करते है। किन्तु इस ढग से आत्मा का उद्धार नही होता। इसलिए हे आत्मा ! तू सत्सगति करके यह निर्णय कर कि तेरे उद्धार के लिए किस शक्ति की आवश्यकता है ?

यह तो निश्चित है कि आत्मा को जो शक्ति चाहिए वह शक्ति ससार के जड़ पदार्थों मे नही है। वह निराली और अलौकिक ही है। क्योकि सासारिक पदार्थों की शक्ति लेते हुए अनन्तकाल बीत जाने पर भी आत्मा अब तक दुर्बल है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि आत्मा का कल्याण करने वाली शक्ति दूसरी ही है। इसलिए जो शक्ति आत्मा का कल्याण करने वाली है उसको पहचान कर उसी से प्रीति करना चाहिए।

अगर आपने अपनी आत्मा का कल्याण करने का निश्चय

कर लिया है तो आत्म कल्याण का एक सादा उपाय परमात्मा से प्रीति करना है । आत्मा को परमात्मा की प्रीति मे लगा देने से सहज ही आत्मकल्याण हो जाता है ।

आपने रेल तो देखी है न ?

'जी हां !'

रेल मे एक डिब्बा दूसरे डिब्बे से जुड़ा रहता है और फिर सब डिब्बे एजिन के साथ जुडे रहते हैं । सब डिब्बो मे एक से आंकुडे लगे रहते हैं, फिर चाहे वह प्रथम श्रेणी First Class) का हो या तृतीय श्रेणी (Third Class) का हो । आँकुड़ों मे कोई भेद नही रहता । एक डिब्बे के आँकुडे को दूसरे डिब्बे के आकुडे मे फँसा देने से और फिर एंजिन के साथ उन्हे जोड़ देने से एजिन सब को लेकर निर्दिष्ट स्थान पर पहुंच जाता है । एजिन कुछ भी भेद नही करता कि यह डिब्बा प्रथम दर्जे का है या तीसरे दर्जे का है । यदि वे डिब्बे एजिन को छोड दें तो फिर वही पडे रहे । वे आगे नही जा सकते । क्योकि सबको ले जाने की शक्ति एंजिन में ही है । डिब्बो मे वह शक्ति नही है ।

इसी प्रकार जिस परमात्मा मे अनन्त गुणो का पावर (शक्ति) है, उससे इसी तरह का सबध स्थापित कर लेना उचित है, जैसे रेल के डिब्बे एजिन के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ लेते हैं । तो जो गति डिब्बो की है वही तुम्हारी है । अर्थात् परमात्मा एजिन है । उसके साथ अन्तःकरण मिला

लेने से फिर कोई जोखिम नही रहता। जैसे रेलगाड़ी का एंजिन पहले और तीसरे दर्जे का भेद नही करता, इसी प्रकार परमात्मा के साथ प्रेम करने पर ऊँच, नीच, गरीब, धनवान् आदि सभी का उद्धार हो जाता है।

अब प्रश्न होता है कि परमात्मा रूपी एंजिन के साथ आकुडा कैसे मिलाया जाय ? उससे किस प्रकार प्रेम किया जाय ?

मित्रो ! इसमे कोई कठिनाई नही है। परमात्मा से प्रेम लगाना कठिन नही है। आपके हृदय मे इस समय क्रोध, लोभ, मोह, मात्सर्य आदि-आदि दुर्गुण भरे हैं। इन दुर्गुणों को निकाल देने पर परमात्मा के साथ प्रीती हो जायगी। इन दुर्गुणो को निकाल कर परमात्मा से प्रीति कर लेने पर फिर कोई डर नही रहता। ऐसा करने के लिए वेश्या, चुगल, चोर आदि किसी को भी बाधा नही है। अपने दुर्गुणों को दूर कर देने पर फिर चाहे वह महापापी भी क्यो न रहा हो, अपने पापो का पश्चात्ताप करके परमात्मा की शरण मे आ जाय तो उसका उद्धार अवश्य हो जायगा। पतित से पतित भी परमात्मप्रेम हो जाने पर परमात्मा का शरण पाता है। इसलिए तो परमात्मा का नाम पतित-पावन है।

परमात्मा के साथ प्रेम करने, आंकुडे से आंकुड़ा मिलाने से ही काम चलेगा। अगर कोई कहता है कि मैं बुरे काम

नही करता तो परमात्मा से प्रेम क्यो करूँ ? तो उसका भ्रमपूर्ण है। डिब्बा भले पहले दर्जे का हो, उसे एजिन के साथ जुडना ही पड़ेगा। एजिन के साथ जुड बिना वह भी एजिन के जाने के स्थान पर नही पहुंच सकता। अतएव अभिमान छोडकर परमात्मा का शरण ग्रहण करना चाहिए।

अब प्रश्न यह है कि दुर्गुणो को किस प्रकार दूर किया जाय ? कैसे उन पर विजय प्राप्त की जाय ?

इसका उत्तर यह है कि हम लोग एक भ्रम मे पड़े हैं। अगर हम उस भ्रम को हटा दे तो दुर्गुण पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

वह भ्रम क्या है ? वह यही कि हम दुर्गुण पर तो विश्वास करते है किन्तु सद्गुण पर विश्वास नही करते। अर्थात् लोगो को यह विश्वास है कि किसी ने थप्पड मारी तो हम भी उसे थप्पड मारें तो बदला चुक जायगा ! लोग यह मानते हैं— विश्वास करते हैं कि झूठ बोलने से, झूठा व्यवहार करने से, दूसरे की हत्या करने से या इसी प्रकार के अन्य कार्य क'ने से लाभ होगा। पर क्षमा, दया, शील, परोपकार आदि कार्यों पर जितना चाहिए उतना विश्वास नही है। इस भूल के कारण आत्मा सद्गुणो को छोडकर दुर्गुणो का सग्रह कर लेता है। अगर आत्मा को सद्गुणों पर विश्वास हो जाय तो दुर्गुण छूट जाएगे और परमात्मा से प्रीति होते देर नही लगेगी।

क्षमा मे क्या गुण हैं, यह बहुत कम लोग जानते हैं। झूठ मे क्या दुर्गुण हैं, इस बात को न समझ कर लोग उस पर इतना विश्वास करते हैं कि ससार मे बिना झूठ के काम नही चल सकता। लेकिन क्या झूठ के बदले सत्य से काम लेने पर ससार के काम रुक जाएँगे ?

एक वकील बहुत होशियार था। प्रायः जो वकील सच्चे को झूठा और झूठे को सच्चा बनाना जानते हैं वे बहुत निपुण माने जाते हैं। यह वकील ऐसा ही कायदेबाज और निपुण था। इस वकील की स्त्री धर्मवती थी।

ससार के लोग बड़े भ्रम मे हैं कि पाप के बिना हमारी आजीविका नही चल सकती। सचाई यह है कि धर्म से आजीविका मजे में चल सकती है। धर्म और पाप की आजीविका मे कार्य-कारण और भाव की तुलना है। धोखा और त्रस जीवो की विशेष हिंसा आदि करके, इस तरह के बुरे धधे करके आजीविका प्राप्त करने वाले को पापी कहते हैं। जो दगाबाजी नही करे, सत्य बोले और त्रस जीव की हिंसा न करे और इन सब से बच कर आजीविका प्राप्त करे वह धार्मिक कहलाता है।

एक दिन वकील भोजन करने बैठा। उसकी स्त्री सामने बैठकर उसे परोस रही थी। इतने में एक बडा सेठ आया और उसने पचास हजार के नोट वकील के सामने रख दिये। वकील ने पूछा—यह क्या है ?

सेठ—आपका मिहनताना।

वकील—कैसा मिहनताना ? मैंने आपके मुकदमे मे जो वकालत की थी, उसका मिहनताना तो मुझे मिल चुका। फिर यह किस बात का मिहनताना है ?

सेठ—वकील साहब, मेरा मुकदमा पाच लाख का था। वास्तव मे मुझे वादी का पाच लाख रुपया देना था। अगर आपने इतनी कुशलता न दिखलाई होती और वादी को झूठा न साबित कर दिया होता तो मुझे पाच लाख देने पडते। पर आपकी बदौलत मैं मुकदमा जीत गया। मैंने सोचा—पाच लाख बचे हैं तो ५० हजार वकील साहब को भी दे दू। इसलिए आया हूँ।

सेठ यह कह कर चला गया। वकील पचास हजार रुपये पाकर फूला न समाया। उसने अपनी पत्नी की ओर गर्वभरी दृष्टि से देखा और सोचा—मैं कितना चतुर हूँ ! सच्चे को झूठा और झूठे को सच्चा बनाना मेरे बाएँ हाथ का खेल है !

मगर यह क्या ? पत्नी तो अनमनी हो गई है ! वकील ने पूछा—'अरे, तुम उदास क्यो हो गई ?' और यह पूछते ही पत्नी की आखो से आसू बहने लगे।

पत्नी ने रोते-रोते कहा—इन पचास हजार को देखकर ही मुझे रोना आ रहा है।

वकील—आश्चर्य है ! एकदम पचास हजार रुपये आगये तो खुश होने की बात है या रोने की ?

पत्नी—मुझे ऐसा रुपया नही चाहिए। मैं पीस कूट कर पेट भरना अच्छा समझती हूँ, मगर पाप के पैसे से ऐश्वर्य भोगना अच्छा नही समझती। इस प्रकार पाप का पैसा इकट्ठा करके आप क्या स्वर्ग पा लेगे? सभी को आगे जाकर जवाब देना होगा। कृपा कर आप इस धन को अलग ही रक्खे। इसमे मुझे और मेरे बाल-बच्चो को शामिल न करें।

स्त्री की बात सुनकर वकील हैरान हो गया। सोचने लगा—जिसके लिए यह सब करता हूँ उसका तो यह हाल है! वकील ने साहस करके कहा—

'तुम भोली हो। सच्चे को झूठा और झूठे को सच्चा किये बिना पैसा आये कहा से?'

पत्नी—दुःख की बात है कि आपको झूठ पर इतना विश्वास है और सत्य पर विश्वास ही नही है! क्या झूठ का सहारा लिये बिना आपका पेट नही भर सकता? अगर आपने सत्य का पक्ष लिया होता तो क्या मिहनताना न मिलता? आपको पचास हजार मिले है, पर दूसरे के पाच लाख पर पानी जो फिर गया! फिर इससे झूठ की प्रतिष्ठा बढी, सत्य की प्रतिष्ठा घटी। झूठे को झूठा आचरण करने का उत्साह मिला और शायद सच्चे की सत्य के प्रति आस्था उठ गई हो!

कैसी धर्मनिष्ठ स्त्री थी! कोई मामूली स्त्री होती तो

कहती— चाहे पाप करो, चाहे धर्म करो, मुझे तो दो के बदले चार बगड़िया गढवा दो ! अच्छा-अच्छा खिलाओ, अच्छा-अच्छा पहिनाओ ! तब तो आप पति, नही तो पति कैसे ?

मित्रो ! आत्मा अजर-अमर है। इसने अनेक भव धारण किये हैं और अनेक भव धारण करेगा। जिसे इस सच्चाई पर विश्वास होता है वह अपने आपको ईश्वर के साथ जोड़ने के लिए खोटे कामो पर से विश्वास उठाकर सत्य पर विश्वास जमाता है। मनुष्य-जन्म का समय अपूर्व समय है। जो क्षण चला जा रहा है वह अनमोल है, अप्राप्य है, इसलिए सत्य पर विश्वास लाओ। जीवन को सार्थक बनाओ।

ज्यो अजलि मांहे नीर समो थो,
तो छिन-छिन खेरू जावे जी।
घड़ी रे घडी घड़ियाला बाजे,
तो खिण लाखोणी जावे जी।
यो भव रतन चिन्तामणि सरिखो,
वारम्वार न मिलसी जी।
चेत सके तो चेत रे जीवडा,
ऐसो जोग न मिलसी जी॥

किस निश्चित विचार मे बैठकर व्यवस्था सोच रहे हो ? सद्गुण पर विश्वास करो। अविश्वास मत करो। शास्त्र मे कहा है—

सच्चं भगवओ।

यह गणधर का वचन है कि सत्य भगवान् है। सत्य की शरण लेना भगवान् की शरण लेना है। सत्य के प्रभाव से चमकती हुई तलवार फूल के सदृश नरम और विष, अमृत के समान गुणदायक हो जाते हैं जिस सत्य की इतनी शक्ति है, उस पर असत्य के बराबर भी विश्वास नही करते ? कितने दु ख की बात है !

बड़ो की देखा-देखी बच्चे भी झूठ बोलते हैं। वे अकसर अपने मां-बाप से ही यह सबक सीखते हैं। पहले बच्चों को झूठी बातो मे आनन्द आता है और फिर वे स्वयं झूठ बोलने मे कुशल हो जाते हैं। इस प्रकार झूठ की परम्परा चल रही है।

वकील की स्त्री ने कहा— सत्य पर विश्वास रखना चाहिए। यदि सत्य से खाने को मिलेगा तो खाएँगे, अन्यथा भूखे रह लेंगे। आप आज से झूठ का आसरा न लेने की प्रतिज्ञा कर लीजिए। हम लोग भूखे नही रहेंगे, सत्य का प्रताप बडा है।

वकील पर पत्नी का प्रभाव पडा और उसने झूठे मुकदमे लेना त्याग दिया।

अगर बहिनें मेरी बात मानकर अपने-अपने पति को उपदेश दें तो वे आप लोगो को कुछ ही समय में सुधार कर सन्मार्ग पर ला सकती है। मगर कठिनाई तो यह है कि

बहिनें भी सोने मे ही स्वर्ग समझती हैं, सोने में ही सुख मान बैठी हैं। वे पति को उपदेश दें तो कैसे ?

एक कवि ने कहा है—

> वरु दरिद्रता होउ करत सज्जन कला।
> अनाचार सु राज्य मिले तो नहिं भला।

सज्जनतापूर्वक व्यवहार करते और रखते हुए यदि हम दरिद्र बन जाएँ, तो वह दरिद्रता नही, स्वर्ग का निवास है। पर अत्याचार, झूठ-कपट, दगा आदि से राज्य मिलता हो तो वह किसी काम का नही।

इस प्रकार का विश्वास और प्रेम चाहिए तभी हृदय मे सन्तोष उत्पन्न होता है।

आगे चलकर कवि ने कहा है जो शरीर तप के कारण दुर्बल होता है वह दबी हुई अग्नि के समान देदीप्यमान है। तपधारी मुनि का दुर्बल शरीर भी देवो के शरीर को लजाने वाला है।

तप की महिमा अद्भुत है। तप करने से न रोग होता है न दुःख होता है। यद्यपि तप से शरीर निर्बल दिखाई देता है परन्तु आत्मा निर्बल होने के बदले बलिष्ठ होता है।

जिस मनुष्य के शरीर पर सूजन चढ जाती है, जिसके हाथ, पाव और सारा शरीर मोटा और चिकना हो जाता है, उसके लिए लोग कहते हैं—यह तो मरा ! ऐसे आदमी का मोटे होने के कारण कोई सत्कार करता है ?

'नही !'

इसी प्रकार जो अन्याय करके मोटे— ताजे बने हैं, उनके प्रति ज्ञानियो के हृदय मे कोई आदरभाव नहीं होता। अगर कोई सत्य के सेवन से दुबले भी हुए तो ज्ञानी उस दुबले का सत्कार करेंगे।

राम का राज्य छूटा। वे वनवासी होकर घूमते फिरे। परन्तु किसी ने उन्हें बुरा कहा ? इससे उनकी प्रतिष्ठा कम हुई ?

'नही !'

हरिश्चन्द्र ने अपना राजपाट दान देकर चाण्डाल की नौकरी की। उनकी रानी तारा को ब्राह्मण के घर बर्तन माजने और पानी भरने की सेवा करनी पड़ी। यह सब किसके लिए ?

'सत्य के लिए ही !'

अब तो कुछ लोग कहते हैं कि हरिश्चन्द्र को दान देने से दुःख भोगना पडा। कुपात्र को दान-देने से भटकना पड़ा और चाण्डाल का सेवक बनना पड़ा ! ऐसा कहने वालों से क्या कहा जाय ? इस पर विस्तृत चर्चा करने का यहां अवकाश नही है। सिर्फ इतना कह देना पर्याप्त है कि कष्ट पड़ने के कारण ही कोई बुरा या पापी नहीं हो-जाता। अजना को क्या कष्ट सहन नही करना पड़े थे ? फिर क्या उसका शील भी पाप मे गिना जायगा ?

कमलावती का हाथ शील के लिए काटा गया, पर उसने शील का त्याग नही किया। शील की रक्षा के लिए चन्दनबाला बिकी। उसने शील नही त्यागा तो क्या पाप किया था?

सीता, अजना, कमलावती, चन्दनबाला आदि महान् सतियो ने अपने शील की रक्षा के लिए कष्ट सहन किए थे। कष्ट सहने के कारण शील पालने को अगर कोई पाप कहता है तो अन्याय करता है। इसी प्रकार दान देने वालों को अगर कोई पाप करने वाला कहता है, उनका तिरस्कार करता है तो ऐसा करना ही महापाप है।

मित्रो! आप लोगों से कुछ और न बन पड़े तो कम से कम इस पाप से तो बचो। जिस दान का अनुमोदन असख्य लोग करते हैं, उसको अगर मुट्ठी भर लोग पाप बतलाते हैं तो वह उनका दुर्भाग्य है। कामना करो कि उन्हें भी सुबुद्धि प्राप्त हो।

दान मे पाप बतलाने वाले, दया करने मे भी पाप कहते हैं। पर नेमिनाथ भगवान् के चरित्र को देखो। उन्हें विवाह नही करना था, फिर भी बारात सजाई। आरम्भ-समारम्भ किया और प्रत्यक्ष रूप से, मारे जाने वाले जीवों की रक्षा का बोध दिया। अन्त मे दान देकर दान की महिमा भी प्रकट की।

तात्पर्य यह है कि दुर्गुणों का त्याग करने पर ही पर-

मात्मा के प्रति आपका प्रेम होगा और परमात्मप्रेम से आपका परमकल्याण होगा ।

[ख]

परमात्मा की स्तुति करने वालो को परमात्मा के नाम-स्मरण की महिमा पूरी तरह समझ लेनी चाहिए । नाम में क्या गुण है और क्या शक्ति है, इस बात को समझ कर परमात्मा का भजन किया जाय तो आत्मा मे निराली ही जागृति हो जाती है ।

नाम लेने का अधिकारी कौन है ? अर्थात् नाम कौन ले सकता है ? इस सम्बन्ध मे पद्मप्रभु की प्रार्थना मे कहा है कि धीवर, भील, कसाई, गोघातक, स्त्रीघातक, बाल-घातक, वेश्या, चुगल, छिनार, जुआरी, चोर, डाकू आदि कोई कैसा भी कुकर्मी क्यो न हो, सभी को भगवान् का भजन करने का अधिकार है । परन्तु वह पापो को बढ़ाने के लिए नही किन्तु घटाने के लिए है । जिसे रोग न हो वह दवा क्यो ले ? इसी प्रकार जिसमे पाप न हो उसे भजन करने की क्या आवश्यकता है ? परन्तु जैसे दवा रोग बढ़ाने के लिए नही वरन् घटाने के लिए ली जाती है, इसी प्रकार भजन पाप बढ़ाने के लिए नही करना चाहिए—घटाने के लिए करना चाहिए । इस दृष्टि से जो परमात्मा का भजन करता है वह कैसा भी पापी क्यों न हो, उसकी आत्मा पवित्र बन जाती है । आजकल प्रायः पाप बढाने के लिए परमात्मा

का भजन किया जाता है, अर्थात् ऊपर से अपने आपको धर्मात्मा प्रकट करने के लिए लोग भजन करते हैं और भीतर कुछ और ही रचना होती है। ऐसा भजन करने वाले का उद्धार नही हो सकता।

परमात्मा का भजन करना, उसके नाम को स्मरण करना, अपनी आत्मा को परमात्मा के सामने उसी तरह खड़ा करना है, जैसे ज्ञानी पुरुष अपनी आत्मा को परमात्मा के समक्ष खड़ी कर देते हैं। जिस प्रकार राजा के सामने अपने अपराध को स्वीकार करने से प्रायश्चित्त हो जाता है, उसी प्रकार परमात्मा के समक्ष अपने अपराधो को शुद्ध अन्त--करण से प्रकट कर देने पर प्रायश्चित्त हो जाता है।

इस प्रकार अपराध स्वीकार करने वाले के साहस पर जरा विचार करो। जो वीर होगा वही राजा के सामने अपना अपराध स्वीकार करेगा। अब विचार कीजिए कि परमात्मा राजा से छोटा है या बड़ा? अगर बड़ा है तो निष्कपट भाव से उससे प्रार्थना करो कि—प्रभो! ऐसी कृपा कर, जिससे मैं पापो से छुटकारा पा लूं। ऐसा निश्चय करके परमात्मा को भजो तो अवश्य पापों से छुटकारा मिल जायगा।

पाप से छूटने के लिए सुधर्मा स्वामी ने जम्बू स्वामी से क्या कहा? उन्होंने जम्बू स्वामी से कहा—'भगवान् महावीर का बतलाया हुआ ज्ञान मैं तुझे सुनाता हूँ।' और

उन्होने भगवान् का उपदेश जम्बूस्वामी को बतलाया । उस उपदेश का सार यह है—

पढम होइ अहिंसा, बितिय सच्चवयणति पन्नत्ता ।
दत्तमणुन्नायसवरो य, बंभचेरयमपरिग्गहत्त च ।
तत्थ पढम अहिंसा, तस-थावर-सव्वभूयखेमकरी ।
तीसे सभावणाओ किंचि वोच्छ गुणद्दोस ॥

अर्थात् अहिंसा, सत्यभाषा, अदत्तादान परित्याग, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह, यह पाच व्रत भगवान् के उपदेश का सार है । इनमे अहिंसा का स्थान पहला है । अहिंसा त्रस और स्थावर सभी प्राणियो का क्षेम करने वाली है ।

यहा अहिंसा पहले बतलाई गई है । अहिंसा का अर्थ है— हिंसा न करना अर्थात् जिसमे किसी भी प्राणी की हानि न हो ।

प्रश्न किया जा सकता है– प्राणी किसे कहना चाहिए ? उत्तर यह है । भगवान् ने शास्त्र मे दस प्राण कहे हैं–(१) श्रोत्रेन्द्रियबलप्राण (२) चक्षुरिन्द्रियबलप्राण (३) घ्राणेन्द्रियबलप्राण (४) रसनेन्द्रियबलप्राण (५) स्पर्शनेन्द्रियबलप्राण (६) मनोबलप्राण (७) वचनबलप्राण (८) कायबलप्राण (९) श्वासोच्छ्वासबलप्राण और (१०) आयुष्यबलप्राण । यह आयुष्य-प्राण शेष सब प्राणो का आधारभूत है। जिसमे यह प्राण हो वह प्राणी कहलाता है । किसी मे पूरे और किसी मे अधूरे प्राण होते हैं । सज्ञी पचेन्द्रिय के दसो प्राण होते

हैं, असञ्ज्ञी पचेन्द्रिय के नौ प्राण होते हैं, चौ इन्द्रिय जीवो के आठ, त्रीन्द्रियो के सात, द्वीन्द्रिय के छह और एकेन्द्रिय के चार प्राण होते हैं। इन प्राणों का जिससे नाश हो वह हिंसा और जिससे नाश न हो वह अहिंसा है।

शास्त्र मे सभी कुछ स्पष्ट कर दिया गया है परन्तु आजकल कुछ लोगों ने एक नया तर्क खोज निकाला है। वे यह तो कहते हैं कि प्राणो का नाश करना हिंसा और नाश न करना अहिंसा है, मगर रक्षा क्या है ? रक्षा हिंसा है या अहिंसा ?

कल्पना कीजिए, एक आदमी तलवार लेकर बकरा मारता है। दूसरा चुपचाप खडा है–न मारता है और न रक्षा करता है। तीसरा आदमी कहता है—मत मारो, अर्थात् वह बकरे की रक्षा करता है। अब इस तीसरे रक्षा करने वाले को क्या कहा जाय ? हिंसक या अहिंसक ? पहला आदमी हिंसक है और दूसरा अहिंसक, क्योकि वह मारता नही है, लेकिन यह तीसरा मनुष्य किस गिनती मे गिना जाय ?

ज्ञानीजन कहते हैं कि अहिंसा का अर्थ है— जिसमे हिंसा न हो, अथवा जो हिंसा का विरोधी हो। अब वह तीसरा पुरुष, जिसने जीव की रक्षा की है और जीव को मारा नही है, उसे क्या हिंसक कहा जा सकता है ?

'नही !'

जब नही मारा तो अहिंसा हुई कि नही ?

'हां !'

इस प्रकार ज्ञानियो का कहना है कि न मारना और रक्षा करना दोनों ही अहिंसा हैं। एक ने चोरी की, दूसरे ने चोरी नही की और तीसरे ने चोरी करने से वरजा, तो वरजने वाले को कोई चोर कह सकता है ?

'नही !'

उसने वरजा इसलिए कि धन के मालिक को दु.ख न हो। धन को तो सुख दु ख होता नही, सुख दु ख तो उसे होता है जिसका धन चोरी मे जाय या जो चोरी करके ले जाय।

कल्पना करो, एक दुराचारी पुरुष किसी सती का शील भग करने के लिए हमला करता है। रावण को ही समझ लो। रावण सीता का शील भग करना चाहता था। सीता अपने शील पर अटल है। और विभीषण ने रावण को ऐसा करने से मना किया। अब आप विभीषण को शीलवान् कहेंगे या कुशीलवान् कहेंगे ?

'शीललान् !'

मगर कुशीलवान् कहने वालों को क्या कहा जाय ? अगर विभीषण कुशीलवान् होता तो वरजता ही क्यो ? इसी प्रकार 'मत मारो' कह कर हिंसा वरजने वाले को क्या हिंसक कहा जा सकता है ? जिसके हृदय मे मारने की इच्छा होगी उसके मुँह से 'मत मार' ऐसा शब्द निकल ही नही

सकता। ऐसी स्थिति मे 'मत मार' कहने वाले को पापी कहना किसी भी प्रकार उचित नही है।

मित्रो ! इस सीधी-सादी बात को समझ लो तो अहिंसा के विषय मे भ्रम नही रहेगा। शास्त्र के अनुसार जीव की हिंसा न करना और जीव को बचाना—दोनो अहिंसा है। पर खेद है कि कुछ पथभ्रष्ट भाई मारने और बचाने—दोनो मे हिंसा कहते हैं। उनका कहना है—

मत मार कहे तेनो रागीरे,
तांजे करणे हिंसा लागीरे।

बुद्धिमान् स्वय विचार करें कि 'मत मार' कह कर जीव को बचाने वाला कैसे हिंसक हो गया ? शास्त्र कहता है—

तत्थ पढम अहिंसा,
तसथावरसव्वभूयखेमकरी।

अर्थात् अहिंसा त्रस और स्थावर—सभी जीवों का क्षेम करने वाली है अर्थात् रक्षा करने वाली है।

ससार मे किसी से पूछते हैं—'क्षेम-कुशल है ?' या 'क्षेम-कुशल कह देना।' तो इसका अर्थ शान्ति ही है।

कदाचित् कहा जाय कि हमने किसी जीव को नही मारा, इस कारण वह बच गया तो क्षेम हुई और अहिंसा का धर्म हुआ, तो जिसने बचाया है उसे पाप क्यो हुआ ? मित्रो ! यह अन्याय है। अहिंसा के स्वरूप को विकृत करना है।

इस प्रकार अहिंसा के सच्चे स्वरूप को समझ कर जो

उसका पालन करते हैं, वे पापों से बचते है। परमात्मा के साथ उन्ही की प्रीति जुड़ती है। उनका परमात्मभजन सार्थक होता है। एक ओर परमात्मा का नाम लेना और दूसरी ओर परमात्मा के द्वारा उपदिष्ट मार्ग से विरुद्ध प्रवृत्ति करना आत्म-वचना है। यह कल्याण का मार्ग नही है।

७-श्री सुपार्श्वनाथ स्वामी

प्रार्थना ।

श्री जिनराज सुपार्श्व, पूरो आस हमारी ।।टेर।।
"प्रतिष्ठसेन" नरेश्वर को सुत, "पृथ्वी" तुम महतारी ।
सुगुण सनेही साहिब साँचो, सेवक ने सुखकारी ।।१।।
धर्म काम धन मोक्ष इत्यादिक, मनवाछित सुख पूरो ।
बार-बार मुझ यही वीनती, भव-भव चिन्ता चूरो ।।२।।
जगत् शिरोमणि भक्ति तिहारी, कल्पवृक्ष सम जाणूं ।
पूरणब्रह्म प्रभु परमेश्वर भव-भव तुम्हें पिछाणूं ।।३।।
हूँ सेवक तू साहिब मेरो, पावन पुरुष विज्ञानी ।
जनम जनम जित तित जाऊँ तो, पालो प्रीति पुरानी ।।४।।
तारण-तरण सरण असरण को, विरुद इसो तुम सोहे ।
तो सम दीनदयाल जगत् मे, इन्द्र नरेन्द्र न को है ।।५।।
स्वयभू-रमण बड़ो समुद्र मे, शैल सुमेर विराजे ।
तू ठाकुर त्रिभुवन में मोटो, भक्ति कियां दुःख भाजे ।।६।।
अगम अगोचर तू अविनाशी, अलख अखण्ड अरूपी ।
चाहत दरस 'विनयचन्द' तेरो, सच्चिदानन्द स्वरूपी ।।७।।

सारा संसार आशा पर ही टिका है। सब लोग आशा का अवलम्बन करके अपना-अपना कार्य करते हैं। बिना उद्देश्य के किसी कार्य मे प्रवृत्ति नही होती। साधु और साध्वियो ने भी किसी उद्देश्य को सामने रख कर ही साधु-पन और साध्वीपन अगीकार किया है। जो लोग अपना गाव छोड़कर दूसरे गाँव जाते हैं वे भी बिना उद्देश्य नही जाते। उद्देश्य की पूर्ति हो जाना अर्थात् आशा पूर्ण हो जाना ही सिद्धि समझी जाती है। इसी आशा को लेकर भक्तजन भगवान् से प्रार्थना करते हैं—

श्री जिनराज सुपास, पूरो आस हमारी

अर्थात्—हे जिनराज ! मेरी आशाओं को पूर्ण करो।

अब प्रश्न यह है कि आशा किस बात की है ? साधु किस आशा से साधु बने है ? अगर उन्हें ससार के सुखों की आशा होती तो वे साधु क्यो बनते ? ससार की आशा संसार में ही पूरी हो सकती है। साधु-अवस्था मे ससार-सुख की आशा पूरी नही हो सकती।

ससारी मनुष्य को पहले स्त्री की आशा होती है। जब स्त्री प्राप्त हो जाती है तो पुत्र की आशा उत्पन्न होती है। जिसे पुत्र की इच्छा है वह पहले स्त्री से ही पुत्र मिलने की आशा करता है। जब स्त्री से पुत्र नही मिलता तब देवी-देवता आदि से इसके लिए प्रार्थना करना है। तात्पर्य यह है कि सभी लोग किसी न किसी आशा से परिपूर्ण हैं और उस आशा

को पूर्ण करने के लिए ही प्रयत्नशील देखे जाते हैं। किन्तु परमात्मा से किस चीज की आशा करनी चाहिए ? अगर धन आदि के लिए परमात्मा से प्रार्थना की जाती है तो समझना चाहिए कि परमात्मा के स्वरूप को समझा ही नही। जो परमात्मा की महिमा को समझ लेगा वह किसी तुच्छ चीज के लिए उससे प्रार्थना नही करेगा। तो फिर परमात्मा से कौन-सी आशा करनी चाहिए ?

बार-बार मुझ विनती हो भव-भव चिन्ता चूरो।

हे प्रभो ! आपकी भक्ति के बिना मैंने ससार का विलास पाया, परन्तु वह दु.खदायी बन गया। उससे मुझे कुछ की प्रीति नही हुई। इसलिए अब जो चाहता हूँ वह धर्म और मोक्ष के साथ चाहता हूँ। धर्म और मोक्ष के सिवाय ससार का विलास नही चाहता। मेरी यह आशा पूरी करो। प्रभो ! मैं आपसे यही प्रार्थना करता हूँ कि मेरी भव-भव की चिन्ता दूर हो जाय। मैं चाहे किसी भी अवस्था मे होऊँ परन्तु धन और काम के लिए धर्म और मोक्ष का त्याग न करूँ। मुझे ऐसी शक्ति दो कि धन जाय तो भले जाय पर धर्म न जाय। पुत्र जाय तो जाय, पर धर्म न जाय। इस प्रकार की दृढता धारण कर सकूँ।

इस तरह से प्रार्थना करके भक्तजन और क्या प्रार्थना करते हैं :—

जगत-शिरोमणि भक्ति तुम्हारी,
कल्पवृक्ष सम जानूं ॥

अन्य वृक्षो से एक ही प्रकार के फल मिलते हैं। उससे दूसरे प्रकार के फलों की प्राप्ति नही होती। इसी प्रकार संसार की एक वस्तु से एक सुख मिलता है तो दूसरा सुख नही मिलता। किसी से दूसरा सुख मिलता है तो तीसरे सुख की कमी रहती है। सब सुख ससार के किसी भी पदार्थ से नही मिलते और न मिल ही सकते हैं। सब सुखों की प्राप्ति अगर हो सकती है तो कल्पवृक्ष के समान तेरी भक्ति से ही हो सकती है। इसलिए सब जगह से निराश होकर, हे प्रभो! मैं तेरी शरण में आया हूँ।

जैसे घी तोलने के लिए कोई आदमी वर्त्तन का वजन पूरा न होने पर दूसरा मेढक तराजू पर रखता है और वजन पूरा न होने पर दूसरा मेढक लेने जाता है। तब तक पहला मेढक फुदक कर भाग जाता है। इसी प्रकार मैं एक सुख लेने जाता हूँ तो दूसरा सुख चला जाता है और दूसरा लेने जाता हूँ तो तीसरा चला जाता है। परन्तु तेरी भक्ति का प्रभाव ऐसा है कि उसमें ससार के यह त्रास नही है और उससे सब सुख प्राप्त हो जाते हैं। तेरी भक्ति समस्त सुखो के लिए कल्पवृक्ष के समान है।

ईश्वरभक्ति के प्रभाव का वर्णन श्रीउत्तराध्ययनसूत्र मे किया गया है। कहा है :—

खित्तवत्थु हिरण्ण च, पसवो दासपोरुसं ।।
चत्तारि कामखन्धाणि, तत्थ से उववज्जई ।।१।।
मित्तव नायवं होई, उच्चागोए सवण्णए ।।
अप्पायके महाबले, अभिजाए जसोबले ।।२।।

धर्मात्मा पुरुष जहा जन्म लेता है वहा दस बातो का योग उसे प्राप्त होता है ! दस बातों की प्राप्ति होने के कारण वह ससार का सुख भोग करके भी उसमे लिप्त न होगा और अपनी मुक्ति का प्रबन्ध कर लेगा ।

मित्रो ! जो मनुष्य कल्पवृक्ष को छोड़कर दूसरे से फल की याचना करता फिरता है उसे क्या कहना चाहिए ?

'मूर्ख !'

सुखो को प्राप्त करने की इच्छा होते हुए भी जो परमात्मा की भक्ति का त्याग करता है उसे अभागा ही कहना चाहिए । एक-एक सुख के लिए दूसरो से प्रार्थना करने वाला और समस्त सुख देने वाले ईश्वर की भक्ति न करने वाला अभागा नही तो क्या है ?

हे प्रभो ! मैं तुमसे यही प्रार्थना करता हूँ कि मैं और कुछ नही चाहता, केवल तुम्हारी अनन्य भाव से भक्ति मिले, यही चाहता हूँ ।

पूरण ब्रह्म प्रभु परमेश्वर भव-भव तूने पिछानूं ।

मैं चाहे कही जन्म लूं पर तुम्हे पहचानता रहूँ, तुम्हारा ध्यान न चूकूं । फिर मुझे कोई कमी नही है ।

मित्रो ! ससार की अन्य वस्तुओ की कामना करने से भक्ति नही आती किन्तु भक्ति होने पर सब वस्तुएं, सब सुख, आप ही आप चले आते हैं। इसलिए और सब वस्तुओ की कामना छोडकर ईश्वर की भक्ति करना, ईश्वर की आराधना मे ही लीन होना उचित है।

आत्मा को इसी भक्ति रूपी शक्ति की आवश्यकता है। भक्ति के बिना आत्मा मे शक्ति नही आती। जिसने ईश्वरभक्ति का रस पान किया है उसने अमृतपान किया है। उसमे बडी शक्ति है। अगर आप आत्मिक शक्ति प्राप्त करना चाहते हैं तो ईश्वर की भक्ति कीजिए।

वास्तव मे अन्तिम रूप से आशा की पूर्ति परमात्मा के सिवाय और कोई नही कर सकता। इसीलिए भक्तजन निवेदन करते हैं कि मैं जब तक यह नही जानता था कि आशा क्या होनी चाहिए, तब तक ससार में भटकता रहा। जब आशा का पता लग गया, जब मैंने समझ लिया कि मेरी आशा यह होनी चाहिए तब मैं समझ गया कि यह आशा परमात्मा के सिवाय कोई दूसरा पूरी नही कर सकता।

जो जहा अपनी आशा की पूर्ति देखता है, वही वह जाता है। हीरे की आशा करने वाला जौहरी के पास जायगा और शाक-भाजी की आशा करने वाला माली-कूंजड़े के पास पहुंचेगा। इसी प्रकार जिनके अन्तःकरण में उत्तम भावना की ज्योति जागृत हुई है और जो यह समझ चुके

हैं कि इन साँसारिक वस्तुओ से अनेक बार साक्षात्कार हुआ है पर आत्म-कल्याण नही हुआ, इसलिए जहां आत्मकल्याण हो वही जाऊँ, वह वीतराग भगवान् के चरण शरण को ही ग्रहण करेगा। वह उन्ही से अपनी आशा पूर्ण करने की प्रार्थना करेगा। वह कहेगा—

श्री जिनराज सुपास ! पूरो आश हमारी।

८-श्री चन्द्रप्रभनाथ स्वामी

प्रार्थना ।

जय जय जगत् शिरोमणी, हूँ सेवक ने तू धणी ।
अब तोसूं गाढी बणी, प्रभु आशा पूरो हम तणी ॥
मुझ म्हेर करो, चन्द्र प्रभु जग जीवन अन्तरजामी ॥टेर॥
भव दु.ख हरो, सुणिये अरज हमारी त्रिभुवन स्वामी ॥१॥

"चन्द्रपुरी" नगरी हती, "महासेन" नामा नरपति ।
राणी "श्रीलखमा" सती, तस नन्दन तू चढ़ती रती ॥२॥

तू सर्वज्ञ महाज्ञाता, आतम अनुभव को दाता ।
तो तूंठा लहिये साता, प्रभु धन-धन जग मे तू तुम ध्याता ॥३॥

शिव सुख प्रार्थना करसूं, उज्ज्वल ध्यान हिये धरसूं ।
रसना तुम महिमा करसूं, प्रभु इण विध भवसागर तिरसूं ॥४॥

चन्द्र चकोरन के मन में, गाज आवाज होवे घन में ।
पिउ अभिलाषा ज्यो प्रियतन में, त्यूं बसियो तू मो चितवनमें ॥५॥

जो सुनजर साहिब तेरी, तो मानो विनती मेरी ।
काटो करम भरम बेरी, प्रभु पुनरपि नाहिं करूं भव फेरी ॥६॥

आतम ज्ञान दशा जागी, प्रभु तुम सेती लव लागी ।
अन्य देव भ्रमना भागी, 'विनयचन्द' तिहारो अनुरागी ॥७॥

यह श्रीचन्द्रप्रभ की प्रार्थना है। प्रार्थना तो थोडी वहुत मैं रोज ही करता हूँ, परन्तु इस प्रार्थना के तात्पर्य को आप सावधान होकर समझ लीजिए। इस प्रार्थना मे परमेश्वर के साथ पेम वाधने का एक अलौकिक उपाय वतलाया है।

परमात्मा अतिशय सूक्ष्म वस्तु है। ससार के अन्य पदार्थों के साथ आप मिल सकते हैं परन्तु सूक्ष्म के साथ मिलना— उसे प्राप्त करना-कठिन है। सूक्ष्म के साथ मिलने के लिए एक तरफ का विचार कर लेना पडता है और एक तरफ का विचार करना सरल नही है। किन्तु ज्ञानीजनो का कहना है कि यह कोई कठिन कार्य भी नही है। जो परमात्मा नजदीक से भी नजदीक है, उससे प्रेम करना कठिन कैसे हो सकता है ?

आप सोचेंगे और शायद आश्चर्य करेंगे कि जव परमात्मा नजदीक से नजदीक है तो उसके लिए उपदेश की क्या आवश्यकता है ? मगर भूल तो यही हो रही है कि ससारी जीव पास की चीज को भूल कर दूर की चीज के लिए दौडते हैं।

मृग की नाभि मे कस्तूरी होती है पर जव उस कस्तूरी की सुगध मृग को आती है, तब वह सुगध मे मस्त होकर उसे खोजने के लिए चारो ओर दौडता फिरता है और घास-पात को सूंघता फिरता है। उसे यह ज्ञान नही है कि सुगध मेरी ही नाभि की कस्तूरी से आ रही है।

आप कह सकते हैं कि मृग तो पशु है, इसलिए उसे अपने पास की वस्तु का ज्ञान नही है, परन्तु हम मनुष्य हैं। हम नजदीक की वस्तु को कैसे भूल सकते है ?

मित्रो ! ससार की वस्तुओ मे यह शरीर सबसे अधिक नजदीक है । इससे ज्यादा नजदीक दूसरा पदार्थ नही है । इस शरीर का अभ्यास करके भी आप इसे भूले बैठे हैं तो दूसरी वस्तु के विषय मे क्या कहा जाय ? आप कहेगे—शरीर को हम कैसे भूले हुए हैं ? यह मैं आपको बतलाता हूँ।

इस शरीर मे जो आखे हैं, जिनसे आप ससार के सब पदार्थों को देखते हैं, किस शक्ति से बनी हैं? इनको बनाने वाला कौन है ? क्या आपने कभी यह सोचा है ? आखों का जाला हटा देने वाले डाक्टर की तो आप इज्जत करते हैं, सत्कार करते हैं, परन्तु जिसने इनको बनाया है, वह कैसा और कौन है, इस बात पर भी कभी विचार करते हैं ?

मुखडा क्या देखे दर्पण में ?
तेरे दयाधर्म नही मन मे ॥मुखडा०॥
पगडी बाँधे पैच सवारे,
अकड रहे निज मन मे ।
तन जोवन डूंगर का पानी,
खलक जाय इक छिन में ॥मुखडा०॥

काच देखने का भाव क्या है, इस प्रकार विचार करने की आवश्यकता है । मगर इतना समय नही है। आप इतना

तो जानते ही हैं कि हमारा मुँह हमको नही दीखता, इस कारण काच मे देखते हैं। अब बतलाइए, जो चीज शरीर मे हैं वही काच में दीखती है या दूसरी ?

'वही !'

मुँह पर अगर दाग लगा है या पगड़ी का पेंच खराब है तो यह बात काच मे है या शरीर मे ?

'शरीर मे !'

इसमे काच का तो कोई दोष नही है ?

'नही !'

क्योकि जैसा आपका मुँह है वैसा ही वह बतलाता है। ज्ञानी कहते है—अगर तुम काच पर ही विचार कर लो तो ज्ञान आ जाय। काच की जगह सारे ससार को मान लो तो आपको मालूम हो जाय कि हम पास की वस्तु को किस प्रकार भूले हुए हैं।

तात्पर्य यह है कि शरीर जैसी अत्यन्त समीप की वस्तु को देख कर— उसके भीतर विद्यमान चेतनाशक्ति पर विचार करके भी आप आत्मा को पहचान सकते है। अगर आपने आत्मा को पहचान लिया तो समझ लो कि परमात्मा को पहचान लिया। क्योकि आत्मा और परमात्मा वास्तव मे दो भिन्न वस्तुएँ नही हैं। शुद्ध, बुद्ध और निर्विकार आत्मा ही परमात्मा है। आत्मा के स्वरूप को न पहचानने से ही परमात्मा को पहचानना कठिन हो रहा है।

यह शरीर परमात्मा की पहचान के लिए और धर्म-कार्य करने के लिए है। मगर बाहर के कामों मे फँस कर लोग असली कर्त्तव्य को भूल रहे हैं।

एक उत्तम वस्तु, जो बादशाह को भेट करने के लिए ले जाई जा रही हो, मार्ग मे किसी नीच, अविचारी और मूर्ख को भेंट कर देना कितनी मूर्खता है !

आत्मा सूक्ष्म है। उसे देख लो तो परमात्मा भी दृष्टि में आ जायगा। परमात्मा के दर्शन करने का यही मार्ग है। इस मार्ग पर चलने के लिए पहले-पहल परमात्मा की स्तुति करना उपयोगी होता है। मगर परमात्मा की स्तुति शुद्ध भाव से करना चाहिए। पुत्र कलत्र या धन-दौलत की कामना रख कर स्तुति करना उचित नही है। शुद्ध भाव से की हुई स्तुति ही शुद्ध फल प्रदान करती है।

परमात्मा की स्तुति ज्यो-ज्यो शुद्ध भाव से की जाती है, त्यो त्यो आत्मा का विकास होता है। आज जो परमात्मा हैं वे भी एक दिन आपकी ही भाति सासारिक अवस्था मे थे, उन्होंने शुभ कार्यों द्वारा परमात्मपद प्राप्त किया है। परमात्मा हम लोगो को आश्वासन देता है कि "जो पद तुम्हारा था वही मेरा भी है और जो पद मेरा है वह तुम्हारा भी हो सकता है। इसलिए निर्भय रहो और हृदय मे दया रख कर सब जीवों को अभयदान देने का मार्ग ग्रहण करो। ऐसा करने से तुम्हें मेरा पद प्राप्त हो जायगा।"

[ख]

चन्द्रप्रभो ! जगजीवन अन्तर्यामी ।

यह भगवान् चन्द्रप्रभ की प्रार्थना है। प्रार्थना करते हुए भक्त कहता है—

जय जय जगतशिरोमणि ।

हे जगत् के शिरोमणि ! जगदुत्कृष्ट ! तेरा जय-जयकार हो। इस कथन पर से विचार उत्पन्न होता है कि भक्त के हृदय मे यह विचार क्यो आया ? और जो जगत् का शिरोमणि है, उसका जय-जयकार करने से क्या लाभ है। इसके अतिरिक्त जो परमात्मा पूर्ण वीतराग हो चुके हैं, उन्हें क्या करना शेष रह गया है— किसे जीतना बाकी रहा है, जिसके लिए उनका जय-जयकार किया जाना है ?

इस प्रश्न के उत्तर मे भक्तजनो का कहना है कि जिन्होने पूर्ण विजय प्राप्त कर ली है, जिन्होने पूर्णता प्राप्त कर ली है, उन्ही की जय माननी चाहिए। उन्ही की जय से ससार का कल्याण हो सकता है। बल्कि उन्ही की जय मे संसार का कल्याण छिपा हुआ है। घड़ा जब तक कच्चा है तब तक उससे किसी का लाभ नही होता। वह जल को धारण नही कर सकता और किसी की प्यास नही बुझा सकता। रसोई जब तक कच्ची है, तब तक किसी की भूख नही मिटा सकती। पक जाने पर वह भूख मिटाती है और इस प्रकार दूसरों का कल्याण करती है।

मतलब यह है कि जो वस्तु पूर्णता को प्राप्त हो जाती है, वही दूसरो का कल्याण कर सकती है। परमात्मा के सम्बन्ध मे भी यही बात है। वह भी पूर्णता को पहुंच चुका है। पूर्णता प्राप्त करने के कारण ही उसका जयजयकार हुआ है और इसी कारण उसके निमित्त से दूसरों का कल्याण होता है। अतएव भक्तजन परमात्मा के विषय मे कहते हैं—हे जगत् शिरोमणि! तेरी जय हो।

जो पूर्णता पर पहुंच जाता है वह दूसरे का कल्याण किस प्रकार कर सकता है, यह जानने के लिए अक्षर को देखो। सामने किसी अक्षर को आदर्श रखकर, उसे देख-देख कर उसी सरीखा अक्षर बनाने का प्रयत्न किया जाता है। यद्यपि दूसरा अक्षर बनाने मे, उस पहले अक्षर ने कुछ नही किया है, फिर भी उसे देखकर, उसे आदर्श मानकर ही दूसरा अक्षर बनाया गया है। इस प्रकार यह समझना कठिन नही है कि जैसे आदर्श अक्षर को देखकर दूसरा वैसा ही अक्षर बनाया जा सकता है, इसी प्रकार जो पूर्ण है वही दूसरो को पूर्ण बना सकता है। जिस प्रकार पूर्ण अक्षर दूसरा पूर्ण अक्षर बनाने में सहायक होकर उपकार करता है, उसी प्रकार परमात्मा भी पूर्णता पर पहुंच चुका है, और वह हमें पूर्ण पुरुष बनाने मे समर्थ है। यद्यपि आदर्श अक्षर को दूसरे बनने वाले अक्षर से कुछ भी लेना-देना नहीं है, उसी प्रकार परमात्मा को भी संसार से कुछ लेना-देना नही है। संसार

से उसका कोई सरोकार नही है। फिर भी वह पूर्ण पुरुष ससार के जीवो को पूर्णता दिलाने मे समर्थ है। वह पूर्णता प्राप्त करने मे सहायक होता है। इसी कारण उसका जय-जयकार किया जाता है। इसीलिए भक्तजन कहते हैं—

जय जय जगत् शिरोमणि !

परमात्मा कृतकृत्य हो चुके हैं। उन्होंने चरम विजय प्राप्त कर ली है। हमारे जय-जयकार करने से परमात्मा की जय नही होती है। फिर भी परमात्मा की जय चाहना अपनी नम्रता प्रकट करना है। इस प्रकार कहकर भक्त-लोग आगे कहते हैं— प्रभो ! यद्यपि तू पूर्ण है। तूने सर्वोत्कृष्ट विजय प्राप्त कर ली है। लेकिन मैं अभी तक तुझसे दूर पडा हूँ। इसका कारण मेरा भ्रम ही है। मैं सोचता हूँ कि परमात्मा क्या करता है ! मैं स्वय कमाता हूँ और स्वय खाता हूँ। इसमे परमात्मा का क्या उपकार है ? इस पकार के भ्रमपूर्ण विचार के कारण ही मैं तुझसे दूर पड़ा हूँ। लेकिन अब मुझे यह विचार आ रहा है कि जिन विषयभोगो के भ्रमजाल मे पडकर मैं परमात्मा को भूल रहा हूँ, उन विषयो से मुझे कभी तृप्ति नही हो सकती। उदाहरणार्थ कल पेट भर भोजन किया था, लेकिन आज फिर भोजन करना पड़ेगा ! संसार के अन्य पदार्थों के विषय मे भी ऐसी ही बात है। संसार मे कोई पदार्थ ऐसा नही जिसे आत्मा ने न भोगा हो। प्रत्येक पदार्थ को अनन्त-

अनन्त वार आत्मा भोग चुका है। अनादिकाल से भोग भोगते भोगते भी अभी तक आत्मा तृप्त नही हुआ। अगर आत्मा की भोग भोगने से तृप्ति सभव होती तो वह कभी की हो गई होती। लेकिन तृप्ति का एक अंश भी कही दृष्टिगोचर नही होता। दिन दूनी–रात चौगुनी तृष्णा बढ़ती ही दिखाई देती है। इस तृष्णा का कही ओर-छोर नही है। वह आकाश की तरह असीम और काल की तरह अनत है। तृष्णा अनन्त है और पदार्थ परिमित हैं। यह परिमित पदार्थ अनन्त तृष्णा को किस प्रकार शान्त कर सकते हैं? इसके अतिरिक्त एक बडी कठिनाई यह भी है कि जो भोग भोगे जाते हैं वे तृष्णा को कम करने के बदले बढाते हैं। जैसे आग मे इंधन डालने से वह बढ़ती है, उसी प्रकार भोग भोगने से तृष्णा बढती ही चली जाती है।

हाँ, इस अनन्त तृष्णा से एक बात अवश्य मालूम पड़ी। यह अनन्त तृष्णा जब आत्मा की ही है तो आत्मा भी अनन्त होना चाहिए। तृष्णा अनन्त है तो जिसकी तृष्णा है, वह तृष्णा का आधारभूत आत्मा भी अनन्त अवश्य होगा। इस प्रकार तृष्णा की अनन्तता से आत्मा की अनन्तता का पता चला है। यह विष मे से भी अमृत का निकलना समझिए।

हे प्रभो! यह भान होने पर मैंने अपनी आत्मा से कहा—हे आत्मन्! जब तू अनन्त है तो 'अनन्त' (परमात्मा) के साथ ही अपना सम्बन्ध क्यों नही जोड़ता? तू परिमित

से उसका कोई सरोकार नही है। फिर भी वह पूर्ण पुरुष ससार के जीवो को पूर्णता दिलाने मे समर्थ है। वह पूर्णता प्राप्त करने मे सहायक होता है। इसी कारण उसका जय-जयकार किया जाता है। इसीलिए भक्तजन कहते हैं—

जय जय जगत् शिरोमणि !

परमात्मा कृतकृत्य हो चुके हैं। उन्होने चरम विजय प्राप्त कर ली है। हमारे जय-जयकार करने से परमात्मा की जय नही होती है। फिर भी परमात्मा की जय चाहना अपनी नम्रता प्रकट करना है। इस प्रकार कहकर भक्त-लोग आगे कहते हैं— प्रभो ! यद्यपि तू पूर्ण है। तूने सर्वोत्कृष्ट विजय प्राप्त कर ली है। लेकिन मैं अभी तक तुझसे दूर पड़ा हूँ। इसका कारण मेरा भ्रम ही है। मैं सोचता हूँ कि परमात्मा क्या करता है ! मैं स्वय कमाता हूँ और स्वय खाता हूँ। इसमे परमात्मा का क्या उपकार है ? इस प्रकार के भ्रमपूर्ण विचार के कारण ही मैं तुझसे दूर पड़ा हूँ। लेकिन अब मुझे यह विचार आ रहा है कि जिन विषयभोगो के भ्रमजाल मे पड़कर मैं परमात्मा को भूल रहा हूँ, उन विषयो से मुझे कभी तृप्ति नही हो सकती। उदाहरणार्थ कल पेट भर भोजन किया था, लेकिन आज फिर भोजन करना पड़ेगा ! संसार के अन्य पदार्थों के विषय मे भी ऐसी ही बात है। संसार मे कोई पदार्थ ऐसा नही जिसे आत्मा ने न भोगा हो। प्रत्येक पदार्थ को अनन्त-

अनन्त वार आत्मा भोग चुका है। अनादिकाल से भोग भोगते भोगते भी अभी तक आत्मा तृप्त नही हुआ। अगर आत्मा की भोग भोगने से तृप्ति सभव होती तो वह कभी की हो गई होती। लेकिन तृप्ति का एक अंश भी कही दृष्टिगोचर नही होता। दिन दूनी–रात चौगुनी तृष्णा बढ़ती ही दिखाई देती है। इस तृष्णा का कही ओर-छोर नही है। वह आकाश की तरह असीम और काल की तरह अनत है। तृष्णा अनन्त है और पदार्थ परिमित हैं। यह परिमित पदार्थ अनन्त तृष्णा को किस प्रकार शान्त कर सकते हैं ? इसके अतिरिक्त एक बडी कठिनाई यह भी है कि जो भोग भोगे जाते हैं वे तृष्णा को कम करने के बदले बढाते हैं। जैसे आग मे इंधन डालने से वह बढ़ती है, उसी प्रकार भोग भोगने से तृष्णा बढती ही चली जाती है।

हाँ, इस अनन्त तृष्णा से एक बात अवश्य मालूम पड़ी। यह अनन्त तृष्णा जब आत्मा की ही है तो आत्मा भी अनन्त होना चाहिए। तृष्णा अनन्त है तो जिसकी तृष्णा है, वह तृष्णा का आधारभूत आत्मा भी अनन्त अवश्य होगा। इस प्रकार तृष्णा की अनन्तता से आत्मा की अनन्तता का पता चला है। यह विष मे से भी अमृत का निकलना समझिए।

हे प्रभो ! यह भान होने पर मैंने अपनी आत्मा से कहा—हे आत्मन् ! जब तू अनन्त है तो 'अनन्त' (परमात्मा) के साथ ही अपना सम्बन्ध क्यों नही जोड़ता ? तू परिमित

के साथ क्यो चिपटा हुआ है ?

प्रश्न होता है कि क्या परमात्मा है, जो उसके साथ सम्बन्ध जोडा जाय ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि इच्छा उसी वस्तु की होती है जिसका अस्तित्व हो। जिस वस्तु का अस्तित्व नही होता उसकी इच्छा भी नहीं होती। भोजन ही न होता तो उसे खाने की इच्छा कहा से आती ? इसी के अनुसार भगवान् अनन्त न होते तो उन्हें प्राप्त करने की इच्छा भी न होती। भगवान् को प्राप्त करने की इच्छा होती है, इससे स्पष्ट है कि भगवान् हैं। यह बात दूसरी है कि जिस प्रकार भोजन दूर हो और इस कारण उसे प्रयत्न के द्वारा प्राप्त करना पड़े, लेकिन भूख लगने के कारण यह विश्वास तो है ही कि ससार मे भोजन भी है। और भोजन दूर है इस कारण यह प्रयत्न के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है तो क्या भगवान् को प्रयत्न द्वारा नहीं प्राप्त किया जा सकता ? जैसे श्रमसाध्य होने पर भी भोजन मिलता है उसी प्रकार दूर होने पर भी भगवान् प्रयत्न करने से अवश्य मिलता है। अतएव जिसके अन्तःकरण मे परमात्मा को प्राप्त करने की भावना जागेगी, वह परमात्मा की ओर आकर्षित होगा, उसे पाने के लिए प्रयत्न करेगा अन्त में उसे परमात्मा मिले विना नहीं रहेगा।

कल्पना करो, एक आदमी को भूख लगी है। उसे आप कितने ही प्रलोभन दे, सतुष्ट करने का कितना ही

प्रयत्न करें, फिर भी भोजन किये बिना उसे सन्तोष नही होगा। भूख मिटने पर ही उसे सन्तोष होगा और भूख भोजन से ही मिट सकेगी। आप अपने शरीर पर लाखो के आभूषण भले ही पहन ले, मगर भूख लगने पर वे आभूषण किस काम आएंगे ? यह बात दूसरी है कि परम्परा से आभूषणों द्वारा भोजन प्राप्त किया जा सकता है। लेकिन साक्षात् रूप से उनके द्वारा भूख नही मिट सकती। इस प्रकार भूख लगने पर आभूषण बेकार हैं और इसी कारण भूखा आदमी आभूषण पाकर सन्तुष्ट नही हो सकता। आभूषण पाने पर भी उसकी भूख ज्यो की त्यो बनी रहेगी और वह भोजन पाने का ही प्रयत्न करेगा।

इसी प्रकार जिस भक्त के अन्त करण मे परमात्मा को प्राप्त करने की इच्छा है वह सासारिक भोग-विलास के प्रलोभन मे पडकर सन्तुष्ट नही हो सकता। बल्कि वह इस प्रलोभन मे पडेगा ही नही। उसे एक मात्र परमात्मा को प्राप्त करने की ही इच्छा रहेगी। परमात्मा-विषयक उसकी भूख किसी भी दूसरे उपाय से नही मिटाई जा सकती।

आपके अन्त.करण मे जब परमात्मा को पाने की ऐसी बलवती इच्छा जागृत हो और आपका मन भोग-विलास की तरफ न जावे और परमात्मा को ही प्राप्त करना चाहे तब समझना चाहिए कि हमारे भीतर परमात्मा की सच्ची लगन लगी है। जिसके हृदय में ऐसी लगन होगी उसे परमात्मा प्राप्त

होगा ही।

जब तक अन्तःकरण मे परमात्मा को प्राप्त करने की बलवती इच्छा उत्पन्न नही हुई है, तब तक निरन्तर प्रयत्न करते रहने की आवश्यकता है। प्रयत्न से ऐसी इच्छा अवश्य उत्पन्न होगी और आत्मा सही मार्ग पर आ जायगा। घडी बिगड जाती है या लड़का बिगड़ जाता है तो उसे सुधारने का प्रयत्न किया जाता है और सुधार हो भी जाता है। इसी आधार पर यह भी मानो कि आत्मा भी सुधर सकता है, केवल प्रयत्न करने की आवश्यकता है। सासारिक पदार्थों का सुधार कर लेना ही काफी नही है। अपनी आत्मा का सुधार करो। आत्मा का सुधार ही सच्चा सुधार है। जब आत्मा सुधर जायगा तो उसे परमात्मा की प्राप्ति किये बिना किसी भी प्रकार सतोष नही होगा। वह पूर्ण प्रयत्न करके परमात्मा को प्राप्त करके ही दम लेगा। आजकल के लोगों को आत्मा के सुधार के लिए किसी कठिन क्रिया करने मे घबराहट होती है। वे जरा-सी कठिनाई सामने आने पर हिम्मत हारने लगते हैं। मगर कठिनाई मे पड़ने की अनिवार्य आवश्यकता ही कहाँ है? ज्ञानियो ने इसके लिए बहुत ही सरल उपाय बतलाये हैं। उनके बतलाये उपाय करने से कठिनाई नही झेलनी पडती और आत्मा का सुधार भी हो जाता है। ज्ञानी पुरुषो का कथन है कि तुम्हें जो कठिनाई दिखलाई पड़ती है, वह अज्ञान के कारण ही है। अज्ञान को दूर कर दो तो कुछ भी कठिनाई

नही रहेगी। शास्त्र मे जो उपदेश दिया गया है वह अज्ञान मिटाने के लिए ही दिया गया है। उस उपदेश को सुन कर अज्ञान को हटाओ। फिर देखोगे कि तुम्हारे आगे की सभी कठिनाइयाँ समाप्त हो गई हैं और तुम्हारा मार्ग एक दम साफ और सुगम बन गया है।

९-श्री सुविधिनाथ स्वामी

प्रार्थना ।

"काकदी" नगरी भली हो, "श्री सुग्रीव" नृपाल ।
"रामा" तस पटरायनी हो, तस सुत परम कृपाल ॥
श्री सुविध जिणेसर बंदिये ॥टेर॥१॥

प्रभुता त्यागी राजनी हो, लीधो संजम भार ।
निज आतम अनुभव थकी हो, पाम्या पद अविकार ॥ २ ॥

अष्ट कर्म नो राजवी हो, मोह प्रथम क्षय कीन ।
सुध समकित चारित्रनो हो, परम क्षायक गुणलीन ॥ ३ ॥

ज्ञानावरणी दर्शनावरणी हो, अन्तराय कियो अन्त ।
ज्ञान दरशन बल ये तिहूँ हो, प्रकट्या अनन्तानन्त ॥ ४ ॥

अव्याबाध सुख पामिया हो, वेदनी करम खपाय ।
अवगाहना अटल लही हो, आयु क्षय कर जिनराय ॥ ५ ॥

नाम करम नो क्षय करी हो, अमूर्त्तिक कहाय ।
अगुरुलघुपणो अनुभव्यो हो, गोत्र करम मुकाय ॥ ६ ॥

अष्ट गुणाकार ओलख्यो हो, जोति रूप भगवन्त ।
'विनयचन्द" के उर बसो हो, अहोनिश प्रभु पुष्पदन्त ॥ ७ ॥

[क]

जिन सुविधिनाथ भगवान् को नमन करने से, ध्यान करने से और स्मरण करने से बुद्धि मे सरलता आ जाती है, उन सुविधिनाथ को वन्दना करना चाहिए। इनके गर्भ मे आते ही इनकी माता की बुद्धि निर्मल हो गई थी, उनकी बुद्धि सुबुद्धि बन गई थी। इसलिए इनका नाम 'सुबुद्धिनाथ' भी है। आगे चलकर भगवान् सुविधिनाथ ने क्या किया ?

त्यागी प्रभुता राजनी हो, लीनो सजम भार।
निज आतम-अनुभव थकी हो, पाया पद अविकार।

इन महापुरुष ने अपनी आत्मा का अनुभव करके मोह का नाश किया और अन्त मे परम पद को प्राप्त किया।

आत्मा को परमात्मा की भक्ति मे तल्लीन करना बुद्धि-विन्दु को सीप मे डालना है। अगर बुद्धि-विन्दु को सीप में न डाल सको तो कमल-पत्र पर तो डालो ! जहाँ मोती न होगा तो मोती के समान तो होगा ! कमल-पत्र पर डालने के लिए क्या करना चाहिए ? अनुकम्पा करना, किसी जीव के दु:ख दर्द को दूर करना। ऐसा करते हुए भी यदि तुम्हारी आत्मा मे मोहमत्सरता आदि बने रहे तो भी आत्मा ऊँची ही चढेगी, नीचे नही गिरेगी।

आत्मा को उत्तम सगति में लगाकर उत्तम गुणों की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिए। नीच वस्तु के ध्यान मात्र से हृदय मे नीचता आ जाती है, तो कुसगति से नीचता

आना कौन-सी आश्चर्य की बात है !

प्रातःकाल उठकर अपने चित्त को नीच कार्य मे न डाल कर जगत्कल्याण के कार्य में डालो तो दिन कितना अच्छा व्यतीत होता है ! और अगर सवेरे ही हृदय में बुरे विचार आये तो सारा दिन ऐसा ही व्यतीत होगा । हृदय मे बुरे विचार आने से स्वप्न भी बुरे आते हैं और वही बुरे विचार मनुष्य को चक्कर मे डालकर बुरे काम कराते है, जिससे समस्त जीवन ही नही बल्कि असीम भविष्य भी बिगड़ जाता है ।

अकसर लोग समझते हैं कि हमारी हानि दूसरे बाहर वाले ने की है, पर नहीं, यह तुम्हारे हृदय के बुरे विचारों का ही परिणाम है । इस प्रकार गहराई में उतर कर अगर सच्चाई का पता लगाओगे तो मालूम होगा कि कुसंगति से उत्पन्न होने वाले नीच विचारो के कारण तुम्हारी कितनी हानि होती है !

कौन ऐसा है जो अपने लिए अच्छा करने की इच्छा न करे ? सभी अपनी भलाई चाहते हैं ।

फिर उन्हें रोकता कौन है ? किसने मना किया कि अच्छा मत करो ? किस राजा के पहरे बैठे हैं ? किसने हथकड़ी-बेड़ी डाल रक्खी है कि अच्छा काम या अच्छा विचार न करो ?

'मोहराज ने !'

मोह बेचारा क्या चीज है ? मोह भी तो विचार से ही होता है । अपने विचार गभीर बनाओ, खोटे विचार मत करो, खोटे वचन मत बोलो, खोटी दृष्टि न डाल कर परस्त्री को माता-बहिन की दृष्टि से देखो । ऐसा करोगे तो घाटे मे नही रहोगे । कभी हानि नही उठाओगे ।

यह जानते हो कि चोरी बुरे विचार के बिना नही होती । व्यभिचार भी बुरे विचारो के बिना नही होता । जितने भी नुकसान हैं वह सब बुरे विचारो के ही फल हैं । इन बुरे विचारों मे सफल न हुए, पकड़ में आ गये, राज्य के द्वारा दण्डित हुए तो फल किसका ?

'खोटे विचारो का !'

जब खोटे विचारों का फल होता है तो क्या खरे (अच्छे) विचारो का फल न होगा ? फिर अच्छे ही विचार क्यो नही करते ?

अच्छे विचारो की ओर अन्तःकरण का झुकाव न होता हो तो परमात्मा का भजन करो। परमात्मा का स्मरण करो । इससे हृदय में शाति होगी, बुरे विचार न होगे और अशुभ कर्मों का बन्ध न होगा । इसलिए महात्मा उपदेश करते हैं :—

खबर नहि है जग में पल की ।
सुकृत कर ले राम सुमर ले,

कौन जाने कल की ।

कौडी-कौडी माया जोडी,

करे बात छल की ।

सिर पर तेरे पाप गठरिया,

किस विध हो हल्की ।

भाइयो, कोई एक पल आगे की भी बात जानता है ? न मालूम किस समय शरीर छूट जाय ! हृदय की गति बन्द हो जाने से मनुष्य बैठा-बैठा ही मर जाता है, कुछ देर ही नही लगती । जब यह हाल है तो आत्मा को सुकृत से क्यो वचित रखना चाहिए ?

सुकृत कर ले !

राम सुमर ले !

दोनो ही बातें हाथ मे हैं । अच्छे काम भी कर सकते हो और परमात्मा का स्मरण भी कर सकते हो । तुलसी-दासजी कहते हैं—

तुलसी या ससार में, कर लीजे दो काम ।

देने को टुकडा भला, लेने को हरि नाम ।

टुकडे का अर्थ यहा रोटी का ही टुकड़ा मत समझो । यह समझना चाहिए कि यह तन-धन मेरा ही नही है कि मैं इसे संभाल कर मालिक बना बैठा रहूँ । इस धन को आत्मा की शान्ति के लिए यदि मैंने सत्कार्य मे व्यय किया तो मैं इसका मालिक हूँ, नही तो गुलाम हूँ ।

मालिक कौन है ? और ताबेदार किसे कहते हैं ? मालिक वह है जो काम ले और ताबेदार वह है जो काम दे। इस प्रकार काम लिया तो मालिक और काम देने लगे तो मालिक रहे ?

'नही !'

जिनको ताबेदार कहते हो वह काम कर लेने लगे और तुम काम लेने लगे तो फिर ताबेदार मालिक है और मालिक ताबेदार है। क्या आप धन के मालिक हैं ?

'हाँ !'

क्या कानो मे तोड़े पहन लेने से ही धन के मालिक हो गये ? जिन तोड़ों ने तुम्हारे कान फाड़े हैं वह तुम्हारे मालिक हैं या तुम उसके मालिक हो ? कान फाड़ने वाले तोड़ो के तुम मालिक कहलाओगे तो फिर गुलाम कौन कहलाएगा ? नौकर, मालिक की चिन्ता रखता है या मालिक, नौकर की फिक्र रखता है ? जिस धन की तुम्हें रखवाली करनी पड़ती है उसके तुम मालिक कैसे हुए ?

मित्रो ! यह मालिकी नही है। अगर आप जब चाहें तभी धन को सत्कार्य मे लगा सके, जब चाहे तब उससे ममत्व हटा कर शाति प्राप्त कर सके तो आप धन के स्वामी कहला सकते है। इसके विरुद्ध जो धन मोह उत्पन्न करता है, आसक्ति उत्पन्न करके अशान्ति का अनुभव कराता है, उस धन के तुम स्वामी नही।

तुम लक्ष्मी की तसवीर देखते हो । उसमे लक्ष्मी क्या करती है ? कृष्ण के पैर दबाती है। इसी कारण कृष्ण उसके नाथ कहलाते हैं । अगर कृष्ण लक्ष्मी के पैर दबाते होते तो ? क्या वे लक्ष्मी के नाथ रहते या लक्ष्मी उनकी नाथ बन जाती ? अब आप स्वयं विचार कीजिए कि आप लक्ष्मी के स्वामी हैं या सेवक हैं ? स्वामी था प्रदेशी, जिसने उपदेश सुनकर पौने दो हजार गाँव दान मे दे दिये । मगर आज तो कोई कोई धर्मगुरु भी दान देने मे पाप बतलाते है !

जरा विचार करो कि आपने दान देकर ममता का त्याग कर दिया तो पाप कैसे हो गया ? और अगर ममता नही त्यागी तो पाप से कैसे बच गये ?

धन जहर है न ? उस जहर को खुद न पीकर दूसरे को पिलाना कितना बड़ा पाप है ! जहर को स्वय पीना अच्छा मगर दूसरे को देना अच्छा नही ! इन सब बातों का अर्थ यही है कि दूसरों को दान देना अच्छा नहीं है !

लोकोत्तर ज्ञान के धनी भगवान् नेमिनाथ ने जीवदया से प्रेरित होकर राजीमती को त्याग दिया। इतने वह दयालु थे । और फिर घर लौट कर जहर बाटने लगे ! वह भी थोड़ा नहीं, वरन् एक करोड़, आठ लाख सोनैया लगातार एक वर्ष तक बाँटते रहे ! पशुओ और पक्षियों पर तो उन्होने इतनी दया की कि राजीमती को भी त्याग दिया और फिर जहर बाँटने में उन्हें दया नहीं आई !!

मित्रो ! जगत् के नाथ महापुरुषों के कार्य का इस प्रकार क्यों अनादर करते हो ? जिन्होने मूक पशुओ पर भी दया की, वह दान देने मे पाप समझते तो दान देते ही क्यो ? मगर आप को दान देने में पाप मान लेने का उपदेश दिया जाता है और आप यह समझ कर उसे स्वीकार कर लेते हैं कि— चलो धन भी बचा और धर्म भी हुआ ! मगर अपने भविष्य को सोचो । धन साथ लेकर कोई गया है या आप ही पहले पहल लेकर जाओगे ?

एक भूखा मनुष्य भूख से बिलबिला रहा है । किसी ने उसे अन्न देकर बचा लिया तो उसने पाप किया ? वह भूख का दु ख मिटाने के लिए अन्न देता है फिर जहर कैसा ? जब भूखा आदमी भूख से कराह रहा है और अन्न उसे मिल नही रहा है तो उसे क्रिया लगती है और अन्न मिलने से शान्ति होती है कि नही ? फिर जो शाति करने के लिए दान देता है उसे पाप कैसे लगा ? थोड़ा-बहुत विचार तो करो !

इस प्रकार विचार कर उदारता धारण करो । मोह-ममता को घटाओ, तो आपका कल्याण होगा ।

[ख]

श्री सुविधि जिनेश्वर बन्दिये रे, प्राणी ।

परमात्मा की प्रार्थना करने का रहस्य गहरा है , उस रहस्य तक मनोभाव की पहुंच भी कठिनाई से ही होती है

तो शब्दों की पहुंच सरलता से कैसे हो सकती है ? फिर भी शब्दो का प्रयोग किये बिना काम नही चलता। ससार मे शब्दो को छोड़कर और क्या साधन है कि कोई अपने मन के भावो को प्रकट करे ? अतएव इतना कहता हूँ कि आत्मा पर चढे हुवे आवरणो को हटाने के लिए ही परमात्मा की प्रार्थना की जाती है। आत्मा के मौलिक स्वरूप पर विचार करने से विदित होता है कि वास्तव में आत्मा और परमात्मा के स्वरूप मे कुछ भी अन्तर नही है। जो अन्तर आज मालूम हो रहा है वह औपाधिक है। वह बाह्य कारणों से उत्पन्न हुआ हैं। वह बाह्य कारण आठ कर्म हैं। आठ कर्म आत्मा के बैरी है। उन्होने आत्मा के असली स्वरूप को ढँक दिया है। आत्मा को राजा से रक बना दिया है। साधारण लोग दूसरे व्यक्तियो को अपना बैरी समझते हैं मगर उन्हें वास्तविकता का पता नही है। जिसे वास्तविकता का भान हो जाता है, उसके मन मे तनिक भी सदेह नही रहता कि कर्म-आवरण के सिवाय आत्मा का शत्रु और कोई नही है। इन्ही वैरियो को हटाने के लिए ही परमात्मा की स्तुति की जाती है।

आत्मा के शत्रु परमात्मा की प्रार्थना करने से कैसे दूर भाग जाते हैं ? इस प्रश्न का समाधान यह है। शत्रु जब शक्तिशाली होता है और उसे पराजित करने का अपने मे सामर्थ्य नही होता तो किसी बड़े की शरण ली जाती

है। महान् शक्तिशाली बडे की सहायता लेने से जबर्दस्त शत्रु भाग जाते हैं। इस प्रकार जो काम यो नही होता वह बडे की सहायता प्राप्त होने पर सरलता के साथ हो जाता है।

लोक-व्यवहार मे अकसर ऐसा होता है। फिर भी पौराणिक उदाहरण देखना हो तो कौरवो और पाण्डवो का उदाहरण देख सकते हैं। जब कौरव-पाण्डव युद्ध होना निश्चित हो गया और दोनो ही विजय प्राप्त करने की अपनी-अपनी शक्ति को टटोलने लगे तो इन्हें प्रतीत हुआ कि हमारी विजय सिर्फ हमारी शक्ति से नही होगी। अतएव दोनो ही श्री कृष्णजी की शरण मे गये। दोनो ने कृष्णजी को अपने-अपने पक्ष मे शामिल करने का विचार किया। अर्जुन ने श्रीकृष्ण को पसन्द किया और दुर्योधन ने उनकी सेना पसन्द की। मगर विजय उसी पक्ष की हुई जिस पक्ष मे अकेले श्रीकृष्ण थे। श्रीकृष्ण की बलवती सेना भी कौरवो को विजयी न बना सकी और अकेले निश्शस्त्र श्रीकृष्ण ने पांडवों को विजयी बना दिया।

अर्जुन ने विशाल और सुरक्षित यादव सेना न लेकर कृष्ण को ही लेना उचित समझा था। अर्जुन जानते थे कि कृष्ण की विवेकयुक्त बुद्धि के सामने शस्त्र क्या कर सकते हैं? नीति में कहा है—

बुद्धिर्यस्य बलं तस्य, निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम् ?

अर्थात्—जिसमे बुद्धि है उसमे बल है। बुद्धिहीन मे बल कहाँ ?

दुर्योधन के पक्ष मे विशाल सेना थी और शस्त्राशस्त्र की कमी नही थी, मगर उसकी बुद्धि खराब थी। इस कारण उसकी हार हुई। अर्जुन बुद्धिमान् थे इसलिए उन्होने सेना न लेकर श्रीकृष्ण को ही लिया। इसी तरह अगर आपकी बुद्धि अच्छी है और आप विजय चाहते हैं, कर्मरूपी शत्रुओं को भगाना चाहते हैं तो आप भगवान् सुबुद्धिनाथ की शरण लीजिए। लेकिन यह ध्यान रखना कि भगवान् सुबुद्धिनाथ को प्राप्त करने के लिए निर्मल बुद्धि होनी चाहिए। अगर आपकी बुद्धि मे विकार हुआ तो भगवान् सुबुद्धिनाथ आपको प्राप्त नही होगे। अपनी बुद्धि को निर्मल बना कर जब आप सुबुद्धिनाथ प्रभु की शरण गहेंगे तो आपकी आत्मा के शत्रु आप ही भाग जाएँगे। आत्मा के सच्चे शत्रु आत्मा में ही रहते हैं। वे भगवान् की सहायता के बिना नहीं भाग सकते। इसलिए जैसे अर्जुन के मन में यह निश्चय था कि कृष्ण के बिना मेरी जीत नही हो सकती, उसी प्रकार आप भी अपने मन मे निश्चय कर लीजिए कि भगवान् सुबुद्धिनाथ की सहायता के बिना मैं अपने आन्तरिक शत्रुओं पर विजय प्राप्त नही कर सकता। इस प्रकार की दृढ़ आस्था होने पर ही आप भगवान् की शरण ले सकेंगे। श्रीकृष्ण के पास सेना भी थी और हथियार भी थे। लेकिन भगवान् सुबुद्धिनाथ के पास हथियार नहीं हैं। फिर भी क्या आप उनकी सहायता लेना पसन्द करेंगे ? आपकी समझ में यह

बात आ जानी चाहिए कि हथियारो में जहर भरा हुआ है। हथियार दूसरों का गला काटने के सिवाय और कुछ भी काम नही दे सकते। उनसे शत्रुओ की हानि नही, वृद्धि ही होती है। हानि अगर होती तो शस्त्र का उपयोग करने वाले की ही होती है। शस्त्रो के द्वारा शत्रुता मिटने के बदले बढती ही है। अगर आप इस तथ्य को भली भाति समझ लेंगे तो शस्त्रहीन भगवान् सुबुद्धिनाथ को उसी प्रकार ग्रहण करेंगे जैसे वीर अर्जुन ने निश्शस्त्र श्रीकृष्ण को ग्रहण किया था। आप विश्वास रखिए, जब आपके हृदय मे वीतराग भगवान् विराजमान होगे तो राग द्वेष आदि विकार उसी प्रकार विलीन हो जाएँगे। जैसे सूर्योदय होने पर अन्धकार विलीन हो जाता है।

बाह्य दृष्टि से न देखकर अन्तर्दृष्टि से देखोगे तो पता चलेगा कि आपके आन्तरिक शत्रु वही हैं जिन्हें वीतराग भगवान् ने जीता है। उन्ही शत्रुओ ने आपके ऊपर आधिपत्य जमा रक्खा है। भक्तजन कहते हैं—

जे तुम जीत्या ते मुझ जीतिया,
पुरुष किसो मुझ नाम ·····।

अतएव अगर आप वैरिविहीन बनना चाहते हैं तो भगवान् को अपने हृदयमन्दिर मे विराजमान कीजिए। भगवान् ने उन वैरियो को जीत लिया है, अतएव उनके भीतर प्रवेश करते ही वैरी भाग जाएँगे। इसमें सन्देह की आवश्यकता नही है। णमोक्कार मन्त्र का पहला पद है— 'नमो अरि-

हताण ।' अर्थात् वैरियो का नाश करने वालो को नमस्कार हो । इस पर आशका हो सकती है कि जिसने अपने वैरियो का नाश किया है वह वीतराग कैसे कहला सकता है ? मगर उन्होने किसी बाह्य शत्रु को नष्ट नही किया है । कर्म-शत्रु का नाश करने के कारण ही वे अरिहन्त कहलाते हैं ।

कर्म किस प्रकार शत्रु है, यह बात समझने के लिए बुद्धि की आवश्यकता है । आमतौर पर कर्म का अर्थ कर्त्तव्य समझा जाता है । कर्त्तव्य चाहे अच्छा हो अथवा बुरा हो, वह यही रह जाता है । आत्मा के साथ वह नही जाता । ऐसी स्थिति मे कर्म परभव मे फल कैसे दे सकता है ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि हिंसा आदि की क्रिया भले ही यहीं रह जाय मगर क्रियाजनित सस्कार आत्मा मे बना रहता है और वही सस्कार शुभ-अशुभ फल देता है । इस बात को समझने के लिए वनस्पति को देखिये । शास्त्र में वनस्पति के सम्बन्ध मे बहुत विचार किया गया है और उसे 'दीर्घलोक' नाम दिया गया है । आज के वैज्ञानिक भी स्वीकार करते हैं कि वनस्पति स्वतन्त्र शक्ति प्राप्त करके हमें सहायता देने वाली है । वह पृथ्वी, पवन, जल आदि से बिगडी वस्तु लेकर अपनी शक्ति से उसे सुधारती है । फिर उसका फल आप ग्रहण करते हैं । अब अगर सुधरी हुई वस्तु लेकर उसे बिगाड़ दें तो वनस्पति की अपेक्षा भी गये-बीते कहलाएँगे या नही ?

प्रश्न किया जा सकता है कि पृथ्वी, पानी आदि को 'दीर्घलोक' न कह कर सिर्फ वनस्पति को ही 'दीर्घलोक' क्यो कहा है ? इस प्रश्न के उत्तर मे आचार्य का कहना है कि वनस्पति के आधार पर ही ससार का टिकाव है । इसी कारण वनस्पति को 'दीर्घलोक' कहते है ।

पानी बरसने पर जगल मे हरियाली ही हरियाली दिखाई पडती है । पानी बरसने पर वनस्पति हरी हो जाती है, लेकिन साधु के वचनरूपी जल की वर्षा होने पर भी अगर आपके अन्त.करण मे धर्म की जागृति नही हो तो आपको क्या कहा जाय ?

अपने यहां पन्नवणासूत्र मे वनस्पति के सम्बन्ध में बहुत विचार किया गया है । आजकल के वैज्ञानिको ने भी वनस्पति शास्त्र की रचना की है । वनस्पति के विषय मे गांधीजी ने अपने एक लेख मे लिखा है कि— 'वनस्पति की शोध मे अभी तक बहुत कमी है । इतनी अधिक कमी है कि अगर यह कहा जाय कि अभी तक पृथ्वी ही नही जोती गई है तो भी कुछ अनुचित नही होगा । अगर वनस्पति की विशिष्ट खोज की जाय तो लोगो को भ्रष्ट दवा खाने की आवश्यकता न पड़े । आयुर्वेद मे कहा है कि जो प्राणी जहां उत्पन्न होता है, उसके लिए उसी प्रदेश की दवा उपयोगी होती है । ऐसा होते हुए भी आजकल के लोग भ्रष्ट चीजें खाना पसन्द करते हैं और भारतवर्ष मे उत्पन्न होकर भी

इग्लेण्ड की औषध खाते हैं ? वह दवा कितनी ही अपावन क्यो न हो, बिना विचार किए उसे निगल जाते हैं या डकार जाते हैं। अगर वनस्पति क सम्बन्ध मे आधक खोज की जाय तो इस देश के निवासियो की प्रकृति के विरुद्ध और अपवित्र दवाइयाँ खाने का अवसर ही न आवे।"

मतलब यह है कि क्रियाजनित सस्कार किस प्रकार आत्मा को शुभाशुभ फल देता है, इस बात की खोज वनस्पति के आधार पर की जा सकती है। इसके लिए वटवृक्ष को देखिये। वटवृक्ष हवा-पानी आदि के सयोग से अपना विस्तार करता है। उसकी डालियो और पत्तो का फैलाव होता है और उनमे फल लगते हैं। वट की इस प्रकट क्रिया के साथ ही साथ उनमे एक गुप्त क्रिया भी होती रहती है। उसी गुप्त क्रिया के आधार पर यह विचार किया जा सकता है कि शुभ-अशुभ क्रियाओ से उत्पन्न होने वाले सस्कार किस प्रकार आत्मा को फल प्रदान करते है ?

बड़ के फल मे छोटे छोटे बीज होते हैं। उन बीजो मे बड़ अपना सरीखा वृक्ष भर देता है। फल या बीज मे अगर बड़-वृक्ष को देखने का प्रयत्न किया जाय तो दिखाई नही देता मगर बुद्धि द्वारा समझा जा सकता है कि बीज मे सम्पूर्ण वृक्ष छिपा हुआ है। छोटे से बीज मे अगर वृक्ष न छिपा होता तो पृथ्वी, पानी, ताप आदि का अनुकूल सहयोग मिलने पर वह कैसे प्रकट हो सकता था ? आशय यह

है कि वट-वृक्ष के सस्कार जैसे उसके बीज में मौजूद रहते हैं, उसी प्रकार आत्मा के द्वारा की हुई क्रियाओ के सस्कार आत्मा मे मौजूद रहते हैं और वे सस्कार क्रिया के नष्ट हो जाने पर भी आत्मा को शुभ या अशुभ फल प्रदान करते हैं।

पानी बरसने से पहले, जब जगल मे हरियाली नही होती, उस समय अगर हरियाली के बीजो को देखा जाय तो उनमे वैसी विचित्रता नजर नही आएगी। मगर पानी बरसने पर जब नाना प्रकार की हरियाली उगती है तो मानना पड़ेगा कि बीज भी नाना प्रकार के थे। बीज न होते तो हरियाली कहाँ से आती ? और अगर बीजो मे विचित्रता न होती तो हरियाली मे विचित्रता कसे होती ? बीज के अभाव मे हरियाली नही होती, पानी चाहे कितना ही बरसे। इस प्रकार कार्य को देख कर कारण का पता लगा लिया जाता है। हरियाली को देख कर जाना जा सकता है कि यहाँ बीज मौजूद थे और जैसे बीज थे, पानी आदि का सयोग मिलने पर वैसा ही वृक्ष उगा है।

बस, यही बात कर्म के सम्बन्ध मे भी समझ लेना चाहिए। यो तो कर्म के बहुत-से भेद हैं, मगर मध्यम रूप से आठ भेद किये गये हैं। जैनो का कर्मसाहित्य बहुत विशाल है और उसमे कर्म के विषय मे बहुत विचार किया गया है। श्वेताम्बर-दिगम्बर आदि सम्प्रदायो मे अनेक छोटी-मोटी

बातो मे मतभेद है, मगर कर्म के आठ भेदो मे तथा उनके कार्य के विषय मे किसी प्रकार का मतभेद नही है ।

इन आठ कर्मों मे चार अशुभ और चार शुभाशुभ है । मगर शास्त्र का कथन है कर्म मात्र का, फिर चाहे वह शुभ हो या अशुभ, त्याग करना ही उचित है । ऐसा करने पर परमात्मा का साक्षात्कार होता है । यो तो आत्मा स्वय परमात्मा ही है । कर्म के कितने ही आवरण आत्मा पर चढ़े हो, अपने स्वरूप से वह परमात्मा ही है । शुद्ध सग्रह-नय के मत से 'एगे आया' अर्थात् आत्मा एक है, इस दृष्टि-कोण के अनुसार आत्मा और परमात्मा में कोई भेद नही है । अपना आत्मा भी परमात्मा की तरह पवित्र है । आत्मा और परमात्मा मे आज जो भिन्नता दृष्टिगोचर होती हैं, उसका कारण आवरण ही है । आवरणो के हट जाने पर आत्मा सुबुद्धिनाथ ही है । इसलिए कहा गया है :—

द्वैत-कल्पना मेटो ।

वेदान्त भी 'तत्त्वमसि' कह कर इसी सिद्धान्त का निरूपण करता है । साराश यह है कि कर्म के कारण आत्मा और परमात्मा मे भिन्नता पड़ रही है । जब वह भिन्नता हट जाती है तो दोनो मे लेशमात्र भी अन्तर नही रहता । इस भिन्नता को हटाने के लिए ही भगवान् सुबुद्धिनाथ को हृदय में बसाने की आवश्यकता है । भगवान् सुबुद्धिनाथ ने कर्मों को नष्ट कर डाला है, अतएव जिसके हृदय मे वे

बसेंगे उसमे भी कर्मों का अस्तित्व नही रह सकेगा। काम, क्रोध, मोह आदि विकार कर्म के कारण हैं और जिस हृदय मे भगवान् बसते हैं उसमे इन विकारो की पैठ नही हो पाती। अतएव आत्मा निष्कर्म होकर पूर्ण परमात्मा बन जाता है।

मकान, ईंट चूने का बना होता है, फिर भी आप उसे अपना मानते हैं। लडकी दूसरे की होने पर भी जब उसका सम्बन्ध आपके लडके के साथ हो जाता है तो उस पर आपकी आत्मीयता नही हो जाती? इस प्रकार जब बाहर की चीज पर भी मोह होता है, तब जो कर्म शरीर से सम्बन्ध रखते हैं, उनके प्रति मोह होना स्वाभाविक ही है। और उसके प्रति मोह होने के कारण ही आत्मा और परमात्मा मे अतर पडा हुआ है। कर्म की उपाधि न हो तो आत्मा और परमात्मा मे किसी प्रकार का अन्तर नही रहता। इसलिए कहा है—

तू जिस्म जिगर और जहां नहीं जानना।
फिर क्यो नहीं कहता खुदा जो तू है दाना।

क्या तू यह जानता है कि मैं जिस्म नही हूँ, जिगर नही हूँ और जहान भी नही हूँ? अगर जानता है तो फिर क्यो नही कहता कि मैं खुदा हूँ? कदाचित् यह कहा जाय कि ऐसा कहना अहकार होगा तो यह कहना ठीक नही। अहकार की बात तो तब होगी जब तुम अपने को जिस्म,

जिगर और जहान मानोगे। अपने को जिस्म या जिगर समझना अहकार है। जब जिस्म, जिगर और जहान अलग हो जाता है तो शुद्ध आत्मा के सिवाय और वचता ही क्या है ? और उस अवस्था मे उसे परमात्मा कहना अभिमान की बात कैसे हो सकती है ? अभिमान तभी तक रहता है जब तक ससार के प्रति मोह बना रहता है। ज्ञानीपुरुष मोह का नाश करने के लिए कहते हैं कि—

> बुज्झिज्ज त्ति तिउट्टिज्जा बधणं परिजाणिया।
> किमाह बधण वीरो किं वा जाण तिउट्टइ ? ॥
> चित्तमंतमचित वा परिगिज्झ किसामवि।
> अन्न वा अणुजाणाहि एव दुक्खाण मुच्चइ ॥
> जस्सि कुले समुप्पण्णो जेहिं वा सवसे नरे।
> ममाइ लुम्पइ बाले अण्णे अण्णेहिं मुच्छिए ॥

इस प्रकार आत्मा मोह-ममता के चक्कर में पड़ा हुआ है, अन्यथा उसे पुत्र आदि से क्या सरोकार है ? केवल ममता के कारण ही वह पुत्र को अपना मान रहा है। मित्रो ! इस प्रकार के मोह को जीत लो तो तुम्ही परमात्मा हो। अगर तुमने इस मोह को नहीं जीत पाया है तो परमात्मा नही हो। अगर परमात्मा को वन्दन करना है तो बन्धन के स्वरूप को समझो और विचार करो—'अरे आत्मन् ! तू कर्म के साथ कब तक वँधा रहेगा ? मेरा और परमात्मा का स्वरूप एक ही है। लेकिन मोह के चक्कर में पड़ कर

तू अपने असली स्वरूप को भूला हुआ है। मगर कब तक भूला रहेगा ? अनादिकाल से भूल में पडा है ! अब तो चेत !'

अगर आप से आज ही गृह का त्याग नही हो सकता तो भी माया, ममता और तृष्णा का त्याग कर दो। इतना करने से ही आपको बहुत लाभ होगा। उस अवस्था मे आपको सन्तोष, शान्ति और ममता की अपूर्व सुधा का सुख मिलेगा। परलोक की बात थोड़ी देर के लिए जाने भी दो तो इसी लोक में आप अपने जीवन को सुखमय और सन्तोष-मय बना सकेंगे।

एक आदमी अज्ञानपूर्वक साप को पकड़ता है और दूसरा ज्ञानपूर्वक। दोनो के पकड़ने में क्या अन्तर है ? अज्ञान से सांप को पकड़ने वाला जब जानता है कि यह साप है तो डर कर भागता है। मगर जान-बूझकर सांप को पकडने वाले के लिए सांप खिलौना रहता है। अतएव आप ससार का स्वरूप समझो और अज्ञान को त्यागो। भगवान् सुबुद्धिनाथ को हृदय मे धारण करो। ऐसा करने पर संसार आपके लिए खिलौने के समान हो जायगा।

इस प्रकार का ज्ञान पाप्त करने के लिए भगवान् सुबुद्धिनाथ की शरण लेना ही सुगम और उत्तम साधन है। आप अपना कल्याण चाहते हैं तो सुबुद्धिनाथ की शरण गहो।

[ग]

श्री सुबुधि जिनेश्वर वन्दिये रे ।

यह श्री सुबुद्धिनाथ भगवान् की प्रार्थना है। इस प्रार्थना मे यह बतलाया गया है कि भगवान् सुबुद्धिनाथ, सुबुद्धिनाथ किस प्रकार हुए ? भगवान् सुबुद्धिनाथ को भगवान् पद प्राप्त करने मे जो विघ्न था या जो अन्तराय बाधक हो रहा था, भगवान् ने उसे दूर किया था। उसे दूर करने पर भगवान् सुबुद्धिनाथ का आत्मधर्म प्रकट हुआ था। प्रार्थना में कही गई बात को सुनकर यह विचार स्वतः उत्पन्न होता है कि— 'हे प्रभो ! तेरे और मेरे बीच मे केवल इतनी ही दूरी है कि तूने तो विघ्नो को दूर कर दिया है और मैं उन्हें अभी तक दूर नही कर सका हूँ। तेरे और मेरे बीच में सिर्फ इतना ही अन्तर है। सिर्फ इतना ही पर्दा है। इतनी-सी दूरी के कारण मैं आपसे दूर पडा हूँ।'

हम और आप यह तो समझ गये कि आत्मा और परमात्मा मे इतना ही अन्तर है और सिर्फ विघ्नों के दूर होने और न होने का ही पर्दा बीच मे है। मगर प्रश्न यह है कि अब हमे करना क्या चाहिए ? इस प्रश्न का उत्तर स्पष्ट है कि अगर हम भगवान् से भेंट करना चाहते हैं तो हमे बीच का पर्दा हटा देना चाहिए। विघ्नों अन्तरायों को दूर कर देना चाहिए। जब तक ऐसा नही किया जायगा अर्थात् पर्दे को नही हटाया जायगा तब तक परमात्मा से

भेट कैसे हो सकती है ? अगर कोई इस पर्दे को हटाने का प्रयत्न नही करता तो यही कहा जायगा कि वह परमात्मा से भेट नही करना चाहता ।

ससार मे सबसे बड़ी जो भूल हो रही है, वह यही है कि जो वस्तुएँ परमात्मा से भट करने मे विघ्न रूप हैं, उन्ही वस्तुओ को लोग हितकारी समझते हैं । इस भूल के कारण आत्मा और परमात्मा के बीच की दूरी बढ़ती चली जाती है । अगर आप इस दूरी को खत्म करना चाहते हैं तो इस पद्धति को पलट दीजिये और सच्ची वस्तु प्राप्त कीजिये ।

भगवान् सुबुद्धिनाथ का 'सुबुद्धिनाथ' नाम केवलीपद प्राप्त करने से पहले का है— बाद का यह नाम नही है । केवली पद प्राप्त करने के बाद तो उनके अनन्तनाम हो गये हैं । हम लोग अपनी क्षुद्रबुद्धि का सदुपयोग नही करते वरन् दुरुपयोग करते हैं । अपनी बुद्धि के सहारे ऐसा तर्क-वितर्क करते हैं जिसका करना उचित नही है । इस प्रकार हम भगवान् को प्राप्त करने के मार्ग मे काटे बिखेर लेते हैं । भगवान् सुबुद्धिनाथ की शरण मे जाने पर बुद्धि का दुरुपयोग मिट जायगा और सुबुद्धि प्रकट होगी । अतएव अपनी बुद्धि को सुबुद्धि बनाने के लिए भगवान् की शरण में जाना उचित है ।

कहा जा सकता है कि यह तो सभी चाहते हैं कि हमारी दुर्बुद्धि मिट जाय और सुबुद्धि का प्रकाश हो, लेकिन

ऐसा होता क्यो नही है ? इसका उत्तर यह है कि आकाश से जो पानी गिरता है, वह तो सर्वत्र समान ही होता है परन्तु पात्र उसे अपने अनुसार ही ग्रहण करता है। इसी प्रकार भगवान् की दृष्टि मे तो शुद्ध स्वरूप से सभी जीव समान हैं लेकिन विकारो के कारण अपनी बुद्धि मे विचित्रता को मिटाने के लिए ही भगवान् सुबुद्धिनाथ की शरण मे जाने की आवश्यकता है। बुद्धि मे विचित्रता किस तरह आ रही है, इस सम्बन्ध मे विचार करने की आवश्यकता है।

"परस्पर विवदमामाना शास्त्राणा
'अहिंसा परमो धर्म' इत्यत्रैकवाक्यता ।"

इसका अर्थ यह है कि और मतभेद तो बहुत हैं मगर अहिंसा परम धर्म है, इस विषय मे किसी का भी मतभेद नही है। अहिंसाधर्म सभी को मान्य है, ऐसा होने पर भी धर्म के नाम पर कितनी खूनखराबी हुई है ! जहा धर्म के नाम पर इस प्रकार खूनखराबी हो यानी हिंसा हो, समझना चाहिए कि वहा वास्तविक धर्म नही है। वहां धर्म के नाम पर ढोग किया जाता है। सच्चा धर्म अहिंसा है और अहिंसा के कारण न कही लडाई हुई है और न हो ही सकती है। अहिंसा, सत्य आदि के कारण न कभी लड़ाई होती है और न इनके पालन करने मे किसी का मतभेद है फिर भी इनके या धर्म के नाम पर जो लड़ाई की जाती है वह केवल अपने हृदय के विकारो के ही कारण की जाती है। अपने

हृदय के विकारों को ही धर्म का नाम दिया जाता है और फिर लड़ाई की जाती है। इस स्थिति को देखकर घबडाने की आवश्यकता नही है। ऐसे समय पर व्यक्ति को स्वातन्त्र्य का विचार करना चाहिए। व्यक्तिस्वातन्त्र्य के बिना धर्म नही टिक सकता। कोई भी धर्म यह नही कहता है कि परस्पर लड़ो और एक दूसरे को दु.ख पहुंचाओ। फिर भी धर्म के नाम पर जो दूसरो को दु.ख देता है वह धर्म को नही जानता है। इस प्रकार बुद्धि मे विचित्रता आ रही है। इसे मिटाने के लिए सुबुद्धिनाथ की शरण मे जाना चाहिए। भगवान् सुबुद्धिनाथ की शरण मे जाने से बुद्धि की विचित्रता मिट जायगी।

१०-श्री शीतलनाथ स्वामी

प्रार्थना ।

"श्री दृढरथ" नृप तो पिता, "नन्दा" थारी माय ।
रोम-रोम प्रभु मो भणी, शीतल नाम सुहाय ।। टेर १ ।।

जय जय जिन त्रिभुवन घणी, करुणानिधि करतार ।
सेव्या सुरतरु जेहवो, वाछित सुख दातार ।। २ ।।

प्राण पियारा तुम प्रभु, पतिवरता पति जेम ।
लगन निरन्तर लग रही, दिन-दिन अधिको प्रेम ।। ३ ।।

शीतल चन्दम नी परे, जपता निश दिन जाप ।
विषय कषाय थी ऊपनी, मेटो भव दुख ताप ।। ४ ।।

आर्त्त रौद्र परिणाम थी, उपजे चिन्ता अनेक ।
ते दुख कापो मानसिक, आपो अचल विवेक ।। ५ ।।

रोगादिक क्षुधा तृषा, शस्त्र अशस्त्र प्रहार ।
सकल शरीरी दुख हरो, दिल सूँ विरुद विचार ।। ६ ।।

सुप्रसन्न होय शीतल प्रभु, तू आशा विसराम ।
"विनयचन्द" कहे मो भणी, दीजे मुक्ति मुकाम ।। ७ ।।

परमात्मा की स्तुति में वास्तविक रहस्य क्या है, इस बात को तो कोई योगीश्वर जो आत्मज्ञान मे परिपूर्ण हो वही, बता सकता है। पर जब हम पूर्ण योगी होगे तभी बोलेगे, इसी विचार मे बैठे रहे तो पूर्ण कब होगे ? अपूर्ण से ही पूर्ण होते है। अगर आरम्भ ही न करेंगे तो पूर्णता पर किस प्रकार पहुंच सकेंगे ?

गरुड जैसा पक्षी ही आकाश में स्वच्छन्द विहार कर सकता है, परन्तु क्या मक्खी अपने पखो की शक्ति के अनुसार आकाश मे नही उड़ती ? वह उडती है और उसको उडने का अधिकार भी है। इसी प्रकार परमात्मा और उसके गुण को पूरी तरह प्रकट करने की शक्ति तो योगियो मे ही है, फिर भी अपनी शक्ति के अनुसार परमात्मा और आत्मा के गुणो पर विचार करना अपना भी कर्त्तव्य है। इस प्रार्थना मे कहा है :—

जयजय जिन त्रिभुवन धनी।

अर्थात्—हे तीन लोक के नाथ ! तू जयवन्त हो।

यहाँ पश्न किया जा सकता है कि परमात्मा क्या अपने कहने से जयवन्त होगा ? क्या उसे जय प्राप्त करना अभी बाकी है ? उसने समस्त कर्म-बन्धनो का क्षय कर डाला है, अपने आपको पूर्णरूप से शुद्ध, निर्लेप और निर्विकार बना लिया है, फिर परमात्मा को कौन-सी विजय प्राप्त करना शेष रह गया ? यदि परमात्मा कृतकृत्य हो गया है तो भक्त

के इस कथन में क्या रहस्य है ?

मित्रो ! इस बात को समझना जरा कठिन है, फिर भी अगर विचार करोगे तो अवश्य समझ सकोगे ।

एक पुरुष सूर्य की स्तुति करता है कि— हे सूर्य, तू जगत मे प्रकाशमान हो ।' सूर्य तो स्वत. प्रकाशमान है फिर इस स्तुति का क्या प्रयोजन है ? यही कि प्रकाश पाने वाले ने अपनी कृतज्ञता प्रकाशित की है कि तेरा प्रकाश लेकर मैं यह गुण सीखा हूँ । सम्भव है, इतने से आप पूरी तरह समझे हो, अतः जरा और स्पष्ट करके कह देना उचित है ।

मान लीजिए, राजा ने आपको बड़ा समझकर, बिना कर लिए आपके घर बिजली भेज दी । उस बिजली के प्रकाश से आपका घर जगमगा उठा । यह देखकर आपके मन मे कितना अहकार होगा ? आप सोचेंगे - हम पर महाराजा की बड़ी कृपा है और आप दूसरो से कहेंगे– तुम क्या हमारी बराबरी कर सकते हो ! देखो न, महाराजा ने हमारे घर मुफ्त मे बिजली भेजी है। इतने मे राजा ने अगर सभी के घर मुफ्त बिजली भेजने का ऐलान कर दिया तो आपका मुंह कुम्हला जायगा । फिर आप सोचेंगे कि राजा ने हमारे साथ क्या विशेषता की है । उन्होने जैसे सभी के घर बिजली भेजी, वैसे ही मेरे यहाँ भी भेज दी । सारांश यह है कि आपके हृदय का वह आनन्द, जो सबके घर बिजली भेजने से पहले था, जाता रहेगा ।

यही विचार करने की आवश्यकता है। आपका आनन्द चला क्यो गया ? दूसरों को मुफ्त मे बिजली मिली तो आपकी क्या हानि हो गई ? आपकी हानि कुछ भी नही हुई है। सिर्फ आपकी इस सकीर्ण भावना को ठेस पहुंची कि दूसरो के यहा न हो सो सुख और अगर दूसरो के यहा भी हो तो सुख काहे का ? इसी सकुचित मनोवृत्ति के कारण आपका सुख चला गया। इसीलिए ज्ञानी-जन कहते हैं कि ससार का सुख ईर्षाजनित है। वह छोटा और मैं बड़ा, बस यही ससार का सुख है। इस छुटाई और बड़ाई की स्पर्द्धा ने आत्मा को ऐसा सकुचित बना दिया है कि सच्चा सुख विस्मृत ही हो गया।

सबको मुफ्त मे बिजली मिली तो आपको अधिक हर्ष होना चाहिए था और समझना चाहिए था कि हमारा राजा इतना निष्पक्ष और उदार है कि वह समस्त प्रजा को समान दृष्टि से देखता है। आपको यह शिक्षा भी लेनी चाहिए थी कि जैसे राजा किसी के प्रति भेदभाव नही करता उसी प्रकार मैं भी किसी के साथ भेदभाव न रक्खूं।

राजनीति यह है कि जो परोपकारी हो, प्रजा को शाति देता हो, प्रजा की भलाई का काम करता हो, राजा उसे मान और अधिकार दे। इसी विचार से आपका राजा ने अगर सन्मान किया तो समझना चाहिए कि मेरे ऊपर बोझ रक्खा गया है। मुझे प्रजा की सेवा का बोझ उठाना चाहिए।

बिजली का तो दृष्टान्त मात्र है। किसी राजा मे आज ऐसा सामर्थ्य नही दीखता कि वह अपनी समस्त प्रजा को समान रूप से, कर लिए बिना ही, बिजली दे सके। यह सम्भव नही कि बड़ी-बडी हवेलियो की तरह गरीब की साधारण कुटिया बिजली के प्रकाश से जगमगा उठे। मगर सूर्य का जरा विचार कीजिए। क्या बिजली के प्रकाश की भाँति सूर्य का प्रकाश प्रत्येक कुटिया तक नही पहुंचता? सूर्य क्या गरीब-अमीर मे भेद करता है? वह आपसे कोई कर वसूल करता है?

'नही।'

तो फिर आप बिजली का आभार मानें किन्तु सूर्य के प्रकाश का, जो जगत् का पोषण करने वाला और जीवन देने वाला है, आभार क्यो न मानें? सूर्य केवल आपको प्रकाश देता तो आप फूले न समाते और समझते कि बस, अकेला मैं ही सूर्य का प्यारा हूँ! सूर्य ने सबको प्रकाश दिया तो आपका आनन्द छिन गया! लेकिन जिन्होंने प्रकृति का मनन किया है, उन्होने सूर्य का महान् उपकार स्वीकार किया है।

सूर्य की प्रार्थना करने वाला कहता है— 'हे सूर्य! तू ससार मे प्रकाशमान रह।' इस प्रार्थना का आशय यह है कि जिस प्रकार सूर्य मुझे प्रकाश करता है उसी तरह सबको प्रकाश दे। और ऐसी प्रार्थना करने वाला इस भावना

को ग्रहण करता है कि जब यह सूर्य किसी को भी प्रकाश से वचित नही करता, सबको समान रूप से प्रकाश देता है तो मैं ही क्यो भेद रक्खू ? जिस प्रकार सूर्य जगत् का 'मित्र' है, उसी प्रकार मैं भी समस्त जगत् का मित्र क्यो न बनूं ?

अब मूल बात पर आइए। प्रार्थना मे कहा है :—

> जय जय जिन त्रिभुवन धनी।
> करुणानिधि करतार,
> सेव्यां सुरतरु जेहवो।
> वांछित फल दातार।

अब उस द्रव्यसूर्य के बदले भावसूर्य रूप त्रिभुवननाथ का विचार करो। हे प्रभो ! तू त्रिभुवन का नाथ है, इसलिए जयवन्त हो। जैसे राजा की जय मे प्रजा की जय गर्भित है, इसी प्रकार तीन लोक के नाथ भगवान् की जय मे ससार के समस्त प्राणियो की जय या शान्ति गर्भित है। क्योकि जब भगवान् को तीन लोक का नाथ कह दिया तो सभी प्राणी उसकी प्रजा हुए। इस प्रकार भगवान् की जय मे यह उदारतम भावना भरी हुई है। जिसके हृदय मे यह भावना उत्पन्न हो जायगी, वह क्या किसी से राग और किसी से द्वेष करेगा ?

'नही।'

ऐसी भावना वाला सबको समान दृष्टि से देखेगा।

सबको एक ही प्रकार से चाहेगा ।

इस प्रार्थना मे भगवान् को 'करतार' भी कहा है। इससे आप यह न समझ बैठे कि कर्त्ता भगवान् है— सब कुछ करने वाला वही है और हम उसकी कठपुतली हैं। अगर आप यह समझ बैठे तो भ्रम मे पड जाएँगे और नि संकोच होकर पाप मे प्रवृत्ति करने लगेगे। तो फिर यहाँ 'करतार' कहने का क्या प्रयोजन है ?

जैनसिद्धान्त स्याद्वादी है। भिन्न-भिन्न अपेक्षाओ से एक वस्तु मे अनेक गुणो को स्वीकार करना स्याद्वाद-सिद्धान्त का सक्षिप्त स्वरूप है। भगवान् आत्मविशुद्धि मे निमित्त होते हैं और इस निमित्त की मुख्यता को लेकर ही भगवान् में कर्त्ता-पन का आरोप किया जाता है।

आप लोग विवाह के समय कलश आदि की पूजा क्यों करते हैं ? कलश आदि का कर्त्ता कुम्भार है। फिर कुम्भार की पूजा न करके चाक की पूजा करने का क्या कारण है ? कारण यही है कि कलश चाक के निमित्त से बनता है। जैसे चाक के बिना कलश बनाने का काम नही हो सकता अतः चाक निमित्त है, उसी प्रकार परमात्मा भी आत्मशुद्धि में निमित्त है। परमात्मा को निमित्त बनाये बिना— उसका भजन, चिन्तन, मनन आदि किये बिना आत्मा की विशुद्धि नही हो सकती। इस प्रकार परमात्मा मे निमित्त होने के कारण कर्तृत्व का आरोप है।

अगर कोई परमात्मा के कर्त्ता होने का यह अर्थ लगाता है कि जिस प्रकार कुम्हार घड़े बनाता है, उसी प्रकार ईश्वर ससार को घडता है, तो कहना चाहिए कि उसने वस्तु-स्वरूप को समझा ही नही है। अगर ईश्वर ही सब कुछ घडता है और हम कुछ नही करते तो हमारे पुण्य और पाप का कर्त्ता भी ईश्वर ही ठहरेगा और फिर उसी को इनका फल भुगतना चाहिए। परन्तु ईश्वर किसी भी वस्तु को घड़ता नही है। गीता मे कहा है—

> न कर्तृत्व न कर्माणि, लोकस्य सृजति प्रभु ।
> न कर्मफलसयोग, स्वभावस्तु प्रवर्त्तते ॥
>
> —अध्याय ५

परमात्मा कर्त्तापन, कर्मों और कर्मों के फल के सयोग की रचना नही करता।

कहा जा सकता है कि अगर भगवान् कर्म-फल का सयोग नही कराता अर्थात् कर्म-फल का भोग नही कराता तो किस प्रकार जीव कर्म-फल भोगते हैं? इस प्रश्न का समाधान भी यही कर दिया गया है कि आत्मा अपने स्वभाव से ही कर्मों का फल भोग लेती है।

अगर आप यह मान लें कि ईश्वर कर्त्ता है तो फिर हमे भोजन करने की क्या आवश्यकता है? भूख मिटाना ईश्वर का काम है। फिर हमारे खाने से क्या लाभ होगा? तो आपने ईश्वर का स्वरूप ही नही समझा। आपको यह

समझना चाहिए कि ईश्वर सर्वदर्शी होने से निमित्तरूप कर्त्ता है। किसी भी समय उसकी अनुपस्थिति न समझो—यह समझो कि वह सर्वत्र और सर्वदा देखता है। कभी कोई उसकी दृष्टि से नही बच सकता। ऐसा समझ लेने पर आपकी पाप में प्रवृत्ति नही होगी।

इतने विवेचन का सार यह है कि जैसे आप पृथ्वी पर रहना चाहते हैं, उसी प्रकार पृथ्वी पर रहने का सब का हक है। सब को समान अधिकार है। इस बात की शिक्षा आपको प्रकृति के पदार्थ देते हैं। फिर भी विषम भाव धारण करना मनुष्य की भूल है।

भाइयो ! चाहे आप अन्धेरे मे रहो या उजेले मे, भीतर रहो या बाहर, परमात्मा अपने ज्ञान से सर्वत्र अपने साथ हैं। कल्पवृक्ष साथ मे रहने से कोई भूखा नही रह सकता। परमात्मा को पग-पग पर समझ कर ध्यान करने वाले के लिए परमात्मा कल्पवृक्ष है।

अगर आप परमात्मा को सर्वदर्शी और इसी कारण सर्वव्यापक मान कर सर्वत्र पाप से बचते रहेंगे तो आपके हृदय मे शीघ्र ही एक अलौकिक ज्योति उत्पन्न हो जायगी, जिससे आपका परम कल्याण होगा।

११-श्री श्रेयांसनाथ

प्रार्थना ।

चेतन जाण कल्याण करन को, आन मिल्यो अवसर रे ।
शास्त्र प्रमाण पिछान प्रभु गुण, मन चचल थिर कर रे ।।
श्रेयास जिनन्द सुमर रे ।।टेर।।१।।

सास उसास विलास भजन को, दृढ विश्वास पकर रे ।
अजपाभ्यास प्रकाश हिये बिच, सो सुमरन जिनवर रे ।।२।।

कदर्प क्रोध लोभ मद माया, ये सब ही परहर रे ।
सम्यक्‌दृष्टि सहज सुख प्रगटे, ज्ञान दशा अनुसर रे ।।३।।

भूठ प्रपच जोवन तन धन अरु, सजन सनेही घर रे ।
छिन मे छोड चले पर भव को, बाध शुभाशुभ थर रे ।।४।।

मानस जनम पदारथ जाकी, आशा करत अमर रे ।
ते पूरव सुकृत कर पायो, धरम मरम दिल धर रे ।।५।।

"विश्वसेन" "विस्ना" राणी को, नन्दन तू न विसर रे ।
सहज मिटे अज्ञान अविद्या, मुक्ति पथ पग भर रे ।।६।।

तू अविकार विचार आतम गुन, भव-जजाल न पर रे ।
पुद्‌गल चाह मिटाय 'विनयचन्द', ते जिन तू न अवर रे ।।७।।

मानव जीवन का क्षण-क्षण परमात्मा की प्रार्थना में ही व्यतीत होना उचित है। प्रार्थना करने का यह विचार कोई नवीन नही है। अतीतकाल के जितने भी ग्रन्थ हैं, उन सब मे परमात्मा की प्रार्थना करने का उपदेश दिया गया है। वेद, कुरान, बाइबिल, पुराण आदि सब मे परमात्मा की प्रार्थना की गई है। जितने भी धर्म और समाज हैं उन सब मे यही उपदेश दिया जाता है कि परमात्मा की प्रार्थना ही ससार मे सारभूत वस्तु है। यह दूसरी बात है कि प्रार्थना करने का सब सम्प्रदायो का अपना अलग अलग ढंग है, पर प्रार्थना की महिमा सब ने स्वीकार की है।

प्रार्थना के साधारणतया तीन भेद किये जा सकते हैं—(१) उत्तम (२) मध्यम और (३) कनिष्ठ। उत्तमकोटि की प्रार्थना वह है जिसमें आत्मभाव की उन्नति होती है, किसी प्रकार की आशा-कामना नही की जाती और जो जगत् से मित्रता का भाव रहने के लिए की जाती है। जिस प्रार्थना मे इस लोक और परलोक सम्बन्धी कल्याण एव अपना तथा पराया सुख चाहा जाता है वह मध्यम कोटि की प्रार्थना है। जिस प्रार्थना द्वारा यह चाहा जाता है कि— मेरे वैरी का नाश हो जाय, सारा सुख मुझे ही मिले और दूसरे को न मिले, इस प्रकार की प्रार्थना कनिष्ठ प्रार्थना है।

वहुत से लोग भगवान् के नाम पर यही नीच कोटि की प्रार्थना करते हैं। इस सम्बन्ध में अधिक विवेचन करने

का समय नही है ।

अभी-अभी जो प्रार्थना की गई है, वह किस कोटि की प्रार्थना है, इसकी परीक्षा के लिए परीक्षक होना चाहिए ।

सुमर रे सुमर रे सुमर रे,
श्रेयास जिनन्द सुमर रे ।

क्यो ? श्रेयांसनाथ जिनेन्द्र को सुमरने की इतनी प्रबल प्रेरणा क्यो की जा रही है ? इसके उत्तर मे कहा है :—

चेतन जान कल्याण करन को,
आन मिल्यो अवसर रे ।

कल्याण करने का यह महा मगलमय अवसर प्राप्त हुआ है । इस सुअवसर को पाकर निरन्तर-सतत, जिस प्रकार महानदी की धारा एक पल के लिये भी 'नही' टूटती है, भगवान् के स्मरण की पावनी गगा बहने दो ।

लोग कहते हैं—गगा-किनारे भजन करने से फतह हो जाती है । अर्थात् गगा के किनारे का भजन विशेष लाभ-दायक होता है । मगर गगा के किनारे के भजन में क्या विशेषता है, इस बात को जो जानता है वही जानता है, सब नही जानते । गगा के किनारे भजन करने का अभिप्राय यह है कि गंगा का अनुकरण करो । जैसे गगा किसी के द्वारा की हुई बड़ाई या निन्दा से बढती-घटती नही है । वह अपनी मर्यादा को नही छोडती—जिस ओर बह रही है उसी ओर बहती रहती है । उसके पास राजा आवे, चाहे रक आवे,

ब्राह्मण आवे या चाण्डल आवे, वह एक-सी बहेगी। राजा के आने पर ज्यादा और रक के आने पर कम बहना उसका स्वभाव नही है। वह अपनी एक ही गति से बहती रहती है। इसी तरह भजन भी एक ही गति से चलने दो। मुँह देख-देखकर प्रार्थना मत करो। यह मत सोचो कि इस समय लोग देखते हैं तो मैं भजन करूं और जब लोग न हो तो भजन भले ही कम हो या न हो। अपनी प्रशसा सुनकर चढ मत जाओ और निन्दा सुनकर सूख मत जाओ। इस प्रकार निरन्तर गति से, समान रूप से, गगा के प्रवाह की तरह प्रार्थना भजन का प्रवाह चलने दो। जो ऐसी प्रार्थना करता है वह कल्याण का भागी होता है।

शास्त्र से भगवान् के गुणो को और सिद्धान्तो को पहचान लेने के पश्चात् प्रार्थना करने से विशेष रस मिलता है।

आरुग्ग-बोहिलाभं समाहिवरमुत्तम दितु।
चन्देसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा।
सागरवरगभीरा, सिद्धा सिद्धि मम दिसतु॥

यह प्रार्थना आप प्राय: प्रतिदिन करते हैं पर आप इस पर गहराई से शायद ही सोचते हो। वास्तव मे दत्त-चित्त हुए विना प्रार्थना का यथेष्ट फल नही मिलता।

यस्मात् क्रिया प्रतिफलन्ति न भावशून्या.।

अर्थात्—भाव से शून्य-मनोयोग के विना की हुई क्रिया फल देने वाली नही होती।

अभी जो प्रार्थना अर्द्धमागधी भाषा मे बतलाई है उसमे और कुछ नही, केवल यह कहा है कि— हे प्रभु ! मुझे निर्दोष सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र को दो । तुम्हारे सिवाय और कहाँ जाऊँ ?

कल्याण-रूपी सहज समाधि तू दे, मुझे उपाधि नही चाहिए ।

तू चन्द्र से अधिक निर्मल और सूर्य से अधिक प्रकाशमान है ।

मित्रो ! भगवान् जब सूर्य से अधिक प्रकाशमान है, जिसका प्रकाश सूर्य से नही— सूर्यों से भी अधिक है, वह दिन-रात, छिपे-चौडे, भीतर-बाहर, जो भी कुछ हम करते हैं, उसका साक्षी है या नही ?

'है !'

यदि आप इस सत्य को स्वीकार कर ले, गाँठ बाँध लें कि ईश्वर सब जगह देखता है तो आपका कल्याण हो जाय । आप मन मे यह निश्चय कर लें कि दूसरे से दगा करना ईश्वर से दगा करना है तो आपका मन स्थिर हो जाय । जब आप यह निश्चित कर लेंगे कि अच्छे और बुरे सब विचारो का साक्षी परमात्मा है तो कल्याण की प्राप्ति मे देर नही लगेगी । इन भावो को धारण कर लेने पर निस्सन्देह आत्मा, परमात्मा का दर्शन कर लेगा ।

श्वास उसास विलास भजन को,
दृढ विश्वास पकड रे !
अजपाभ्यास प्रकाश हिये बिच,
सो सुमिरन जिनवर रे ॥

कोई श्वास और उच्छ्वास खाली न जाय, जिसमें भगवान् का भजन न हो।

आप कह सकते हैं—फिर हम बातें कब करें? इधर-उधर की गपशप और घर-व्यापार की चर्चा करने के लिए भी तो कोई समय चाहिए।

आपने देखा होगा कि अनेक बहिनें सिर पर खेप रख कर और बगल मे पानी से भरा हुआ घड़ा दबाकर चलती है। रास्ते मे कही काँटा लग जाय तो वे खेप और घड़े को जमीन पर रक्खे बिना ही, खड़ी रहकर, एक हाथ से काँटा निकाल लेती हैं। उनके घड़े क्यो नही गिरते ?

'घड़ो पर उनका ध्यान रहता है।'

इसी प्रकार परमात्मा पर ध्यान जमाए रक्खो। काम में लगे रह कर भी परमात्मा के भजन मे बाधा न पहुंचे ऐसे प्रसन्नता के काम करो।

कहा जा सकता है कि ऐसे प्रभु की प्रसन्नता के काम गृहस्थ से किस प्रकार निभ सकते हैं ? मगर याद रक्खो, तुम्हारे हृदय से यदि झूठ, कपट, दगा आदि बुराइयाँ निकल जाएं तो गृहस्थी के काम करने का पाप भस्म होते देर नही लगेगी। ऐसा

नही होना चाहिए कि मुंह मे राम, बगल मे छुरी ! भीतर कुछ और बाहर कुछ । भीतर रसगुल्ले उडाओ और बाहर टुकडे बताओ ! इस प्रकार का कपटाचार नही निभ सकता। चाहे कोई साधु हो या गृहस्थ, ऐसे व्यवहार से किसी का निर्वाह नही हो सकता । हॉ, परमात्मा से कपट न करो तो सब पाप छूट जाएगे । कपट से परमात्मा नही मिलेगा । लोग यह तो समझते हैं कि बाहर बुरा व्यवहार करेगे तो लोग मुझे शैतान समझ लेगे, पर उन्हें यह भी समझना चाहिए कि परमात्मा से अपने बुरे व्यवहार को वे नही छिपा सकते । परमात्मा सभी कुछ जानता है । जब परमात्मा से नही डरते तो शैतानी प्रकट हो जाने से डरना व्यर्थ है ।

मित्रो ! विश्वास के बिना कार्य की सिद्धि नही होती। विश्वास आया कि कुछ और ही हाल हो जायगा। विश्वास के साथ प्रार्थना करो और प्रार्थना के प्रयोजन को समझो। बृहदारण्यक उपनिषद मे एक प्रार्थना है :—

असतो मा ज्योतिर्गमय ।
तमसो मा ज्योतिर्गमय ।
मृत्योर्मा अमृत गमय ।

अर्थात्—

(१) भगवान् ! तू मुझे असत्य से सत्य पर ला— अर्थात् मुझे असत्य मार्ग से हटाकर सत्य के मार्ग पर ला ।

(२) अज्ञान के अन्धकार से निकाल कर ज्ञान-ज्योति

मे ला।

(३) मृत्यु-ससार से निकाल कर अमर-पद (मोक्ष) पर ला।

पहले कही हुई 'आरुग्गबोहिलाभ' इत्यादि प्रार्थना मे जो वात कही गई है वही वात यहाँ भी कही गई है। चाहे कोई उपनिषद् के शब्दो द्वारा प्रार्थना करे। चाहे जैन शास्त्रो के शब्दो द्वारा, करना चाहिए उत्तम भाव से। उत्तम भाव से उत्तम कोटि की प्रार्थना करने पर अवश्य कल्याण होगा।

[ख]

श्रेयांस जिनन्द सुमर रे।

शरीर के निमित्त से होने वाले सम्बन्ध को तो सब लोग समझते हैं, जैसे-यह माता है, यह पिता है, इत्यादि। परन्तु ज्ञानी कहते है कि जैसे इन सम्बन्ध से भी परिचय हो इसी प्रकार आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध से भी परिचय प्राप्त करो। इसी के लिए ज्ञानीजन उपदेश देते हैं।

सासारिक सम्बन्धो को तो मनुष्य स्वय पहचान लेता है और नये सम्बन्ध जोड भी लेता है परन्तु आत्मा का परमात्मा के साथ सम्बन्ध जोडने के लिए ज्ञानियो का रहस्य-मय उपदेश होने पर भी किसी को प्रेरणा होती है और किसी को नही होती। कोई उस सम्बन्ध को पहचानते हैं और कोई नही पहचानते।

आत्मा के स्वरूप को सुनकर कई तो आश्चर्य करते हैं कि यह आत्मा क्या है ? कैसे शरीर मे आता है और कैसे चला जाता है ? आता और जाता दिखाई नही देता, फिर भी बीच मे ऐसे खेल कर जाता है, ऐसी क्रान्ति कर जाता है कि जिसका अनुभव करके दग रह जाना पड़ता है। एक एक आत्मा ऐसी क्रान्ति मचा देता है तो आत्मा मे यह शक्ति कहाँ से आती है ? और फिर कहाँ चली जाती है ? तात्पर्य यह है कि कई लोग इसी आश्चर्य मे पड जाते हैं। साधारण मनुष्य ही नही, ज्ञानी मुनि भी इसी आश्चर्य मे पड जाते हैं। कई लोग आश्चर्य के रूप मे आत्मा को जानकर आश्चर्य रूप ही कथन करते हैं। कई लोग आत्मा के खेलो को चकित भाव से सुनते हैं और सुनकर आश्चर्य मे निमग्न हो जाते हैं। इस प्रकार कहने-सुनने पर भी उनको आत्मा का यथार्थ स्वरूप जानना कठिन हो जाता है।

इससे अनुमान किया जा सकता है कि यह विषय कितना गहन है। इसी पर आज मैं थोड़े शब्द कहना चाहता हूँ। आप ध्यान से सुनें।

आत्मा का परमात्मा के साथ जो सम्बन्ध है, उसे समझकर साधारण लोग भी असाधारण-दिव्यरूप हो गये। फिर मैं क्यो निराश होऊँ ? मैं आशावादी हूँ, निराशावादी नही।

अभी बोले हुए भजन मे कहा है :—

श्रेयास जिनन्द सुमर रे।
सुमर रे सुमर रे सुमर रे,
श्रेयास जिनन्द सुमर रे।

जब किसी बात पर बहुत बल देना होता है, किसी काम के लिए तीव्र प्रेरणा करनी होती है तो उसके लिए शब्दो की पुनरावृत्ति की जाती है।

चेतन जान कल्याण करन को,
आन मिल्यो अवसर रे।

हे चेतन! तुझे कल्याण करने का अवसर मिला है। इसलिए कहते हैं परमात्मा को सुमर, सुमर, सुमर।

मित्रो! लोगो की आदत है कि वे भूतकाल की बात भूल जाते हैं। कभी कभी तो यह भी ठीक नही कहा जा सकता कि कल क्या क्या खाया था? मगर आप यदि एक दिन की चर्या भी याद रक्खें तो बहुत अनुभव बढ़ जाय। प्रतिक्रमण का आशय यही है कि अच्छी और बुरी बातो की सूची बनाई जाय। इसी को गणवरो ने ऐसी प्रभावशाली भाषा मे रचा है कि सुनने और कहने मे प्रिय लगता है। यह बात सबको समझने का यत्न करना चाहिए।

आप लोग यदि एक दिन की चर्या भी याद रक्खें कि कल मैंने क्या-क्या बुरा और भला काम किया है तो आपका अनुभव बढता जायगा। सम्भव है, अभी आपको अपने बाल्यकाल की कोई बात याद न हो, किन्तु आप धीरे-

धीरे अनुभव बढाएँ तो आपके बाल्यकाल के सब काम आपकी आँखो के सामने आ जाएँगे और अगर यह अनुभव बढाते चले गये तो गभ की और पूर्वजन्म की बातें भी आपको मालूम हो जाएँगी । अर्थात् जाति-स्मरण हो सकेगा। लेकिन आप लोग भविष्य की चिन्ता और वर्त्तमान के जजाल मे पडकर भूतकाल को भूल गये है ।

आप यह क्यो नही सोचते कि बचपन की बातें, जो आपके ऊपर ही बीती हैं आपको क्यो याद नही है ? कारण यही है कि उन पर दूसरी दूसरी बाते आती गईं और बीती बातें छूटती गईं । बचपन मे खेल के आगे आभूषण भी तुच्छ जान पडते थे, मगर ज्यो-ज्यो बडे हुए, उसे भूलते गये । इसी प्रकार अपने पूर्वजन्म को भी अपन भूल गये हैं । भूल तो गये, परन्तु जैसे मुँह नही दिखता तो उसे देखने के लिए काच की सहायता ली जाती है, इसी प्रकार ज्ञानीजन शास्त्र-रूपी दर्पण हमे दे गये हैं। उनकी सहायता से हम अपने भूतकाल को जान सकते हैं। उस भूतकाल को जानो और फिर सोचो कि वर्त्तमान मे कैसा अपूर्व अवसर मिला है। इस अपूर्व अवसर को ससार की बातो मे खो रहे हो, यही देखकर ज्ञानी पुरुष कहते हैं—

> चेतन जान कल्याण करन को,
> आन मिल्यो अवसर रे ।

कहा जा सकता है कि जब आत्मा अमर है तो यह

अमर है। मगर सिर्फ आत्मा ही अमर नही है वरन् पुद्गल भी अमर है। पुद्गल अर्थात् रूपी जड पदार्थ भी तीनो कालो मे विद्यमान रहता है। इस विषय पर आधुनिक विज्ञान ने पर्याप्त प्रकाश डाला है। मोमबत्ती जलाने के बाद आप समझेंगे कि उसका नाश हो गया, परन्तु वैज्ञानिक कहते हैं कि वास्तविक रूप से उसका नाश नही हुआ। इस बात को सिद्ध करने के लिए उन्होने दो यन्त्र बनाये हैं। वे यन्त्र जब लगा दिये जाते हैं तो उस जलती हुई मोमबत्ती के परमाणुओ को अपने भीतर खीच लेते हैं। इस दोनो यन्त्रो मे इकट्ठे हुए परमाणुओ को अगर जोड दिया जाय तो फिर मोमबत्ती बन जाती है। कहने का आशय यह है कि मोम-बत्ती का नाश नही हुआ, सिर्फ रूपान्तर हो गया। इसी प्रकार एक रजकण का भी नाश नही होता, केवल रूपातर होता है।

मित्रो ! जब रजकण का भी नाश नही होता तब आत्मा के शरीर छोड़ देने पर उसका नाश हो जाना क्या सम्भव है ?

'नही।'

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि आत्मा के समान अगर जड़ भी सत् अर्थात् त्रिकालस्थायी है तो आत्मा और जड मे भेद क्या रहा ? इस बात को समझने के लिए 'चित्' गुण पर विचार करना होगा। आत्मा 'चित्' अर्थात् ज्ञान

से युक्त है और जड अचित् है। उसमे ज्ञानगुण नही पाया जाता।

जो दूसरे साधनो के बिना ही जानता है, जो स्वयं प्रकाशमान है और जिससे दूसरे पदार्थ भी प्रकाशित होते हैं, उसे 'चित्' गुण कहते हैं। यह गुण आत्मा मे ही पाया जाता है। अथवा यो कह ले कि जिसमे 'चित्' गुण पाया जाता है, वही आत्मा है।

जैसे सूर्य स्वय प्रकाशित है और दूसरे को भी प्रकाश देता है इसी प्रकार आत्मा स्वय प्रकाशित होता हुआ दूसरों को भी प्रकाशित करता है। क्षेत्र और काल को नापने वाला आत्मा ही है। खम्भे को खम्भा नाम देने वाला आत्मा ही है। आत्मा ही जानता है कि खम्भे को कैसे बनाना चाहिए और उसका खम्भा नाम रखना चाहिए। मतलब यह है कि आत्मा स्वय प्रकाशित है और सारे ससार को प्रकाश देता है। ससार मे जितने भी नाम वाले पदार्थ हैं, उन सबके नाम आत्मा ने ही रक्खे हैं। किसी और पदार्थ मे यह शक्ति हो तो बताओ? है किसी में ऐसी शक्ति?

'नही!'

बस, जड और आत्मा मे यही अन्तर है कि जड़ की पहचान कराने वाला दूसरा है और आत्मा स्वय प्रकाशित है।

यहाँ तक सत् और चित् का अर्थ समझाया। अब 'आनन्द' के विषय मे कहता हूँ।

अवसर अपूर्व क्यो है ?

वास्तव मे आत्मा अविनाशी है और जैसे-जैसे आत्मा का अविनाशीपन समझ मे आता जायगा, अधिक जोश बढता जायगा। मगर यह बात अपने अनुभव से जानना और बात है तथा दूसरे के सुझाने से जानना और बात है।

आत्मा के अस्तित्व की खोज, जितनी भी हो, करनी चाहिए। जितनी भी खोज करेंगे उतनी ही शान्ति बढेगी और फिर किसी चीज की चाह नही रहेगी। फिर ससार के पदार्थ ही नही, त्रिलोक के सुख भी आपको तुच्छ प्रतीत होने लगेंगे।

आत्मा सच्चिदानन्द है। 'सच्चिदानन्द' शब्द सत्, चित् और आनन्द के योग से बना है।

जो भूत मे था, वर्त्तमान मे है और भविष्य मे होगा, तीनों कालों मे जिसका नाश नही हो सकता वह 'सत्' कहलाता है।

'सौ वर्ष बीते, यह निश्चित है ?

'हाँ।'

अठारह सौ वर्ष बीते, यह भी निश्चित है ?

'हाँ।'

तुमने अठारह सौ वर्ष देखे नही हैं, फिर किस आधार पर कहते हो कि अठारह सौ वर्ष बीते ? अनुभव से ही यह बात जानी जाती है कि ऐसे पल, घण्टों, वर्ष, दो वर्ष, पचास

वर्ष बीते ऐसे ही अठारह सौ वर्ष भी बीते होंगे। इसी तरह अनुभव से यह भी मानोगे कि लाख वर्ष और अनन्त-काल भी बीता है ?

'हाँ !'

इस बात को आप भलीभाँति समझ लें, इस उद्देश्य से जरा और स्पष्ट करता हूँ। आप नदी के मध्य भाग को देखकर उसके आदि और अन्तिम भाग का अनुभव करते हैं। समुद्र के एक किनारे को देखकर दूसरे किनारे का अन्दाज लगा लेते हैं। इसी प्रकार जब वर्त्तमान है तो भूत और भविष्य के होने का अनुमान कर लेना भी स्वाभाविक है और फिर आत्मा का वर्त्तमानकाल मे अस्तित्व है तो समझ लेना चाहिए कि भूतकाल मे भी उसका अस्तित्व रहा होगा और भविष्यकाल मे भी उसका अस्तित्व बना रहेगा। जैसे काल की आदि नही है, अन्त नही है, उसी प्रकार आत्मा की भी आदि नही है, अन्त नही है।

जवाहिरात कितने भी बडे हो परन्तु जौहरी से बढ़-कर नही हैं। मकान कितना भी बडा हो पर कारीगर से तो बड़ा नही है। एजिन कितना भी बडा हो फिर भी एजिन-निर्माता से बडा नही हो सकता। इसी प्रकार जिस आत्मा ने ऐसे-ऐसे कई शरीर त्यागे हैं वह तुच्छ कैसे हो सकता है ?

इस विवेचन से आप समझ गये होगे कि आत्मा

अमर है। मगर सिर्फ आत्मा ही अमर नही है वरन् पुद्गल भी अमर है। पुद्गल अर्थात् रूपी जड पदार्थ भी तीनो कालो मे विद्यमान रहता है। इस विषय पर आधुनिक विज्ञान ने पर्याप्त प्रकाश डाला है। मोमबत्ती जलाने के बाद आप समझेंगे कि उसका नाश हो गया, परन्तु वैज्ञानिक कहते हैं कि वास्तविक रूप से उसका नाश नही हुआ। इस बात को सिद्ध करने के लिए उन्होने दो यन्त्र बनाये हैं। वे यन्त्र जब लगा दिये जाते हैं तो उस जलती हुई मोमबत्ती के परमाणुओ को अपने भीतर खीच लेते हैं। इस दोनो यन्त्रो मे इकट्ठे हुए परमाणुओ को अगर जोड दिया जाय तो फिर मोमबत्ती बन जाती है। कहने का आशय यह है कि मोमबत्ती का नाश नही हुआ, सिर्फ रूपान्तर हो गया। इसी प्रकार एक रजकण का भी नाश नही होता, केवल रूपातर होता है।

मित्रो ! जब रजकण का भी नाश नही होता तब आत्मा के शरीर छोड़ देने पर उसका नाश हो जाना क्या सम्भव है ?

'नही।'

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि आत्मा के समान अगर जड़ भी सत् अर्थात् त्रिकालस्थायी है तो आत्मा और जड़ मे भेद क्या रहा ? इस बात को समझने के लिए 'चित्' गुण पर विचार करना होगा। आत्मा 'चित्' अर्थात् ज्ञान

से युक्त है और जड़ अचित् है। उसमे ज्ञानगुण नही पाया जाता।

जो दूसरे साधनो के बिना ही जानता है, जो स्वय प्रकाशमान है और जिससे दूसरे पदार्थ भी प्रकाशित होते हैं, उसे 'चित्' गुण कहते हैं। यह गुण आत्मा मे ही पाया जाता है। अथवा यो कह लें कि जिसमे 'चित्' गुण पाया जाता है, वही आत्मा है।

जैसे सूर्य स्वय प्रकाशित है और दूसरे को भी प्रकाश देता है इसी प्रकार आत्मा स्वय प्रकाशित होता हुआ दूसरों को भी प्रकाशित करता है। क्षेत्र और काल को नापने वाला आत्मा ही है। खम्भे को खम्भा नाम देने वाला आत्मा ही है। आत्मा ही जानता है कि खम्भे को कैसे बनाना चाहिए और उसका खम्भा नाम रखना चाहिए। मतलब यह है कि आत्मा स्वय प्रकाशित है और सारे ससार को प्रकाश देता है। ससार मे जितने भी नाम वाले पदार्थ हैं, उन सबके नाम आत्मा ने ही रक्खे हैं। किसी और पदार्थ मे यह शक्ति हो तो बताओ? है किसी में ऐसी शक्ति?

'नही!'

बस, जड़ और आत्मा मे यही अन्तर है कि जड की पहचान कराने वाला दूसरा है और आत्मा स्वय प्रकाशित है।

यहाँ तक सत् और चित् का अर्थ समझाया। अब 'आनन्द' के विषय मे कहता हूँ।

आत्मा स्वय आनन्दमय है। देश, काल और वस्तु से प्रतीत होने वाला आनन्द यहाँ नही लिया गया है। बल्कि आत्मा स्वय आनन्दरूप है। आनन्द आत्मा का ही एक स्वाभाविक गुण है, जैसे 'चित्' गुण है।

आदमी गहरी नीद मे सोकर उठता है तो यही कहता है—'आज बडे आनन्द मे सोया! आज बड़े मजे की नीद आई।' पर उससे पूछो कि क्या आनन्द था तुमको? खाते थे या पीते थे? क्या आनन्द था उस सोने मे?

मित्रो! यह कथन आत्मा के आनन्द का एक छोटा-सा नमूना है। यह अनुभव सभी को होता है— सभी पर यह घटना घटती है, परन्तु जानने और जानकर विकास करने का समय मिलने पर भी आप न मालूम किस गहरी नीद मे पडे हैं। आप बाह्य वस्तुओ के आनन्द मे मग्न होकर आत्मा मे जो स्वत आनन्द है, उसे भूले बैठे हैं। जरा सोचो तो सही कि नीद मे न आप खाते थे, न पीते थे, फिर क्या आनन्द आया? यह प्रकृति आपको जरा-जरा सी बात सिखाती है, फिर भी आपकी समझ मे नही आता कि आप इन्द्रिय विकारो को जीत करके आत्मा देखें तो कितने आनद की प्राप्ति होगी। भाइयो! अपने ज्ञान को उस ओर लगाओ। यह उपदेश इसीलिए है।

निद्रा मे आनन्द यह था कि मन मे एकाग्रता थी। जब मन के एकाग्र होने से निद्रा मे भी आनन्द आया तो जागृत

अवस्था मे मन को एक जगह करके आत्मा पर विचार करो तो कितना आनन्द होगा ?

आप यह न सोचें कि उस आनन्द को हम ससारी जीव कैसे प्राप्त कर सकते है ? कैसे हमारा कल्याण हो सकता है ? ज्ञानी पुरुषो ने कल्याण की एक सीमा कर दी है। आपको श्वास और उच्छ्वास तो आता है न ?

हाँ !'

श्वास महाप्राण है और इसी से आप जीवित हैं। इस विषय मे एक दृष्टात लीजिए। एक बार श्वास और इद्रियो मे लडाई हो गई। इन्द्रियाँ कहने लगी—हम तो कुछ न कुछ काम करती हैं, पर यह श्वास क्या काम करता है ? इन्द्रियाँ स्त्री और श्वास पुरुष है। श्वास ने विचार किया—इन्द्रियो से लडना-झगडना ठीक नही है। उसने इन्द्रियो से कहा—तुम लडो मत। मैं चला जाता हूँ। इतना कह कर श्वास जाने लगा कि सब इन्द्रियाँ तन गई। आँखें फटकने लगी, कान बहरे होने लगे, जीभ अकड़ने लगी, हाथ-पाँव ऐंठने लगे। सबकी हालत बिगडने लगी। तब इन्द्रियो ने श्वास को रोक कर कहा—हम मे से कोई न हो तो काम चल सकता है, परन्तु तुम्हारे बिना काम नही चल सकता।

तात्पर्य यह है कि जीवन के सब खेल श्वास पर ही निर्भर हैं। जब तक श्वास है तभी तक आशा है। २ की साधना करके योगी लोग अपूर्व और अद्भुत सि

आत्मा स्वयं आनन्दमय है। देश, काल और वस्तु से प्रतीत होने वाला आनन्द यहाँ नही लिया गया है। बल्कि आत्मा स्वय आनन्दरूप है। आनन्द आत्मा का ही एक स्वाभाविक गुण है, जैसे 'चित्' गुण है।

आदमी गहरी नीद मे सोकर उठता है तो यही कहता है – 'आज बडे आनन्द में सोया! आज बडे मजे की नीद आई।' पर उससे पूछो कि क्या आनन्द था तुमको? खाते थे या पीते थे? क्या आनन्द था उस सोने मे?

मित्रो! यह कथन आत्मा के आनन्द का एक छोटा-सा नमूना है। यह अनुभव सभी को होता है— सभी पर यह घटना घटती है, परन्तु जानने और जानकर विकास करने का समय मिलने पर भी आप न मालूम किस गहरी नीद मे पडे है। आप बाह्य वस्तुओं के आनन्द मे मग्न होकर आत्मा मे जो स्वत आनन्द है, उसे भूले बैठे है। जरा सोचो तो सही कि नीद मे न आप खाते थे, न पीते थे, फिर क्या आनन्द आया? यह प्रकृति आपको जरा-जरा सी बात सिखाती है, फिर भी आपकी समझ मे नही आता कि आप इन्द्रिय विकारो को जीत करके आत्मा देखे तो कितने आनद की प्राप्ति होगी। भाइयो! अपने ज्ञान को उस ओर लगाओ। यह उपदेश इसीलिए है।

निद्रा मे आनन्द यह था कि मन मे एकाग्रता थी। जब मन के एकाग्र होने से निद्रा में भी आनन्द आया तो जागृत

अवस्था मे मन को एक जगह करके आत्मा पर विचार करो तो कितना आनन्द होगा ?

आप यह न सोचे कि उस आनन्द को हम ससारी जीव कैसे प्राप्त कर सकते है ? कैसे हमारा कल्याण हो सकता है ? ज्ञानी पुरुषो ने कल्याण की एक सीमा कर दी है। आपको श्वास और उच्छ्वास तो आता है न ?

हाँ !'

श्वास महाप्राण है और इसी से आप जीवित हैं। इस विषय मे एक दृष्टात लीजिए। एक बार श्वास और इद्रियो मे लड़ाई हो गई। इन्द्रियाँ कहने लगी—हम तो कुछ न कुछ काम करती हैं, पर यह श्वास क्या काम करता है ? इन्द्रियाँ स्त्री और श्वास पुरुष है। श्वास ने विचार किया—इन्द्रियो से लडना-झगडना ठीक नही है। उसने इन्द्रियो से कहा—तुम लडो मत। मैं चला जाता हूँ। इतना कह कर श्वास जाने लगा कि सब इन्द्रियाँ तन गई। आँखे फटकने लगी, कान बहरे होने लगे, जीभ अकड़ने लगी, हाथ-पाँव ऐठने लगे। सबकी हालत बिगडने लगी। तब इन्द्रियो ने श्वास को रोक कर कहा—हम मे से कोई न हो तो काम चल सकता है, परन्तु तुम्हारे बिना काम नही चल सकता।

तात्पर्य यह है कि जीवन के सब खेल श्वास पर ही निर्भर हैं। जब तक श्वास है तभी तक आशा है। श्वास की साधना करके योगी लोग अपूर्व और अद्भुत सिद्धियाँ

प्राप्त कर लेते हैं। वे हमें सूचित करते हैं कि श्वास की महिमा ऐसी है। इसलिए इसे नीच काम मे मत लगाओ। इस श्वास के आते या जाते समय, अर्थ के साथ 'अर्हं' या किसी भी परमात्मा के नाम का स्मरण करो। इस श्वास को विकार से अलग दूर रख कर परमात्मा का ध्यान आने दो।

मित्रो ! अधिक न कर सको तो कम से कम इतना तो करो कि जब तुम निकम्मे होओ अर्थात् जब कोई काम न हो तब परमात्मा का स्मरण करो। मतलब यह है कि श्वास में भगवान् के भजन का विलास होना चाहिए। भगवान् के स्मरण में विश्वास के साथ गहरा प्रेम होना चाहिए। ऐसा न हो कि बोलते हो भगवान् का नाम और आ रहे हो नीद के झोके। जिसके हृदय में प्रेम जागृत होगा उसे नीद नही आ सकती। नीद प्रेमी से तब तक दूर रहती है जब तक प्रेमपात्र मिल न जाय। प्रेम के साथ परमात्मा का जाप करो तो आप जैसी चाहेंगे वैसी ही जागृति हृदय में उत्पन्न हो जायगी। शास्त्रकारो ने स्वय अनुभव करके यह बात कही है। आप अभ्यास करके इस कथन की परीक्षा करो। जो स्वय अभ्यास करके परीक्षा नही करता और पहले ही अश्रद्धा या बुराई करता है, उसका रोग असाध्य है। उसे किस प्रकार विश्वास दिलाया जा सकता है ?

नाम के स्मरण का क्या प्रताप है, यह बात शास्त्रों

मे बताई है :—

कैसी भी गूढ बात क्यों न हो, ईश्वर के स्मरण मे तल्लीन हो जाओ तो न जाने किस प्रकार वह सरल हो जायगी । मैंने इसका अनुभव किया है और कई बार अपने अनुभव का जिक्र अपने शिष्यों से भी किया है कि समाधि में किसी भी गूढ विषय को न मालूम कौन समझा जाता है ! यह अनुभव सभी के लिए मार्ग-दर्शक बन सकता है और ऐसा अनुभव प्राप्त करना कठिन भी नही है ! मगर प्रथम तो आपकी इस ओर रुचि भी नही है, दूसरे जजालों के कारण आपको फुर्सत नही मिलती। लेकिन इस सत्य को सदैव स्मरण रक्खो कि अगर एकाग्र ध्यान लगाओगे तो आपकी गति निराली हो जायगी । इसमे जितना परिश्रम करोगे उतना ही कल्याण होगा ।

ससार के जजालो को काटने के लिए महापुरुषों के चारित्र का आश्रय लेना चाहिए । जो जिस सत्य पर मुग्ध हो जाता है, वह उसके लिए कष्ट आने पर भी विरत नही होता— कष्ट आने पर उसका प्रेम बढता ही जाता है, घटता नही है । वह उसके लिए दिन-दिन प्रिय होता जाता है, अप्रिय नही हो सकता । सत्य से प्रेम रखने वाले को सकट फूल से लगते हैं । वह समझता है कि यह सकट सकट नही हैं । यह मेरे प्रेम की धार को तेज बनाने के लिए शाण हैं । इनसे मेरा प्रेम तीखा बनता है ।

प्राप्त कर लेते हैं। वे हमे सूचित करते हैं कि श्वास की महिमा ऐसी है। इसलिए इसे नीच काम मे मत लगाओ। इस श्वास के आते या जाते समय, अर्थ के साथ 'अर्हं' या किसी भी परमात्मा के नाम का स्मरण करो। इस श्वास को विकार से अलग दूर रख कर परमात्मा का ध्यान आने दो।

मित्रो ! अधिक न कर सको तो कम से कम इतना तो करो कि जब तुम निकम्मे होओ अर्थात् जब कोई काम न हो तब परमात्मा का स्मरण करो। मतलब यह है कि श्वास में भगवान् के भजन का विलास होना चाहिए। भगवान् के स्मरण मे विश्वास के साथ गहरा प्रेम होना चाहिए। ऐसा न हो कि बोलते हो भगवान् का नाम और आ रहे हो नीद के झोके। जिसके हृदय में प्रेम जागृत होगा उसे नीद नही आ सकती। नीद प्रेमी से तब तक दूर रहती है जब तक प्रेमपात्र मिल न जाय। प्रेम के साथ परमात्मा का जाप करो तो आप जैसी चाहेगे वैसी ही जागृति हृदय में उत्पन्न हो जायगी। शास्त्रकारो ने स्वय अनुभव करके यह बात कही है। आप अभ्यास करके इस कथन की परीक्षा करो। जो स्वय अभ्यास करके परीक्षा नही करता और पहले ही अश्रद्धा या बुराई करता है, उसका रोग असाध्य है। उसे किस प्रकार विश्वास दिलाया जा सकता है ?

नाम के स्मरण का क्या प्रताप है, यह बात शास्त्रों

१२-श्री वासुपूज्यजी

प्रार्थना ।

प्रणमू वासुपूज्य जिन नायक, सदा सहायक तू मेरो ।
विषम वाट घाट भयथानक, परमेसर शरणो तेरो ॥१॥

खल दल प्रबल दुष्ट अति दारुण, जो चौतरफ दिये घेरो ।
तो पिण कृपा तुम्हारी प्रभुजी, अरियन होय प्रगटे चेरो ॥२॥

विकट पहार उजाड बीच कोई, चोर कुपात्र करे हेरो ।
तिण बिरिया करिया तो सुमरण, कोई न छीन सके डेरो ॥३॥

राजा बादशाह जो कोई कोपे, अति तकरार करे छेरो ।
तदपि तू अनुकूल होय तो, छिन मे छूट जाय फेरो ॥४॥

राक्षस भूत पिशाच डाकिनी, साकिनी भय न आवे नेरो ।
दृष्ट मुष्ट छल छिद्र न लागे, प्रभु तुम नाम भज्या गहरो ॥५॥

विस्फोटक कुष्टादिक सकट, रोग असाध्य मिटे सगरो ।
विष प्यालो अमृत होय जगमे, जो विश्वास जिनन्द केरो ॥६॥

मात 'जया' 'वसु' देव के नन्दन, तत्त्व जथारथ बुध प्रेरो ।
वे कर जोरि 'विनयचन्द' विनवे, वेग मिटे मुझ भव फेरो ॥७॥

तात्पर्य यह है कि आनन्द नामक गुण आत्मा मे स्व-भाव से ही विद्यमान है, किन्तु उसका अनुभव करने और उसे प्रकट करने के लिए परमात्मा से प्रीति जोडनी चाहिए—आत्मा का परिचय प्राप्त करना चाहिए। अभी आप जिस आनन्द का अनुभव करते हैं, वह उसी आत्मिक आनन्द का विकार है। विकार है, इसलिए यह तुच्छ है। आप इस विकृत आनन्द से ऊपर उठने का प्रयत्न कीजिए। तभी आपको शुद्ध आनन्द की उपलब्धि होगी।

इस प्रकार सत् आप है, चित् आप हैं, आनन्द आपका ही धर्म है। आप स्वय 'सच्चिदानन्द' हैं। इस 'सच्चिदानन्द' स्वरूप को पूर्णरूप से प्रकाश मे लाना और इसमें रहे हुए समस्त विकारो को दूर करना ही मनुष्य की सर्वश्रेष्ठ साधना होनी चाहिए। इस साधना के लिए मनुष्य-जन्म से अधिक अनुकूल और कोई जन्म नही है। मनुष्य जन्म प्राप्त करके जो महाभाग इस साधना मे लग जाते हैं उन्हे सिद्धि प्राप्त होती है और वे अनन्त, अव्याबाध, असीम तथा अक्षय आनन्द को प्राप्त करते हैं।

इस मार्ग मे चल कर यह आत्मा नाना प्रकार की आधियों और व्याधियो से पीडित हो रहा है। आत्मा ससार के काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि के सतापो मे तपा हुआ है। आत्मा को शात रखना कठिन हो रहा है। परन्तु यह दु.ख तभी तक है जब तक तुझसे भेंट नही हुई है। तेरी भेट होने पर, तेरी प्रार्थना करने पर यह सब दुख मेरे अनुकूल हो जाएँगे—मेरे सहायक बन जाएँगे।

खल दल प्रबल दुष्ट अति दारुण,
जो चौतरफ दिये घेरो।
तदपि कृपा तुम्हारी प्रभुजी,
अरि-यन फिर प्रकटे चेरो ।।

प्रभु ! मेरे जो वैरी हैं वह तभी तक वैरी है, जब तक तेरी सहायता न मिले। तेरी सहायता मिलते ही वैरी भी वैरभाव छोड़कर मेरे मित्र बन जाएगे।

परमात्मा से यह प्रार्थना करनी चाहिए कि मेरे भीतर जो विषमता है तथा मेरे लिए जो दूसरे विषम हैं, वह और हम एक हो जाएँ। भक्त लोग परमात्मा से यही प्रार्थना करते हैं कि जगत् को सम-रूप कर दे। वे रोटी के लिए प्रार्थना नही करते हैं। वे कहते हैं मुझे कितने ही कष्ट क्यो न हो, मैं उन कष्टो को हटाने के लिए प्रार्थना नही करता। मैं जगत् की भलाई के लिए प्रार्थना करता हूँ।

चोर और राजा बदल कर जब कष्ट देते हैं तो ज्ञानी

ईश्वर की प्रार्थना करना मनुष्य का प्रधान कर्त्तव्य है। ऐसे तो हर समय रुचि के अनुसार प्रार्थना किया करते हैं, किन्तु भावपूर्वक ईश्वर की प्रार्थना करना दूसरी बात है। प्रार्थना का अर्थ है— याचना करना। सासारिक कार्यों मे लगा हुआ मनुष्य दूसरे से प्रार्थना-याचना करता है, परन्तु उस प्रार्थना और ईश्वर की प्रार्थना मे क्या अन्तर है, यह वात आप लोगो को समझनी चाहिए।

सासारिक पदार्थों की प्रार्थना विषय-वासना के लिए, आप वड़े वनकर दूसरो को छोटा बनाने के लिए तथा धन, पुत्र, परिवार, राज्य, मानसन्मान आदि पाने के लिए की जाती है। अदालत सम्वन्धी काम अटकने पर वकील की, व्यापार के काम मे सेठ-साहूकार की. और वीमारी होने पर वैद्य की प्रार्थना करने की परम्परा चल रही है। पर इन कार्यों का रूप वदल कर परमात्मा की प्रार्थना करना, उसकी प्रार्थना में अपनी वृत्तियो को लगा देना, यह वात महात्मा वतलाते हैं।

अभी मैंने जो प्रार्थना वोली है, उसके तात्पर्य पर ध्यान दीजिए—

प्रणमु वासुपूज्य जिननायक,
सदा सहायक तू मेरो।
विपमी वाट घाट भयधानक,
परमेसर सरणो तेरो॥

हे परमात्मा ! यह सासार वड़ा विपम मार्ग है।

की माला फेरने से १०) रुपये प्रतिदिन मिलेंगे तो बहुत लोग माला फेरने के लिए तैयार हो जाएँगे। सोचेगे—चलो, नौकरी, आदि व्यापार की झझट मिटी। ऐसे व्यक्तियो को प्रार्थना का क्या रहस्य मालूम हो सकता है ?

शास्त्रो मे ऐसी प्रार्थना नही है। प्राचीन काल से जो शुद्ध प्रार्थना चली आती है और जैनशास्त्र मे जिसका उल्लेख हैं, उसका तात्पर्य समझो। उसका कतिपय अश इस प्रकार है :—

'धम्मसारहीण, धम्मवरचाउरतचक्कवट्टीण, जिणाण, जावयाण, तिन्वाणं, तारयाण, बुद्धाण, बोहयाण, मुत्ताणं, मोयगाण ।'

अर्थात्–हे प्रभो ! आप धर्म के सारथी हो, धर्म के चक्रवर्त्ती हो। आप जिन होकर दूसरो को भी जिन बनाने वाले हैं। स्वय ससार सागर से तिरे हैं और दूसरो को तिराने वाले हैं। आप स्वय बुद्ध होकर नही बैठ गये हैं, बल्कि आपने ससार को बुद्ध होने का उपदेश भी दिया है। आप सब पापो से मुक्त होकर सँसार का पापमुक्त करने मे समर्थ हुए है।

मित्रो ! परमात्मा को यहाँ धर्म-सारथी कहा है। समझना चाहिए कि सारथी किसे कहते हैं और सारथी कैसा होता है ? कृष्ण, अर्जुन के सारथी थे। अगर अर्जुन को कृष्ण सारथी न मिले होते तो उसकी विजय त्रिकाल मे भी सभव नही थी। कृष्ण के सारथी होने पर भी अर्जुन डर गये—

पुरुष विचार करता है— यह कष्ट नही दे रहे हैं बल्कि परमात्मा से प्रार्थना करने की प्रेरणा कर रहे हैं। यह हमे समझा रहे है कि अपनी कमी को दूर करो। जिस प्रकार शिक्षक लडको को विद्या सिखाने के लिए छड़ी मारता है, इसी प्रकार ज्ञानीपुरुष ससार के विरुद्ध व्यवहार को शिक्षा के लिए छडी समझते हैं। वे सोचते हैं— यह विरुद्ध लोग हमको सिखलाते हैं कि परमात्मा की प्रार्थना करो, जिससे यह दुख दुख न रहकर शान्तिदाता बन जाएँ।

मैं पहले कह चुका हूँ कि प्रार्थना उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ के भेद से तीन प्रकार की होती है। आजकल लोग प्राय. कनिष्ठ प्रार्थना करते है। कनिष्ठ प्रार्थना करने का आमन्त्रण दिया जाय तो अभी सब प्रार्थना करने को तैयार हो जाएं।

अगर मैं किसी को कहूँ कि आओ, मैं तुमको ऐसा मन्त्र सिखाता हूँ कि जिससे तुम्हारा वैरी तत्काल मर जायगा। तो सब लोग प्रसन्न होकर भागे आएँगे और कहेगे—यह तो बड़ी अच्छी बात है। बहिने कहगी-घर मे सासू से झगडा चलता ही रहता है। उसे मिटाने मे ईश्वरीय सहायता मिल गई तो और चाहिए ही क्या ? इस प्रकार का मन्त्र सीख कर प्रार्थना करने को सब तैयार हो जाएँगे, यह प्रार्थना नही, अज्ञान है।

इसी प्रकार अगर यह कहा जाय कि अमुक के नाम

जैनशास्त्रो मे कहा है —

आइच्चेसु अहियं पयासयरा

तू सब लोगो को तत्त्व-कार्य मे प्रवृत्त करता है। मेरा सुभीता तू ही है। इस सूर्य के प्रकाश मे मैं अनन्तकाल से हूँ परन्तु मेरे हृदय का अन्धकार मिटा नही। इसलिए मेरे भाव से तू ही सूर्य है।

यह प्रार्थना अपने लिए करना चाहिए या सारे संसार के लिए करना चाहिए? जिसे ईश्वर प्रिय है वह तो सारे ससार के लिए ही प्रार्थना करेगा और जो केवल अपने लिए ही ऐसी प्रार्थना करता है, समझ लीजिए उसने ईश्वर को अपने घर का बना लिया है।

मैंने वेद का जो मन्त्र सुनाया है उसमे यह प्रार्थना की गई है —

(१) हे ईश्वर! ससार के सारे पाप कर्म को मुझसे हटाकर मुझे उससे अलग कर।

(२) जो कल्याणकारी काम हैं वे मेरे सन्मुख हो ऐसी कृपा तू कर।

(३) हमे यह सद्बुद्धि दे कि हम यह प्रार्थना करें कि सारे ससार का कल्याण हो।

मित्रो! आप लोग गन्दे कामो के लिए प्रार्थना करते है, विश्वव्यापक भाव से नही करते। प्रार्थना सम्पूर्ण जगत् के कल्याण के वास्ते करना चाहिए। यह समझना गलत है कि

ववरा गये । तब कृष्ण ने कहा—

> क्लैब्य मा स्म गम पार्थ, नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
> क्षुद्र हृदयदौर्बल्य, त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ! ॥
>
> —गीता अ० २, श्लो० ३ ।

पार्थ, क्यो हीजडापन धारण करता है ? तुझे ऐसा करना शोभा नही देता । तू हृदय की इस तुच्छ दुर्बलता को छोड़ और युद्ध के लिए तैयार हो जा ।

भाइयो ! आपको परमेश्वर सरीखा सारथी मिला है । वह आपसे कुछ लेता तो नही है ! फिर क्यो कायरता दिखलाते हो ? विश्वास रक्खो कि हमारा धर्म-सारथी इतना सामर्थ्यशाली है कि कर्मशत्रुओ के साथ किये जाने वाले युद्ध में हम कदापि पराजित नही हो सकते । हम अपने इन शत्रुओ पर विजय प्राप्त करेंगे और सब भाइयो से—प्राणीमात्र से—वैर-भाव हटाकर अवश्य मैत्री कायम करेंगे ।

वैदिक मार्ग मे भी ऐसी ही प्रार्थना की जाती है । यदपि वेदो मे वहुत-सी वाते क्लिष्ट हैं, तथापि हम उन बातो को छोडकर केवल प्रार्थना के विषय मे कहे गये मन्त्रो पर ही ध्यान देते हैं । वेद मे कहा है—

> ॐ विश्वानि देवत सवितुर्

यह मन्त्र ऋग्वेद मे प्रार्थना के लिए आया है । यहा जो 'सवितृ' शब्द आया है उसकी व्याख्या इस प्रकार है—

'सवितृ' सूर्य को भी कहते हैं और परमात्मा को भी ।

१३-श्री विमलनाथजी

प्रार्थना ।

विमल जिनेश्वर सेविये, थारी बुध निर्मल हो जाय रे ।
जीवा ! विषय-विकार विसार ने, तू मोहनी कर्म खपाय रे ।।
जीवा विमल जिनेश्वर सेविये ।।१।।

सूक्ष्म साधारण पणे, प्रत्येक वनस्पति मांय रे ।
जीवा ! छेदन भेदन ते सही, मर-मर उपज्यो तिण काय रे ।।२।।

काल अनत तिहा भम्यो, तेहना दु ख आगमथी सभाल रे ।
पृथ्वी अप तेउ वायु मे, रह्यो असाख्याशख्य काल रे ।।३।।

एकेन्द्री सूँ बेइन्द्री थयो, पुन्याई अनन्ती वृद्धि रे ।
जीवा ! सन्नी पचेन्द्री लगे पुन्य बध्या, अनतानत प्रसिद्ध रे ।।४।।

देव नरक तिरयचं मे, अथवा मानव भव बीच रे ।
जीवा ! दीनपणे दु ख भोगव्या, इण चारो ही गति बीच रे ।।५।।

अब के उत्तम कुल मिल्यो, भेट्या उत्तम गुरु साध रे ।
सुण जिन वचन सनेह से, समकित व्रत शुद्ध आराध रे ।।३।।

पृथ्वीपति 'कृतभानु' को, 'सामा' राणी को कुमार रे ।
जीवा ! 'विनयचद' कहे ते प्रभु, सिर सेहरो हिवड़ायो हार रे ।।७।।

यह मेरा वैरी है, इसके लिए मैं प्रार्थना क्यों करूं ? बल्कि वैरी के लिए सबसे पहले प्रार्थना करनी चाहिए कि वह पाप-भावना त्याग दे। जब वैरी अपनी पाप-भावना त्याग देगा तब वह भी आपका मित्र हो जायगा। प्रार्थना मे ऐसी शक्ति है कि पापी से पापी भी अपना पाप छोड सकता है।

प्रार्थना करने के लिए अन्तःकरण स्वच्छ और विचार विशाल होने चाहिए। यह आवश्यक नही कि वेद के शब्दो से ही या जैनशास्त्र के शब्दो से ही प्रार्थना की जाय। मूल्य शब्दों का नही, अर्थ का होता है। जो विशाल भाव से और निर्मल अन्तःकरण से ईश्वर की प्रार्थना करते हैं, उनका कल्याण अवश्य होता है।

है। शास्त्र मे इस विषय पर बहुत गम्भीर व्याख्या की है, परन्तु इतना समय नही है कि वह सब सुना सकूं। फिर भी दिग्दर्शन के लिए कुछ कहता हूँ।

निगोद वनस्पति की आयु २५६ आवलिका की होती है। एक मुहूर्त्त मे इन जीवो को ६५,५३६ जन्म-मरण करने पडते है। इनकी आयु इतनी कम होती है कि जितने समय मे हम एक श्वास लेते हैं, उतने समय मे इनकी १७॥ बार मृत्यु हो जाती है। यह जीव अनन्तकाल तक इसी प्रकार मरते-जीते रहते हैं।

अनन्तकाल वनस्पतिकाय मे व्यतीत करने के बाद, अन्य एकेन्द्रिय जीवो की योनि पाई तो वहा भी लम्बा काल बिताना पडता है। एकेन्द्रिय अवस्था के इन जन्म मरण के दु खो को अनन्तकाल तक भोगते रहे फिर भी वर्त्तमान के थोडे से विषयभोगो मे फसकर भविष्य का विचार नही करते। भविष्य की मानो कोई चिन्ता ही नही है।

मित्रो ! विमल भगवान् से प्रार्थना करो कि— हे प्रभु ! तू ही इसका ज्ञान दे कि मैं अपने लम्बे अतीत की कहानी को याद कर सकूं और फिर उससे शिक्षा लेकर भविष्य को उज्ज्वल बनाने का उपाय कर सकूं। भगवन् ! मैं अब तेरी ही सेवा मे हूँ। तू ही मेरे हृदय मे यह विचार उत्पन्न कर।

विमल जिनेश्वर वन्दिये।

जिसकी दृष्टि भूतकाल पर नही है उसके लिए अपना भविष्य सुधारना कठिन है। जो भूत को भूला हुआ है, वह भविष्य को भी भूल जाता है। जो भूत पर ध्यान नही देता और केवल वर्त्तमान मे ही मस्त रहता है, उसमे और पशु मे क्या अन्तर है ?

पशु को यह ज्ञान नही है कि इस घास के लिए मैंने कितना कष्ट उठाया है। फिर मेरे आगे जो पचास गट्ठे घास पड़ा है, इसे एकदम क्यो कुचलकर खराब कर डालूँ ? उन्हें यह भी भान नही रहता कि मैं कितना खाऊँ ! प्राय: पशु अपने इस अज्ञान के कारण इतना अधिक खा जाते हैं कि उनका पेट फूल जाता है और वे मर जाते हैं। उनमे यह शक्ति नही कि वे अपनी भूतदशा को देखकर अपने कल्याण-मार्ग का विचार करें। मगर पशु तो आखिर पशु है बहुत-से मनुष्य भी भूतकाल पर विचार नही करते और न भविष्य की चिन्ता करते हैं। यह बड़े दु.ख की बात है।

ज्ञानी-जनो का कथन है कि अपने भूतकाल पर दृष्टि डालो। भूतकाल मे हम कहाँ-कहाँ रहे हैं, इस बात पर विचार करो तो हृदय मे जागृति हुए बिना न रहेगी।

सूक्ष्म साधारण पणे, प्रत्येक वनस्पति माँहि, रे जीवा,
छेदन भेदन तें सह्या ॥

यह चिदानन्द सूक्ष्म, साधारण वनस्पति मे उत्पन्न हुआ

विजय प्राप्त करनी चाहिए। विषय क्या है और कषाय क्या है और इनके जीतने का अर्थ क्या है ? इन सब बातो पर प्रकाश डालने के लिए बहुत समय चाहिए। तथापि अभी थोडे मे ही समझाने का प्रयत्न करता हूँ।

विषय और कषाय का आपस मे सम्बन्ध है। एक के बिना दूसरा नही रह सकता। इन्द्रियो के भोग विषय कहलाते हैं और क्रोध लोभ आदि कषाय कहलाते हैं। इन्द्रियो के भोग का अर्थ आख से किसी को देख लेना अथवा कान से कोई शब्द सुन लेना नही है। आँख देखने और कान सुनने के लिए ही हैं। पर देखना और सुनना विषय उसी दशा मे बनता है जब देखने और सुनने के साथ कषाय का मेल होता है। आंखो से देखकर जब कषाय करता है अर्थात् किसी को चाहता है और किसी से घृणा करता है, तभी देखना सुनना विषयभोग कहलाता है। कषाय को ही राग-द्वेष कहते हैं। इस राग द्वेष को उत्पन्न न होने देना, विषय मे न पडने देना ही इन्द्रियो को जीतना है।

इन्द्रियो को न जीतने का फल क्या होता है, इस बात को भलिभाति समझ लीजिए। दीपक पर पतग गिरता है क्योकि उसकी लौ से पतग को मोह होता है। यद्यपि पतग को वह आंखे जिनसे वह देखता है, पुण्य से मिली हैं फिर भी वह उन आँखो से दीपक की चमक देखकर उस पर गिरता और मर जाता है। पुण्य से मिली हुई उसकी आँखें

विमल जिनेश्वर सेविये, थारी बुध निर्मल हो जाय रे जीवा ।
विषय-विकार निवारने, तूं तो मोहनीकर्म खपाय रे जीवा ।।१।।

विमलनाथ भगवान् का स्मरण करके विषय-कषाय मे मत पड़ो । इनमे पडने के बाद पता ही नही चलता कि कहाँ से कहाँ जा पहुंचे । असख्य-असख्य जन्म-मरण करके एकेन्द्रिय से द्वीन्द्रिय हुआ और फिर क्रमश पुण्य की वृद्धि होने पर अब पचेन्द्रिय पर्याय प्राप्त हुई है। अपनी इस हालत पर विचार कर । विषय कषाय की ओर ध्यान न दे ।

किसी की आँख बड़ी होती है और किसी की छोटी, किसी का ललाट बड़ा होता है और किसी का छोटा । यह अवयव बडे होते हैं सो हाथ दो हाथ तो बड़े होते नही हैं। वडे और छोटो मे थोडा-सा अन्तर होता है फिर भी इनके वडे होने मे पुण्यवानी का डौल माना जाता है । कहा भी है—

यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति ।

अर्थात्—आकृति मे गुणो का निवास है । जिसकी आकृति सुन्दर है उसमे अच्छे गुण होते हैं ।

जव एक-एक अवयव के छोटे-वड़े होने पर पुण्य का इतना विचार है तो फिर एकेन्द्रिय से पचेन्द्रिय हुए, पचेन्द्रियो को भी मनुष्य-जन्म मिला और मनुष्य होकर भी भारत की उत्तम भूमि मे उत्पन्न हुए, यह कितने महान् पुण्य की वात है ? इस पुण्य का वदला किससे करना चाहिए, यह विचारो।

इस पुण्य के वदले में मनुष्य को विषय-कषाय पर

वास्तव मे यह ज्ञानी के लक्षण हैं। इन आँखो से उन वस्तुओ को देखने की आदत डालनी चाहिए, जिन्हे देखकर वैराग्य हो। आँखो से साधु, सती वेश्या आदि सभी देखे जाते हैं, पर देख लेने मे ही कोई विशेषता नही है। देखने का परिणाम भाव पर निर्भर है। महात्मा को आप देखेंगे तो जैसे मृगापुत्र महाराज को जाति स्मरण ज्ञान हुआ और वे मुक्ति प्राप्त कर सके, ऐसे ही आपको भी महान् लाभ होगा।

कहा जा सकता है कि वैसे महात्मा आजकल हैं कहाँ ? इसका उत्तर यह है कि आज चिन्तामणि और पारसमणि नही मिलती, पर साधारण हीरे-मोती को भी जौहरी ही पहचानता है, दूसरा नही पहचानता। दूसरा तो इनके भरोसे इमीटेशन (नकली) हीरा-मोती ले लेता है और जौहरी नकली हीरा-मोती से भी लाखो रुपया कमा लेता है। इसी तरह यदि आज चिन्तामणि और पारसमणि जैसे महात्मा— जिनके दर्शन से तत्काल लाभ हो— नही हैं पर साधारण हीरा और मोती के समान सन्त और भक्त तो आज भी मौजूद हैं।

आप अपनी दृष्टि सदैव अच्छी जगह लगाइये। दृष्टि से मनुष्य की पहचान होती है। एक कामी पुरुष की और भक्त की दृष्टि को देखो तो मालूम होगा कि दोनो की दृष्टि मे क्या अन्तर है ! जो भक्त हैं उनके चेहरे से कैसा शातिरस टपकता है और जो कामी है वह धर्मस्थान मे बैठकर

ही उसकी मृत्यु का कारण हुई। इससे यह शिक्षा लेनी चाहिए कि जब एक चक्षु इन्द्रिय के अधीन होने के कारण ही पतग मर गया तो जो लोग पाँचो इन्द्रियो के गुलाम होगे—पाँचो इन्द्रियो से राग-द्वेष करेंगे, उनकी कैसी दुर्दशा न होगी !

आँखें पुण्य भी कमा सकती हैं और पाप भी कमा सकती हैं।

मृगापुत्र अपने महल मे बैठे थे। सब स्त्रियाँ भी वही रागरग से मस्त हो रही थी। किन्तु मृगापुत्र महाराज की दृष्टि इन स्त्रियो के हाव-भाव पर न जाकर एक महात्मा की ओर जाती है।

अह तत्थ आइच्छत, पासई समणं सजय ।।
तवनियममजमधर, सीलड्ढ गुणआगर ।।
त देहई मियपुत्ते, दिट्ठीए अणिमिसाए उ ।।
कहिमन्नेरिस, रूव दिट्ठपुव्व मए पुरा ।।

— श्री उ० १९ अ० ५–६ गा०

मुनि को आते देखकर मृगापुत्र महाराज के रोम-रोम मे हर्ष छा गया। वे विचार करने लगे कि ऐसे महात्मा को कही न कही देखा अवश्य है।

मित्रो ! वह महात्मा सुन्दर वस्त्रो और आभूषणो से सजे हुए तो थे नही, स्त्री जैसा रूप शृगार भी उनमे नही था, फिर मृगापुत्र उन्हें देखकर इतने प्रसन्न क्यो हुए ?

संसार से डर कर मत भागो। बहुतो ने ससार मे रहकर कल्याण किया है। भावना को शुद्ध बनाने का निरन्तर प्रयत्न करते रहो तो आपका भी कल्याण हो सकता है।

आप यह न समझें कि साधु इस ससार मे अखाड़े से पृथक् हैं। साधु-अवस्था मे भी अगर काम आदि का हमला न होता तो कई-एक साधु साधुता से पतित क्यों हो जाते? राजीमती को देख रथनेमि कामवश होकर पतित हो ही गये थे। मगर राजीमती ने उन्हे सम्भाल लिया। राजीमती के उपदेश को सुनकर वह रास्ते पर आये थे, अन्यथा उनके पतित होने मे कमी क्या रह गई थी? भाइयो! हमले तो होते ही रहेगे। इन हमलो से हिम्मत न हारो, बल्कि अधिक हिम्मत करके डटकर उनका सामना करो और सोचो कि हम भी हमला करने वालो पर हमला करेंगे और आज नही तो कल उन्हे पछाड देगे।

शास्त्र में कहा है कि आत्मा मे औदयिक भाव भी है और क्षायोपशमिक भाव भी है। क्षायोपशमिक भाव को बढाने से अवश्य ही विषय कषाय पर विजय प्राप्त हो सकती है।

विमल जिनेश्वर सेविये,
थारी बुधि निर्मल होइ जाय रे जीवा।

अरे जीव! विमलनाथ भगवान् की सेवा कर। विमलनाथ भगवान् की सेवा करने से तेरी बुद्धि निर्मल हो जायगी।

भी स्त्रियों पर ही नजर जमाये रहता है ।

मित्रो ! मेरी बात पर ध्यान दो । उस पर विचार करो और फिर देखो कि आपको कैसे शान्ति नही मिलती है । आखो की साधना करो । महात्माओ के पास उठने-बैठने की ऐसी आदत डालो कि शुभ लेश्या जगे और क्रोध आदि का निग्रह होकर कल्याण की प्राप्ति हो । नयन और मन सदा इसी बात के इच्छुक रहे कि ऐसी सगति बार बार करू । ऐसी भावना होने पर भगवान् विमलनाथ की कृपा से अवश्य शान्ति मिलेगी ।

आज आपको पचेन्द्रिय होकर मनुष्य-जन्म प्राप्त करके भक्ति को पहचानने का सुयोग मिला है । इस समय हिम्मत हारना उचित नही है । बहुत-से लोग यह सोचकर कि गृहस्थ-अवस्था मे आत्मकल्याण नही हो सकता, उत्साहहीन हो जाते हैं और गृहस्थी को पापो का भडार समभकर पापो मे डूबे रहते हैं । उनका ऐसा समझना भ्रमपूर्ण है । गृहस्थ अवस्था मे अगर कल्याण होना सम्भव न होता तो उपदेश देने की आवश्यकता ही क्यो होती ? अतएव ससार बाधक है, ऐसा विचार मत करो ।

दो मल्ल अखाड़े मे लडते हैं । उनमे से एक जीतता है और दूसरा हारता है । परन्तु हारने वाला मल्ल भागता नही है । वह सोचता है— आज मैने पछाड खाई है तो आगे मैं इसे पछाडूंगा । इसी प्रकार का विचार आप करो ।

ससार से डर कर मत भागो। बहुतों ने ससार मे रहकर कल्याण किया है। भावना को शुद्ध बनाने का निरन्तर प्रयत्न करते रहो तो आपका भी कल्याण हो सकता है।

आप यह न समझें कि साधु इस संसार मे अखाड़े से पृथक् हैं। साधु-अवस्था मे भी अगर काम आदि का हमला न होता तो कई-एक साधु साधुता से पतित क्यो हो जाते ? राजीमती को देख रथनेमि कामवश होकर पतित हो ही गये थे। मगर राजीमती ने उन्हें सम्भाल लिया। राजीमती के उपदेश को सुनकर वह रास्ते पर आये थे, अन्यथा उनके पतित होने मे कमी क्या रह गई थी ? भाइयो ! हमले तो होते ही रहेगे। इन हमलो से हिम्मत न हारो, बल्कि अधिक हिम्मत करके डटकर उनका सामना करो और सोचो कि हम भी हमला करने वालो पर हमला करेंगे और आज नही तो कल उन्हे पछाड देंगे।

शास्त्र मे कहा है कि आत्मा मे औदयिक भाव भी है और क्षायोपशमिक भाव भी है। क्षायोपशमिक भाव को बढाने से अवश्य ही विषय कषाय पर विजय प्राप्त हो सकती है।

> विमल जिनेश्वर सेविये,
>
> थारी बुधि निर्मल होइ जाय रे जीवा।

अरे जीव ! विमलनाथ भगवान् की सेवा कर। विमलनाथ भगवान् की सेवा करने से तेरी बुद्धि निर्मल हो जायगी।

विमलनाथ भगवान् का नाम जपने और उनके शरण मे जाने से जब बुद्धि निर्मल हो जाती है तब विषय-कषाय को जीतना सरल हो जाता है । विमलनाथ भगवान् के नाम मे ऐसी महिमा है ।

तेरहवे तीर्थंकर का नाम विमलनाथ क्यो है, यह देखना चाहिए । आप जानते हैं कि कोई कोई नाम गुण के अनुसार होते हैं और कोई-कोई रूढ़ि के पोषक होते हैं । कोई नाम सिर्फ व्यवहार के लिए होता है और किसी नाम में उसके अनुसार गुण भी रहता है । लेकिन बिना नाम के ससार में कोई किसी को ठीक तरह पहचान नही सकता । आपको किसी से एक लाख रुपया लेना है । अगर आप उसका नाम नही जानते तो किससे रुपया माँगेंगे ? बिना नाम जाने हथेली की चीज भी यथावत् नही पहचानी जाती ।

नाम बिन जाने,

करतल गत नहि परत पिछाने ।

मान लीजिए, किसी सेठ की लडकी की सगाई दूसरे सेठ के लडके साथ हुई । वर और कन्या दोनो अलग-अलग देश मे हैं । एक ने दूसरे को नही देखा है । कार्यवश वर, कन्या के ग्राम मे गया और किसी बगीचे मे ठहरा । सयोग-वश वह, कन्या भी उस बगीचे मे आई । अब दोनों एक दूसरे को देखते हैं, फिर भी किसी ने किसी को नही पहचाना । यहाँ न पहचानने का कारण क्या है !

'नाम मालूम नही ।'

नाम मालूम न होने से एक, दूसरे को न पहचान सका । इतने मे किसी तीसरे ने आकर दोनो को एक दूसरे का नाम बतला दिया । दोनो के भावो मे कैसा परिवर्तन हो जायगा ! दोनो के भाव बदल जाएंगे । दोनो लज्जित हो जाएगे ।

यह दृष्टान्त इसलिए दिया गया है कि आप नाम के महत्त्व को समझ सकें । जो नाम केवल रूढ़ि पर अवलबित हैं, उनमे भी जब इतना प्रभाव है तो जिस नाम मे यथार्थ गुण है, उस नाम का प्रभाव कितना होना चाहिए ?

भगवान् विमलनाथ का नाम रूढ नही है, उन्होंने गर्भ मे आते ही माता की बुद्धि और जन्म लेते ही जगत् की बुद्धि निर्मल कर दी थी । इससे उनका नाम विमलनाथ हुआ । आप अपनी बुद्धि को निर्मल बनाना चाहते हो तो भगवान् विमलनाथ का स्मरण करे । विमलनाथ का स्मरण करने से आपकी बुद्धि निर्मल हो जायगी, आपके अन्त.करण मे भी निर्मलता आ जायगी और फिर सम्पूर्ण आत्मा की विशुद्धि हो जायगी ।

[ख]

रे जीवा ! विमल जिनेश्वर सेविये ।

भगवान् विमलनाथ की यह प्रार्थना है । परमात्मा की सच्ची प्रार्थना करने वालो के हृदय मे जब भावोद्रेक होता

है और अन्य जीवो के कल्याण की कामना उद्भूत होती है तब वह अपनी प्रार्थना को शब्दो के साचे में ढाल देते हैं। अथवा यों कहना चाहिए कि भावना जब बहुत प्रबल हो उठती है तो वह शब्दो के रूप मे बाहर फूट पडती है और उससे असख्य प्राणियो का हित हो जाता है।

यह कहना कठिन है कि सब प्रार्थना करने वालो के मन मे क्या है, लेकिन बाहर प्रकट किए हुए भावो से जो अनुमान होता है, वह यही कि उनके मन मे भी अच्छे ही भाव होगे और हृदय मे ज्योति होगी। चाहे उनके शब्द चमत्कार-जनक न हो, उनकी भाषा में शाब्दिक सौन्दर्य न हो और छन्दशास्त्र का भी उन्होने अनुशरण न किया हो फिर भी उनके भाव अनूठे होते हैं। वे कहते हैं—प्रभो! मेरे हृदय मे जो प्रेम है, वह या तो मैं जानता हूँ या तू जानता है। इस प्रकार निरपेक्ष भाव से— अनन्य प्रेम से जो प्रार्थना की जाती है, उसमे गजब की शक्ति होती है।

परमात्मा की प्रार्थना की व्याख्या करना सुवर्ण का सिंगार करने के समान है फिर भी कुछ न कुछ करना ही होता है। सुवर्ण मे सौन्दर्य तो स्वाभाविक है, लेकिन उसे उपयोगी बनाने के लिए सुनार को उसके गहने बनाने ही पड़ते हैं। फूल मे सुगन्ध, सौन्दर्य और सुकुमारता स्वाभाविक है फिर भी मालाकार उसे हार मे गूंथता है। इसी प्रकार प्रार्थना स्वय सुन्दर है— गुणसम्पन्न है, लेकिन उसे सबके

लिए उपयोगी बनाने की दृष्टि से कुछ कहना पड़ता है ।

प्रार्थना की जो कड़ियाँ बोली गई हैं, उनमे अपने पूर्व चरित्र का वर्णन आया है । उनमे यह बतलाया गया है कि— हे आत्मा ! तुझे देखना चाहिए कि पहले तू कौन था, और अब कहाँ आया है ? अब तेरा कैसा विकास हुआ है— तू किस दर्जे पर चढा है ? धीरे-धीरे तू ऊँचा चढ गया है । अब जरा विशेष सावधान हो । ऐसा न हो कि शिखर के समीप पहुंच कर फिर गिर पडे । ऊपर चढना तो अच्छा है, मगर उसी दशा मे जब नीचे न गिरो । ऊपर चढकर नीचे गिरने की दशा मे अधिक दुःख होता है ।

हम लोग किस स्थिति से चलकर किस स्थिति पर पहुंचे हैं यह बात अर्हन्त भगवान् ने बतलाई है और शास्त्र मे इसका उल्लेख है । शास्त्र गम्भीर है । सब लोग उसे नही समझ सकते । अतएव शास्त्र मे कही हुई वह बातें सरल भाषा मे, प्रार्थना की कडियो द्वारा प्रकट की गई हैं । लोक मे बलवान् की खुराक कुछ और होती है तथा निर्बल की खुराक और ही । निर्बल को उसी के अनुरूप खुराक दी जाती है । प्रार्थना मे वही बात सरल करके बतलाई गई है, जो भगवान् ने गौतम स्वामी से कही थी, जिससे सब सरलतापूर्वक समझ लें ।

अपनी पुरातन स्थिति पर विचार करो कि अपनी स्थिति पहले कैसी थी ? प्रभो ! मैं पागलों से भी पागल

था। अब मेरी आत्मा मे जो ज्ञान हुआ है, उससे मैं समझ पाया हूँ कि मैंने कितनी स्थितियाँ पार की हैं और अब इस स्थिति मे आया हूँ। एक समय मैं निगोद में निवास करता था, निगोद मे ऐसे ऐसे जीव हैं जो आज तक कभी एकेन्द्रिय पर्याय छोड़कर द्वीन्द्रिय पर्याय भी नही पा सके हैं।

मित्रो ! अपनी पूर्वावस्था पर विचार करो। इससे अनेक लाभ होगे। प्रथम यह है कि आपको अपनी विकासशील शक्ति पर भरोसा होगा और दूसरे आप अपनी मौजूदा स्थिति का महत्व भलीभांति समझ सकेंगे। तीसरे पूर्वावस्था पर विचार किये बिना परमात्मा की प्रार्थना भी यथावत् नही हो सकती। आप यह न समझ लो कि हम पहले कही नही थे और मा के पेट से नये ही उत्पन्न हो गये हैं। आप अपनी अनादि और अनन्त सत्ता पर ध्यान दीजिये।

हे आत्मन् ! तेरा ननिहाल निगोद मे है। तेरे साथ जनमने और मरने वाले तेरे अनेक साथी अब तक भी वहाँ हैं। लेकिन न जाने किस पुण्य के प्रताप से तू इस अवस्था से बढते-बढ़ते यहाँ तक आ पहूचा है। एक वह दिन भी था, जब एक समय मे अठारह बार जनमना-मरना पडता था, मगर कौन सी स्थिति जागी और कैसे क्या हुआ कि तेरा उत्थान हो गया ? यह ज्ञानी ही जानते हैं। तथापि तेरा महान् उत्थान हुआ है और तू इस स्थिति पर आ पहुंचा है कि तुझे विवेक की प्राप्ति हुई है— ज्ञान मिला है। फिर क्या यहाँ

से नीचे जायगा ? अगर ऐसा हो तो ज्ञान की प्रशसा की जाय या अज्ञान की ? अतएव तुझे देखना चाहिए कि ज्ञान पाकर तू क्या करता है । तू अपनी असलियत को—स्वरूप को भूल रहा है और वाहियात वस्तुओ का लालची बन रहा है । किसी समय निगोद का निवासी तू विकास पाते-पाते यहाँ तक आया है । तुझे मानव शरीर मिला है, जो ससार का समस्त वैभव देने पर भी नही मिल सकता । सम्पूर्ण ससार की विभूति एकत्र की जाय और उसके बदले यह स्थिति प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाय तो क्या ऐसा होना सम्भव है ? नही । त्रैलोक्य के राज्य के बदले भी कोई एकेन्द्रिय से द्वीन्द्रिय नही बन सकता । इतनी अनमोल स्थिति तुझे मिली है । इस स्थिति की महिमा समझ और ऐसा प्रयत्न कर, कि अब पीछे लौटने का समय न आवे । साथ ही अपनी उस पहली स्थिति को भी स्मरण रख, जिसके विषय मे कहा जाता है :—

काल अनन्ता तिहा रह्यो,
ते दुख आगमथी सम्हाल रे जीवा !

जिस काल की गिनती करना भी असम्भव है, जो अनन्त कहलाता है, उतने काल तक तू वहाँ रहा । फिर उसे आज कैसे भूल रहा है ! उस पर विचार क्यो नही करता ? और आगे ही आगे बढने का दृढ सकल्प और कार्य करने मे कसलिए हिचक रहा है ?

प्रश्न हो सकता है— अगर वह काल अनन्त था तो उसका अन्त कैसे आ गया ? उत्तर यह है कि—एक अनन्त तो ऐसा होता है कि जिसका अन्त कभी आ ही नही सकता, दूसरे अनन्त का अन्त तो आ जाता है, लेकिन अन्त कब आएगा, यह बात ज्ञानी ही जानते हैं। एक अनन्त वह भी है, जिसका अन्त आता है फिर भी उनकी प्रचुरता के कारण गिनती नही हो सकती। दात की चूडी को सभी देखते हैं, लेकिन यह नही बतलाया जा सकता कि उसका मुँह कहाँ है ? उसके आरम्भ और अन्त का पता नही लगता। इसी प्रकार उस काल को ज्ञानियों ने तो देखा था, लेकिन उसकी गणना नही हो सकने के कारण उसे अनन्त कहा है।

हे जीव ! उस निगोद के निविडतर अन्धकार से परिपूर्ण कारागार मे न मालूम किस भवस्थिति का उदय हुआ, जिससे तू साधारण निगोद से निकल कर प्रत्येक में आया। उसके बाद फिर पुण्य मे वृद्धि हुई और तू एकेन्द्रिय दशा त्याग कर द्वीन्द्रिय दशा प्राप्त कर सका। तत्पश्चात् क्रमशः अनन्त पुण्य की वृद्धि होने पर तू मनुष्य हुआ। अनन्त पुण्य के प्रभाव से मनुष्य होने पर तुझे जो जीभ मिली, उसे तू किस काम मे लगा रहा है ? उसके द्वारा तू क्या फल ले रहा है ? क्या यह भागशालिनी जिह्वा तुझे परनिन्दा, मिथ्याभाषण कटुकवचन अथवा उत्पात करने-कराने के लिए मिली है ? अगर नही, तो क्या तुझसे यह

आशा करूं कि तूं झूठ नही बोलेगा।

लोगो मे आज दया का जितना विचार है, उतना सत्य का विचार नही है, सत्य की ओर ध्यान देने की बड़ी आवश्यकता है।

आपको एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय आदि अनन्त पर्यायें पार करने के पश्चात् मनुष्य भव मिला है। अपना अहोभाग्य समझिए कि आप श्रेष्ठ धर्म और उसके उपदेशक त्यागी गुरु भी प्राप्त कर सके हैं। मगर इसकी प्राप्ति का लाभ क्या है ? यही कि जो कुछ मिला है, उसे अच्छे काम मे लगाया जाय। बुरे काम मे न लगाया जाय। असत्य न बोले, किसी को बुरी नजर से न देखे, किसी की निन्दा-बुराई न सुने। इस प्रकार प्रत्येक इन्द्रिय को बुरे काम से बचा कर परमात्मा की प्रार्थना मे लगा दिया जाय तो मनुष्य-जन्म सफल हो सकता है। इसीलिए कहा है –

विमल जिनेश्वर सेविये, थारी बुध निर्मल हो जाय रे जीवा।
विषय-विकार निवारने, तू तो मोहनीकर्म खपाय रे जीवा ॥१॥

रे चिन्दानन्द ! अब देखता क्या है ? जिस प्रभु ने तुझे तेरी भवस्थिति बतलाई है, उसकी सेवा मे तन्मय हो जा। उसकी सेवा से तुझे क्या मिलेगा ? ससार के लोगों की यह हालत है कि किसी भी काम मे लोभ या भय के बिना प्रवृत्त नही होते। विचार करो कि जो भवस्थिति

तूने सुनी है, उससे बड़ा भय या लाभ और क्या हो सकता है ? भय यह है कि कही ऊँची स्थिति से गिरकर नीची स्थिति मे न पड़ जाऊँ। इस प्रकार का भय रखने से तुझमे परमात्मा की सेवा करने की रुचि उत्पन्न होगी। यही बड़ा लाभ है।

१४-श्री अनन्तनाथजी

प्रार्थना ।

अनन्त जिनेश्वर नित नमूं, अद्भुत जोत अलेख ।
ना कहिये ना देखिये, जाके रूप न रेख ॥१॥

सूक्षम थी सूक्षम प्रभु, चिदानन्द चिद्रूप ।
पवन शब्द आकाशथी, सूक्षम ज्ञान सरूप, ॥२॥

सकल पदार्थ चिन्तवूं, जे-जे सूक्ष्म होय ।
तिणथी तू सूक्षम महा, तो सम अवर न कोय ॥३॥

कवि पण्डित कही-कही थके, आगम अरथ विचार ।
तो पण तुम अनुभव तिको, न सके रसना उचार ॥४॥

आप भणे मुख सरस्वती, देवी आपो आप ।
कही न सके प्रभु तुम सत्ता, अलख अजल्पा जाप ॥५॥

मन बुध वाणी तो वषे, पहुंचे नही लगार ।
साक्षी लोकालोकनी, निर्विकल्प निर्विकार ॥६॥

मा 'सुजसा' 'सिंहरथ' पिता, तस सुत 'अनन्त' जिनन्द ।
'विनयचन्द' अब ओलख्यो, साहिब सहजानन्द ॥७॥

आज सर्वव्यापी परमात्मा के विषय मे कुछ कहना चाहता हूँ। जिन शब्दो मे इस विषय को कहना और निश्चय करना चाहिए, उन शब्दो मे कहना और निश्चय करना कठिन है। उन शब्दो मे आपका समझना भी मुश्किल है। फिर भी यथाशक्ति कहने और समझने का प्रयत्न करना ही योग्य है।

परमात्मा की सत्ता और महत्ता को पहिचान लेने पर सारे ससार के सुख और वैभव तुच्छ हैं। जो ऐसा समझेगा अर्थात् परमात्मा की सत्ता के आगे सासारिक सुखो को तुच्छ जानेगा, उसी की गति परमात्मा की ओर होगी।

प्रार्थना मे कहा है—'अनन्त जिनेश्वर नित नमूँ।' यहाँ आप कह सकते हैं कि जब तक परमात्मा के स्वरूप को पहचान न लें तब तक उन्हे नमस्कार कैसे करे? साधु को तो वेष से पहचान कर नमस्कार करते हैं पर परमात्मा को कैसे पहचानें? और पहचाने बिना नमस्कार कैसे करे? अगर बिना पहचाने नमस्कार कर भी लिया तो उससे क्या प्रयोजन सिद्ध होगा? ऐसा करने पर वास्तविक प्रीति तो नही हो सकती।

मैं आपसे कह चुका हूँ—

यस्मात् क्रिया प्रतिफलन्ति न भावशून्या।

जब तक हृदय मे चाह न हो और सिर्फ ऊपर से किसी शुभ काम को किया जाय तो उसका यथेष्ट फल नही होता। अतएव जब तक परमात्मा को पहचान न लिया जाय, परमात्मा के प्रति भावना उत्पन्न न हो जाय तब तक उसे नमन करना भी

विशेष लाभदायक नही ! अतएव परमात्मा को पहचानना बहुत आवश्यक है । एक बार परमात्मा को पहचान लिया तो फिर वह नही भूलेगा । एक बार हृदय मे वह घुस गया तो फिर नही निकलेगा । मगर परमात्मा को पहचाना कैसे जाय ?

रत्न की परीक्षा एकदम कोई नही सीख सकता । जो जौहरी की दुकान पर बैठा करता है वह कभी न कभी रत्नपरीक्षक हो ही जाता है । लोग पहले-पहल जब व्यापारिक क्षेत्र मे प्रवेश करते हैं तभी व्यापार को नही समझ लेते । धीरे-धीरे अनुभव प्राप्त करके ही निष्णात बनते हैं । तात्पर्य यह है कि जैसे व्यावहारिक बातें साधना से सीखी जाती हैं, वैसे ही परमात्मा की पहचान भी साधना से ही हो सकती है । साधना बडी चीज है । आप बचपन मे ऐसी पगडी और धोती बाँधना नही जानते थे, लेकिन अभ्यास करते करते साधना द्वारा अच्छी पगड़ी बाँधना और धोती पहनना सीख गये हैं । इसी प्रकार परमात्मा से प्रेम करने की साधना करो, उसके लिए उद्योग करो तो उसका स्वरूप पहचान लेना असम्भव नही रहेगा ।

अनन्त जिनेश्वर नित नमू , अद्भुत ज्योति अलेख ।
ना कहिए ना देखिये, जाके रूप न रेख ।। अनन्त ।।

उस परमात्मा की ज्योति ऐसी अद्भुत है, जो मुख से कही नही जा सकती और आँख से देखी नही जा सकती ।

उसका न कोई रूप है, न रेख है, उसको नमस्कार कर।

अब आप सोचेंगे कि हम तो और भी चक्कर मे पड गये! जिसकी कोई रूप-रेखा नही है, उसे किस प्रकार पहचाना जाय?

मित्रो! शका करने की कोई बात नही है। हृदय प्रसन्न करने वाली चीज रूप-रग वाली नही होती। रूप-रग वाली चीज नाशवान् है और जिसमें रूप-रग नहीं है वह अविनाशी है। नाशवान् चीज हृदय को प्रसन्नता नही पहुँचा सकती, इसलिए अविनाशी से प्रीति करो। अविनाशी से प्रेम करोगे तो कल्याण होगा।

'सकल पदारथ चितवू, जे जे सूक्षम होय।
ते थी तू सूक्षम महा, तो सम अवर न कोय॥

ससार के समस्त सूक्ष्म पदार्थों पर अगर मैं विचार करू तो सब से सूक्ष्म तू ही मिलेगा। तेरे समान सूक्ष्म और कोई नही है।

शरीर मे आँख, कान, नाक, आदि दिखाई देते हैं, पर क्या श्वास दिखता है?

'नहीं!'

अर्थात् श्वास इन स्थूल इन्द्रियों से सूक्ष्म है। अब इनमे अधिक प्रिय कौन है?

'श्वास!'

क्योकि श्वास के बिना आँख, कान आदि कुछ भी

नही कर सकते । तो जिस तरह श्वास दीखता नही है, फिर भी उसे प्यार करते हो, उसी प्रकार अदृश्य परमात्मा को भी प्यार करो । उससे प्रार्थना करो—हे प्रभु ! जैसे श्वास के चले जाने पर शरीर बेकाम रह जाता है, उसी तरह तुझे भूलने से यह ससार मुर्दा है । इसमे अगर तू न रहे तो यह किसी काम का नही ।

आप श्वास की करामात समझते हैं । यद्यपि श्वास सूक्ष्म है तथापि सब उसी का खेल है । उसी सूक्ष्म पर स्थूल टिका है । स्वाश अगर स्थूल शरीर से पृथक् हो जाय तो सब स्थूल इन्द्रियाँ मुर्दा हो जाएँ । इससे निश्चय हुआ कि स्थूल, सूक्ष्म के बिना नही टिक सकता ।

अब जरा आगे चलिए । सोचिये कि श्वास को श्वास के रूप में पहचानने वाला कौन है ? श्वास के इस महत्त्व को कौन समझता है ?

ज्ञान !'

मैं सुखी हूँ या दुखी हूँ, श्वास चलता है या नही चलता, यह सब बातें पहचानने वाला ज्ञान है । ज्ञान न हो तो जीने और मरने में क्या अन्तर रह जाय ?

तो. ज्ञान श्वास से भी सूक्ष्म है । श्वास तो क्रिया से भी जाना जा सकता है पर ज्ञान आत्मा से ही जानने योग्य है । ज्ञान को देखने या जानने के लिए दूसरी चीज की आवश्यकता नही होती । ज्ञान के लिए ज्ञान ही प्रमाण है ।

जिस प्रकार सूर्य को देखने के लिए दीपक आदि की आवश्यकता नही होती, उसी प्रकार ज्ञान को देखने के किसी और चीज की आवश्यकना नही है। ज्ञान के लिए किसी और से पूछना मूर्खता है।

जैसे श्वास से सूक्ष्म ज्ञान है, वैसे ही सूक्ष्म परमात्मा है। कहा है—

सूक्षम से सूक्षम प्रभु चिदानन्द चिद्रूप।
पवन शब्द आकाशथी, सूक्षम ज्ञान-स्वरूप।

अतएव जिस प्रकार तुम ज्ञान को जानते और मानते हो, उसी प्रकार ईश्वर को मानो। ईश्वर अनन्तज्ञानी है। जैसे ज्ञान अपने हृदय की सब बातें जानता है, उसी तरह परमात्मा ससार की सब बातें जानता है। कोई बात उससे छिपी नही। वह अनन्त ज्ञान का प्रकाशमय पुंज है।

मित्रो! यदि मनुष्य ईश्वर के इस रूप को जान लें तो कदापि कपट न करें। जो यह बात समझ जायगा कि ईश्वर सब जगह देखता है और सब कुछ जानता है, उसे कपट करने की इच्छा ही नही होगी। जो ईश्वर की सत्ता को जानता है वह साफ कह देगा कि मुझसे कपट न होगा। आपको ऐसा ज्ञान हो जाय तो अज्ञान का पर्दा हट जायगा और परम शान्ति प्राप्त होगी। इस ज्ञान के प्राप्त होने पर आप स्वय कहने लगेगे कि— 'भगवान्! तुझे रिझाकर, तेरी भक्ति करके मैं यही चाहता हूँ कि मुझे शांति प्राप्त

हो। तुझे पहचान लेने पर, तेरी भक्ति करने पर मुझे किसी वस्तु की कमी नही रह जायगी।'

[ख]

अनन्त जिनेश्वर नित नमू।

कवि ने भगवान् अनन्तनाथ की प्रार्थना की है। यह केवल कल्पना नही है किन्तु इस प्रार्थना मे भगवान् का यथार्थ स्वरूप बतलाया गया है। परमात्मा का स्वरूप और उस स्वरूप का विचार अगाध है। अनायास वह समझ मे नही आ सकता। बहुत-से लोग कहते हैं कि आजकल भगवान् का विरह हैं। वह सीमधर स्वामी तेरह करोड कोस दूर महाविदेह क्षेत्र मे विराजमान है। इतनी दूर होने से इस शरीर और इस जिन्दगी मे उनसे भेंट कैसे हो ? ऐसा सोचकर वे ईश्वर का बोध नही लेते और ईश्वर का बोध न लेने से, पाप से बचने की उन्हें छाया नही मिलती।

परमात्मा का बोध कराने से पहले मैं यह पूछना चाहता हूँ कि आप परमात्मा को क्यो चाहते हैं ?

'आत्मा की शुद्धि के लिए।'

तो यह मालूम हुआ कि आत्मा अशुद्ध है और उसकी शुद्धि के लिए परमात्मा की जरूरत है। पर आपने आत्म-शुद्धि के सम्बन्ध में कुछ विचार भी किया है या यो ही परमात्मा को चाहते हैं ?

अकसर लोग कहते हैं कि आत्मा की शुद्धि के लिए

ही हम परमात्मा को चाहते है, परन्तु वे अपने अन्त.करण को टटोलें तो उनमे से वहुतो की कामना निराली-निराली होगी । कई लोग साधु होने पर भी दिखावे के लिए परमात्मा का भजन करते हैं, कोई निस्सन्तान होने से पुत्र की प्राप्ति के लिए, कई निर्धन होने से धन पाने के लिए, कोई दूसरो के सामने अपनी प्रामाणिकता प्रकट करने के लिए और कई इस डर से कि चार आदमियो मे बैठकर भगवान् का भजन न करेंगे तो नास्तिक समझे जाएँगे, परमात्मा का भजन करते हैं। ऐसे लोगो मे क्या आत्मशुद्धि के लिए परमात्मा को भजने का भाव रहा।

'नही।'

जो आत्मा की शुद्धि के लिए परमात्मा को भजेगा, उसे पहले परमात्मा और आत्मा का स्वरूप तथा दोनो का सम्बन्ध समझ लेना होगा। उसके बाद यह भी जान लेना आवश्यक होगा कि परमात्मा से भेंट किस प्रकार हो सकती है ? वास्तव मे परमात्मा वहुत समीप है परन्तु स्वरूप को न समझने से वह दूर मालूम होते हैं। परमात्मा का स्वरूप समझने के लिए, पहले जो वस्तुएँ प्रतिदिन आपके संसर्ग मे आती हैं, उनसे पूछताछ कर लेनी चाहिए। प्रतिदिन काम मे आने वाली प्रथम तो इन्द्रियाँ हैं, फिर मन है, फिर बुद्धि और फिर आत्मा या ज्ञान है। इस प्रकार पहले इन्द्रियो से पूछना चाहिए।

स्पर्शनेन्द्रिय सिर्फ स्पर्श को जानती है। यह वस्तु ठडी है या गरम, हल्की है या भारी, कोमल है या कठोर, चिकनी है या रूखी यही तक इसकी सीमा है। तो क्या परमात्मा हल्का-भारी आदि है ?

'नही।'

अर्थात् परमात्मा इन आठो स्वभावो से रहित है। अन्य शास्त्र भी कहते हैं—

अणोरणीयान् महतो महीयान् इत्यादि।

अर्थात् वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म और स्थूल से भी स्थूल है, पर उसमे हल्कापन या भारीपन नही है। तब स्पर्शनेन्द्रिय उसे कैसे पहचानेगी ?

आगे चलकर जीभ से पूछा– तेरे से भगवान् को मिलाऊँ तो तू पहचान लेगी ? जीभ ने उत्तर दिया—परमात्मा खट्टा मीठा होगा तो पहचान लूंगी। नही तो कैसे पहचानूगी ? पर क्या परमात्मा खट्टा मीठा है ?

'नही।'

इस प्रकार दो इंद्रियो से जवाब मिल जाने पर तीसरी इन्द्रिय नाक के पास पहुचे। उसने उत्तर दिया–मेरा काम सुगन्ध और दुर्गन्ध बतलाने का है। इसके सिवाय और कुछ भी जानना मेरे बूते से बाहर की बात है। पर क्या परमात्मा सुगध या दुर्गन्ध है ?

'नही।'

चलो, नाक से भी साफ उत्तर मिल गया। अब आँख के पास आकर पूछा—तू दूर-दूर तक देखती है तो क्या परमात्मा को भी देख सकती है ? आँख ने कहा—अगर परमात्मा काला, पीला, नीला, हरा या लाल हो तो मैं बतला दू ।' मगर क्या परमात्मा उपर्युक्त रगो वाला है ?

'नही !'

चलो, आंखो से भी छुट्टी मिली। अब रह गया कान। कान से कहा— भाई, तू ही जरा अनन्तनाथ भगवान् का पता बता। तब कान कहता है—मैं केवल शब्द सुन सकता हूँ। पर परमात्मा क्या शब्द है ?

'नही !'

तब इन इन्द्रियो से परमात्मा का पता लगना सम्भव नही है। ऐसा सोचना कि परमात्मा का पता इन्द्रियाँ लगाएँगी, वृथा है। जब वहाँ तक इनकी पहुंच ही नही है तो यह उसे कैसे पहचान सकेंगी ? ऐसी स्थिति मे जो लोग यह कहते हैं कि परमात्मा दीखता नही है, इसलिए उसकी सत्ता भी नही है उनका कथन मिथ्या है, दंभ है। उन्होने ऐसा कहकर लोगो को भ्रम मे डाल रक्खा है।

इन्द्रियो से निराश होकर मन के पास पहुंचे। मन से कहा—तेरी गति सर्वत्र मानी जाती है। तू बहुत तेज दौड़ता है। क्षण में स्वर्ग मे तो दूसरे क्षण पाताल मे जा सकता है। तू सूक्ष्म है। तेरी गति में कोई रुकावट नही

डाल सकता । तू तो अनन्तनाथ भगवान् का पता दे ! मन बेचारा गया, दूर तक गया । और उसने लौटकर उत्तर दिया—मैं वहाँ तक तो नही पहुंच सकता । मेरी गति वहाँ तक नही है ।

मन बुद्धि वाणी तो विषे,
पहुचे नाहि लिगार ।
साक्षी लोकालोक नो,
निर्विकल्प निरविकार ।।अनन्त०।

अर्थात्—हे प्रभो ! मन, बुद्धि और वाणी तेरे पास तक नही पहुंच सकते ।

मन इन्द्रियो द्वारा जाने हुए पदार्थों को ही ग्रहण करता है और परमात्मा इन्द्रियो का अगोचर है । ऐसी स्थिति में वह परमात्मा को जान ही नही सकता ।

मन से निराश होकर बुद्धि के घर आते हैं और उससे परमात्मा के विषय मे जानना चाहते हैं तो वह भी टका-सा जवाब दे देती है । वह इतनी मन्द है कि ससार के तर्क-वितर्कों मे ही पडी रहती है । उसे परमात्मा का क्या पता ? सूत्र मे कहा है :—

तक्का तत्थ न विज्जइ ।
मई तत्थ न गाहिया ।
— श्री आचारांग सूत्र ।

उस परम तत्त्व तक तर्क नही पहुंचता और मति भी

वहाँ प्रवेश नही करती । वह परम तत्त्व तर्क और बुद्धि से परे है ।

आप कहेंगे— तब तो परमात्मा को समझना और भी कठिन हो गया ! मगर मैं कहता हूँ—कठिन नही, सरल हो गया । मैं पूछता हूँ इन्द्रियो से, मन से और बुद्धि से काम लेने वाला कौन है ?

'आत्मा !'

इन सबको चलाने वाले आत्मा— जो इस शरीर मे विराजमान है— इसका और भगवान् अनन्तनाथ का स्वरूप एक है । तुम भ्रम मे क्यो पडते हो ?

फिर उससे मिलन कैसे हो ? आप अपनी बुद्धि को, मन को और इन्द्रियो को अलग करके आत्मा और परमात्मा के एकत्व का सुदृढ सकल्प कीजिये । परमात्मा अवश्य मिल जायगा ।

इतने विवेचन से यह तो सिद्ध हुआ कि परमात्मा, आत्मा के द्वारा ही मिल सकता है, इन्द्रियो या मन से नही ।

इन्द्रियो को अलग कर देने का अभिप्राय यह नही है कि आँखें फोड ली जाएँ या कान मूँद लिये जाएँ । इन इन्द्रियो के बहकाने मे न आना ही इन्द्रियो को अलग कर देना है । इन्द्रियाँ किस प्रकार बहकाती है यह समझ लीजिए ।

आप इन्द्रियो के स्वामी है या दास हैं ? आप भले चुप हो, मगर उत्तर देंगे तो यही देंगे हम स्वामी हैं । अगर

आप इन्द्रियों के सचमुच स्वामी हैं तो जीभ से कहिए कि तू परमात्मा का भजन किया कर। कान से कहिए तू परमात्मा का भजन सुन। मन से कह दीजिए कि तू इन्द्रियों को बहका मत।

बेचारी इन्द्रिया भी क्या करें? उनको बहकाने वाला भी तो मन है। अगर आप कहते हैं कि--हाँ, बात बुरी है। हम जानते हैं, किन्तु छूटती नही। तो आप मन के गुलाम ही हुए न? तुम मन के स्वामी हो या मन तुम्हारा स्वामी है, अब यह विचार देखो। इस सम्बन्ध मे एक दृष्टान्त लीजिए :—

किसी बादशाह के पास एक दिलखुश गुलाम था। बादशाह को हमेशा खुश रखना उसका काम था। गुलाम ने बादशाह को ऐसा मोहित किया कि बादशाह उसी के अधीन हो गया। गुलाम समझ गया कि बादशाह मेरे अधीन हो गया है। मैं इसे जैसा नचाऊँगा यह नाचेगा। यह विचार कर गुलाम एक दिन रूठ गया। भक्त तुकाराम ने कहा है :—

रुसला गुलाम, धणी करितो सलाम।
त्याला पैं तारचा चे काम, अधमा सी अधम।

अधम से अधम गुलाम के रूसने पर बादशाह उसे सलाम करे तो हम लोग उसकी आलोचना करे या नही?

'हाँ!'

बादशाह उस दिलखुश गुलाम को मनाने गया। गुलाम

बादशाह को आया देख और अधिक रूठ गया। बादशाह कहने लगा—बेटा, प्यारे, तू नाराज क्यों है ? मैं तुझे रूठा नही देख सकता। तू जो कहे, देने को तैयार हूँ।

गुलाम ने सोचा—रूठने से मान बढता है। वह और ज्यादा रूठ गया। बादशाह ने उसे अपनी गोद मे बिठलाया और अपने गले का कठा उसके गले मे पहना दिया। फिर कहा— जा, अमुक अमुक गाँव जागीरी मे देकर तुझे नवाब बनाया। गुलाम ने विचार किया—इतना रूसने से नवाब बन गया तो थोडा और रूसने पर शायद बादशाह बन जाऊँगा !

इस प्रकार बादशाह गुलाम को समझा रहा है और गुलाम अकडता ही जा रहा है। उधर वजीर जब दरबार मे आया तो उसने तख्त खाली देखकर किसी सरदार से बादशाह के विषय मे पूछा। उसे मालूम हुआ कि बादशाह सलामत गुलाम को मनाने गये हैं। वजीर को बादशाह की बुद्धि पर तरस आया और वह बादशाह के पास पहुंचा। बादशाह ने वजीर से कहा— देखो, यह रूस गया है। मैंने जागीर देने तक के लिए कह दिया, फिर भी यह राजी नही होता।

वजीर बोला— बादशाह सलामत, यह जिस बात से समझने वाला है, वह बात मुझे मालूम है। आप चलकर तख्त पर बैठिये। मैं इसे अभी समझाये देता हूँ। यह अभी

खुश हो जायगा और आपके पैरों मे पडेगा ।

गुलाम मन ही मन कहने लगा-- चला है मुझे समझाने ! मैं समझूंगा ही नही । देखे यह क्या करता है ।

बादशाह चला गया । इधर वजीर ने हाथ मे कोड़ा लेकर कहा— बोल, समझता है कि नही ? मगर गुलाम तो गुलाम ही ठहरा । जब बादशाह से ही न समझा तो सीधी तरह वजीर से कब समझने वाला था ? जब वजीर ने देखा कि यह यो न मानेगा तो उसने कोडे फटकारने शुरू किये । वजीर कोड़ा मारता जाता था और कहता जाता था कि खुश हो, खुश हो । खबरदार जो रोया ! तू खुश होकर बादशाह के पास चल और उनसे कह दे कि मैं खुश हूँ ।

कोडे खाकर गुलाम की अक्ल ठिकाने आ गई । वह बादशाह के पास दौडकर गया और कहने लगा--मैं बहुत खुश हूँ ।

बादशाह ने वजीर की प्रशसा करके पूछा— तुमने इसे क्या दिया ?

वजीर—इसे जिस चीज की आवश्यकता थी वही ।

बादशाह— उसका कुछ नाम भी तो होगा ?

वजीर—यह गुलाम हैं । खुशामद करने से सिर चढते और बिगडते हैं । उन्हे कोडो की जरूरत रहती हैं । कोड़े देने से यह खुश हो गया ।

बादशाह—दरअसल मैंने गलती की थी ।

आप यह तो समझ गये होंगे कि गुलाम के रूसने पर

बादशाह को उसे मनाने की आवश्यकता नही थी। मगर इस दृष्टान्त के असली आशय पर आप ध्यान दीजिए। आपका मन आपका गुलाम है और आप बादशाह हैं। यह मन आपको सलाम करे या आप मन को सलाम करे? कौन किसके आगे घुटने टेके?

मराठी भाषा मे जो कविता कही थी, उसका अर्थ समझाने को बहुत समय की आवश्यकता है। सिर्फ इतना कहना चाहता हूँ कि आप मन के गुलाम बनकर सुख-चैन चाहते हैं। आपसे रग-रगीले वस्त्रो की और बीडी-सिगरेट आदि की भी गुलामी नही छूटती है। आखिर इस गुलामी को कहाँ तक भुगतोगे, कुछ पता है? बीडी पीने से ताकत आती है? देश या समाज का कुछ भला होता है? आप कहेगे—नही, पर मन नही मानता। तो आप मन के गुलाम ही हुए न? अगर आज बीड़ी पीने का त्याग करने की हिम्मत करो तो मैं समझूँगा कि मन की थोडी-सी गुलामी तो छोडी!*

मित्रो! ऐसी बातें छोटी मालूम होती हैं, पर गहराई से विचार करो तो मालूम होगा कि यह आपकी कसौटी है। जो पूरी तरह मन का गुलाम है उसकी आत्मा किस प्रकार शुद्ध हो सकती है? मन की गुलामी के कारण आज

---

*बहुत-से श्रोताओं ने हाथ ऊचे करके बीडी पीने का त्याग करने की सूचना दी।

बोलने-चालने और खाने पीने तक का भान नही रह गया है। यह खट्टे-मीठे और चरचरे बाजारू पदार्थ आप इसी गुलामी के वशीभूत होकर ही खाते हैं। उन्हे खाकर ब्रह्मचर्य का पालन कैसे किया जा सकता है ? अगर आप स्वादों की गुलामी छोड़ें, तो मन की गुलामी छूटे और मन की गुलामी छूटे तो मन वशीभूत हो। मन वशीभूत हो तो आत्मा का चिन्तन करने की भावना उत्पन्न हो और तब परमात्मा की पहिचान हो। अगर आप इतना कर लेंगे तो परमात्मा को पहचानना तनिक भी कठिन न होगा। अपने आपको सही रूप मे पहचान लेना ही परमात्मा को पहचान लेना है। आपमे यह शक्ति आवे, यही मेरी शुभ कामना है।

१५-श्री धर्मनाथजी

प्रार्थना ।

धरम जिनेश्वर मुझ हिवडे बसो, प्यारो प्राण समान ।
कबहुं न विसरूँ हो चितारूँ नही, सदा अखडित ध्यान ॥१॥

ज्यूँ पनिहारी कुम्भ न विसरे, नटवो नृत्य निदान ।
पलक न विसरे हो पदमनी पियु भणी, चकवी न विसरे भान ॥२॥

ज्यूँ लोभी मन धन की लालसा, भोगी के मन भोग ।
रोगी के मन मानो औषधी, जोगी के मन जोग ॥३॥

इण पर लागी हो पूरण प्रीतडी, जावे जीव परियन्त ।
भव-भव चाहूँ हो न पड़े आतरो, भव भजन भगवत ॥४॥

काम-क्रोध मद मत्सर लोभथी, कपटी कुटिल कठोर ।
इत्यादिक अवगुण कर हूँ भर्यो, उदय कर्म के जोर ।५॥

तेज प्रताप तुम्हारो प्रगटे, मुज हिवडा मे आय ।
तो हूँ आतम निज गुण सभालने, अनन्त बली कहिवाय ॥६॥

'भानू' नृप 'सुव्रता' जननी तणो, अङ्गजात अभिराम ।
'विनयचन्द' ने वल्लभ तू प्रभु, सुध चेतन गुण धाम ॥७॥

धर्म जिनेश्वर मुझ हिवडे बसो,
प्यारा प्राण समान

वास्तव मे प्रेम के बिना कोई काम नही हो सकता। प्रेम के प्रभाव से कठिन से कठिन काम सरल हो जाते हैं और प्रेम के अभाव मे छोटा सा काम भी पहाड सरीखा जान पडता है। प्रेम के बिना भक्ति-मार्ग मे भी प्रवेश करना कठिन है। अतएव आज प्रेम के सम्बन्ध मे ही कुछ विचार प्रकट किये जाते हैं।

प्रेम ने ससार मे क्या-क्या क्रान्तिया की हैं, इसने कैसे-कैसे विकट मार्गों को सरल बना दिया है, इसके उदाहरण कम नही हैं। शास्त्र के उदाहरणो को तो लोग प्राय यो ही उडा देते हैं, परन्तु प्रेम के प्रखर विचार के उदाहरण इतिहास मे भी कम नही हैं। आधुनिक समय के भी ऐसे उदाहरण मिलेंगे जिनसे प्रतीत होगा कि प्रेम के कारण कठिन से कठिन कार्य भी सरल हो जाते है।

एक अत्यन्त सुकुमार स्त्री का वन मे जाना क्या सरल कार्य है ?

'नही !'

परन्तु प्रेम के प्रभाव से वन को जाना भी उसे आनन्द-दायक मालूम हुआ और घर मे रहना अग्नि मे रहने के समान जान पडा। राम को वन मे जाना आवश्यक था, मगर सीता को किसी ने वन जाने के लिए नही कहा था। बल्कि

कौशल्या के कहने पर राम ने सीता को समझाया भी था कि तुम घर पर ही रहो। मगर सीता को राजप्रासाद अग्नि के समान सतापजनक और वन स्वर्ग के समान सुखदायी प्रतीत हुआ।

प्रेम की लीला निराली है। पर भोग की गन्दी प्रथा का नाम प्रेम नही है। प्रेम एक अलौकिक वस्तु है। जिसके हृदय मे प्रेम होता है वह सुख को तिलाजलि दे देता है और दुःख को प्रिय मानता है। इसी कारण कवि ने कहा है—

अद्भुन अनूप ऐसी यह प्रेम की कली है,
दुगम विपिन के कष्टों को इसने सुख बनाया।
दमयती द्रौपदी ने सीता ने है लखाया,
सीने पै शैल सहकर सौमित्र ने बताया।
भाई के हेतु जिसने निज प्राण तन लगाया,
मिलती उसे सजीवन क्या मौत की चली है,
अद्भुत अनूप ऐसी यह प्रेम की कली है॥

इस कविता पर पूरी तरह विचार किया जाय तो वह बहुत लम्बा होगा। इस समय सिर्फ इतना कहना ही पर्याप्त है कि इस प्रेम की कली ने वन के घोर दुखो को आनन्द की लहर के रूप मे परिणित कर दिया है। द्रौपदी, सीता मदनरेखा और कमलावती को इसी कली ने मुग्ध बनाया था। उन पर प्रेम का रग छा गया था। इस कारण इन्हे सब दुख, सुख हो गये।

तात्पर्य यह है कि परमात्मा का नाम प्रेम से लेना चाहिए, बाजारू तौर से नही अर्थात् लौकिक स्वार्थ से नही। यह प्रेम अलौकिक वस्तु है। यह बाजारू भाव से नही मिल सकता। इसे वही पा सकता है जो शीष उतार कर रख सकता है।

प्रेम न वाडी नीपजे, प्रेम न हाट विकाय।
शीश उतार्या वो मिले, दिल चाहे ले जाय॥

प्रेम न किसी बगीचे मे पैदा होता है और न बाजार मे बिकता है। प्रेम प्रेमी के हृदय मे उत्पन्न होता है। वह उसी को मिलती है जो अपने जीवन को उस पर न्यौछावर कर दे।

आप कहेंगे प्रेम क्या भैरव-देव है जो जीव की बलि लेता है? नही, प्रेम मे यह बात नही है। प्रेम केवल परीक्षा लेता है कि अगर तुझे अपने शरीर से मोह नही है तो मेरे पास आ। प्रेम सिर को काट कर पृथक् करने के लिए नही कहता है, वह सिर्फ यही आदेश देता है कि तुम्हारे सिर पर पाप रूपी जो सुख है उसे उतार कर फेंक दो! मैंने अभी जो प्रार्थना की है, वह समझने योग्य है।

धर्म जिनेश्वर मुझ हिवडे बसो, प्यारा प्राण समान।
कबहु न विसरू चितारू नही, सदा अखण्डित ध्यान।

अर्थात्—मुझको और किसी चीज की जरूरत नही है, केवल तू अखण्ड रूप से मेरे हृदय मे बस। हे धर्मजिनेश्वर!

ध्यान बास पर लगा रहता है, इसी तरह मेरा ध्यान तुझमे लग जाय !

मित्रो ! परमात्मा के ऐसे ध्यान के भूखे हम भी हैं। आप भी इसकी आकाक्षा रक्खो। इस पर किसी का ठेका नही है। कौन जाने किसे इसकी प्राप्ति हो जाय ? जिसमे प्रबल भावना होगी वही इसे पा लेगा।

पलक न विसरे हो पद्मणी पिऊ भणी,
चकवी न विसरे भाण ✻✻ ॥

भक्त कहते हैं कि हमारा प्रेम परमात्मा से ऐसा हो जैसा पतिव्रता स्त्री का प्रेम अपने पति से होता है। जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री खाना-पीना, पहनना आदि गृहकार्य करती हुई भी अपने पति को विस्मृत नही करती, बल्कि उसके अन्तःकरण से निरन्तर पतिप्रेम की विमल धारा प्रवाहित होती रहती है उसी प्रकार मेरे हृदय से भी परमात्मप्रेम का पावन प्रवाह बहता रहे। एक क्षण के लिए भी वह प्रवाह बन्द न हो— क्षण भर भी मैं परमात्मा को विस्मृत न होने दू।

पतिव्रता अपने पति को किस प्रकार चाहती है, इसकी साक्षी जड पदार्थ भी देने लगते हैं। सीता ने अपनी अग्नि-परीक्षा के समय अग्नि से कहा था— 'हे अग्नि ! तेरा

✻✻ भाण (भानु)— सूर्य।

स्वभाव भस्म करने का है। अगर मेरे हृदय से राम का ध्यान दूर हुआ हो और दूसरे पुरुष को मैंने पुरुष के रूप में देखा हो तो तू मुझे जलाकर भस्म कर दे।' पर क्या अग्नि ने सीता को जलाया ?

'नही।'

बल्कि उसने साक्षी दी कि तेरा पतिव्रत धर्म अखडित है। सीता की आज्ञा को पतिव्रत धर्म के प्रभाव से अग्नि ने स्वीकार किया। जब पतिप्रेम की यह सीमा है तो परमात्मा के प्रेम की क्या सीमा होनी चाहिए ?

पतिव्रता स्त्रियाँ यह नही सोचती कि पति की याद में ही बैठी रहें तो ससार कैसे चलेगा ? ऐसा सोचकर वे पतिप्रेम से वचित नही रहती। इसी प्रकार आप भी परमात्मा के प्रेम मे डूब जाओ। ससार के कार्यों का जो होना होगा, हो जायगा।

पर लोगो मे इतनी आस्था नही है। वे सोचते हैं—ईश्वर के प्रेम मे लगे रहें तो फिर ससार का कार्य कब और कैसे करें ? मगर जो लोग ऐसा सोचते हैं वे ईश्वर-प्रेम की महिमा समझ ही नही सके हैं। क्या अपने पति में निरन्तर निष्ठा रखने वाली पतिव्रता के घर का कोई काम बिगड़ जाता है ? उसका घर उजड जाता है ?

'नही।'

क्योंकि उसे विश्वास है कि मेरा ध्यान पति मे रहने

तेरा ध्यान कभी भग न हो। तेरी याद न भूल जाय, इस तरह से मेरे हृदय मे तू बस। मैं यह नही चाहता कि तू केवल माला फेरने के समय मुझे याद आए। मैं चाहता हूँ कि तेरा कभी स्मरण ही न करना पडे। जब तू कभी विस्मृत ही न होगा तो स्मरण करने की आवश्यकता ही नही रहेगी।

माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माय।
मनडा तो चहु दिशि फिरै, यह तो सुमिरन नाय।

माला कही फिर रही है और मन कही फिर रहा है। पर ईश्वर इस प्रकार नही मिलता और न यह ईश्वर स्मरण ही कहला सकता है।

भक्त कहते हैं—जैसे सासारिक जीवो की प्रीति ससार के पदार्थों पर होती है, ऐसी ही प्रीति मैं तुझ पर रक्खूँ। जब तक तेरे से मुझे यह नही मिलेगा, मैं तुझे छोड़ूंगा नही।

ज्यों पनिहारी कुम्भ न विसरै, नटवो वृत निवान।

मैं पहले भी कह चुका हूँ कि पनिहारी सिर पर घडे रखे होती है, फिर भी पैर मे चुभा हुआ काँटा निकाल लेती है। क्या मजाल कि घडा गिर जाय! इसे कहते हैं अखण्ड ध्यान! भक्तजनो की भावना यही रहती है कि हमारे पीछे भले दुनियादारी के झगड बने रहे पर मेरा अनन्य ध्यान पनिहारी की तरह तुझ पर ही केन्द्रित रहे।

दत्तात्रेय ने चौवीस गुरु किये थे। अर्थात्—चौवीस

जगह से शिक्षा प्राप्त की थी। एक जगह वे भिक्षा लेने गये। वहाँ एक लडकी ऊखल मे चावल कूट रही थी। एक हाथ मे मूसल लेकर वह चावल कूटती जाती थी और दूसरे हाथ से ऊखल मे पड़े हुए चावलो को चलाती जाती थी। इतने मे उसका छोटा भाई रोता हुआ वहाँ आया। लडकी ने चावल कूटना जारी रक्खा और उसे मुँह से मीठी-मीठी बाते कह कर चुप कर दिया। वह एक हाथ चावल कूटती है, दूसरे हाथ से चावल चलाती है और मुँह मे भाई को प्यार की बातें कह कर बहलाती है। पर क्या मजाल कि उसके दूसरे हाथ को मूसल से कोई चोट पहुंच सके! दत्तात्रेय ने लडकी का यह हाल देखकर सोचा— ध्यान मे यह लगती है या मैं लगता हूँ? यह काम करती हुई भी मूसल पर कैसा ध्यान जमाये है! अगर मेरा ध्यान परमात्मा से इसी तरह लग जाय तो मेरा कल्याण हो जाय।

अपने यहाँ भी कहा है—

ज्यो पनिहारी कुम्भ न बिसरे, नटवो वृत्त निधान।

नट को देखो। दोनो पाँव थाली पर रख कर मुँह और हाथ मे तलवार पकडे हुए रस्सी पर चढकर बाँस पर थाली बढाते बढाते जाता है और बास पर नाभि को टिका-कर कुम्भार के चाक की तरह घुमता है। वह न अपने हाथ-पांव आदि किसी अग को कटने देता है और न बांस से गिरता है। भक्तजनो का कथन है कि जैसे नट का

ध्यान बास पर लगा रहता है, इसी तरह मेरा ध्यान तुझमें लग जाय !

मित्रो ! परमात्मा के ऐसे ध्यान के भूखे हम भी हैं। आप भी इसकी आकांक्षा रक्खो। इस पर किसी का ठेका नही है। कौन जाने किसे इसकी प्राप्ति हो जाय ? जिसमे प्रबल भावना होगी वही इसे पा लेगा।

पलक न विसरे हो पद्मणी पिऊ भणी,
चकवी न विसरे भाण ※ ॥

भक्त कहते हैं कि हमारा प्रेम परमात्मा से ऐसा हो जैसा पतिव्रता स्त्री का प्रेम अपने पति से होता है। जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री खाना-पीना, पहनना आदि गृहकार्य करती हुई भी अपने पति को विस्मृत नही करती, बल्कि उसके अन्तःकरण से निरन्तर पतिप्रेम की विमल धारा प्रवाहित होती रहती है उसी प्रकार मेरे हृदय से भी परमात्मप्रेम का पावन प्रवाह बहता रहे। एक क्षण के लिए भी वह प्रवाह बन्द न हो— क्षण भर भी मैं परमात्मा को विस्मृत न होने दू।

पतिव्रता अपने पति को किस प्रकार चाहती है, इसकी साक्षी जड पदार्थ भी देने लगते हैं। सीता ने अपनी अग्नि-परीक्षा के समय अग्नि से कहा था— 'हे अग्नि ! तेरा

※ भाण (भानु)— सूर्य।

स्वभाव भस्म करने का है। अगर मेरे हृदय से राम का ध्यान दूर हुआ हो और दूसरे पुरुष को मैंने पुरुष के रूप मे देखा हो तो तू मुझे जलाकर भस्म कर दे।' पर क्या अग्नि ने सीता को जलाया ?

'नही।'

बल्कि उसने साक्षी दी कि तेरा पतिव्रत धर्म अखडित है। सीता की आज्ञा को पतिव्रत धर्म के प्रभाव से अग्नि ने स्वीकार किया। जब पतिप्रेम की यह सीमा है तो परमात्मा के प्रेम की क्या सीमा होनी चाहिए ?

पतिव्रता स्त्रियाँ यह नही सोचती कि पति की याद में ही बैठी रहें तो ससार कैसे चलेगा ? ऐसा सोचकर वे पतिप्रेम से वचित नही रहती। इसी प्रकार आप भी परमात्मा के प्रेम मे डूब जाओ। ससार के कार्यों का जो होना होगा, हो जायगा।

पर लोगो मे इतनी आस्था नही है। वे सोचते हैं— ईश्वर के प्रेम मे लगे रहे तो फिर ससार का कार्य कब और कैसे करें ? मगर जो लोग ऐसा सोचते हैं वे ईश्वर-प्रेम की महिमा समझ ही नही सके हैं। क्या अपने पति में निरन्तर निष्ठा रखने वाली पतिव्रता के घर का कोई काम बिगड़ जाता है ? उसका घर उजड जाता है ?

'नही।'

क्योंकि उसे विश्वास है कि मेरा ध्यान पति मे रहने

से मेरा घर सुधरेगा । सुना है, अमेरिका मे एक महिला प्रेम का ही रूप है । वह यद्यपि ८० वर्ष की हो चुकी है तथापि उसके बाल काले ही हैं और वह ३०–३५ वर्ष की जान पड़ती है । ऐसा होने का कारण हो सकता है—एक निष्ठा । आपका शरीर असमय मे ही नष्ट क्यो हो रहा है ? इसलिए कि आप एकनिष्ठा नही रखते । एकनिष्ठ प्रेम से ससार विगड नही सकता । पतिव्रता स्त्री अपने पति मे एकनिष्ठ प्रेम रखती है और वह अपने गृह का कार्य भी व्यवस्थित रखती है । अगर वह बिखरे मन से काम करे अर्थात् एकनिष्ठ न रह सके तो शायद ही ऐसा कर सके ।

एकनिष्ठा के कारण तेज भव्य हो जाता है । एकनिष्ठा रखने वाले की दृष्टि मात्र से रोग झड जाते हैं । लक्ष्मण को जब शक्ति लगी थी तो सबने यही सलाह दी थी कि विशल्या के स्नान का जल इस पर छिड़क दिया जाय तो मूर्छा दूर हो जायगी । विशल्या से जब यह कहा गया तो वह स्वय आई और उसने लक्ष्मण की सेवा की । उसका हाथ लगते ही शक्ति भाग गई । अब बताइए शक्ति बडी रही या प्रेम बडा रहा ?

'प्रेम !'

जब पति के प्रेम मे डूब जाने से भी इतना चमत्कार आ जाता है तो ईश्वर-प्रेम मे कितना चमत्कार होना चाहिए ? फिर एकनिष्ठा रखने से ससार कैसे बिगड जायगा ?

अरे ! ससार तो उसी समय सुधर जायगा जिस समय ईश्वर में एकनिष्ठ प्रेम होगा ।

अब इस प्रार्थना के अगले भाग पर ध्यान दीजिए :—

चकवी न विसरे भाण ।

चकवी को सूर्य के प्रकाश के अतिरिक्त दूसरा कोई प्रकाश नही रुचता । इसका कारण है सूर्य के प्रति उसका एकनिष्ठ प्रेम । आपका सूर्य के प्रति एकनिष्ठ प्रेम नही है, इसलिए आपको बिजली की आवश्यकता पड़ती है । आप यह नही सोचते कि बिजली से आपके स्वास्थ्य को कितनी हानि पहुंचती है । आपको भवका चाहिए, इस कारण सूर्य के प्रकाश से आपको सन्तोष नही है । भक्त लोग कहते हैं कि जैसे चकवी सूर्य के प्रकाश के सिवाय दूसरा प्रकाश नही चाहती, उसी प्रकार मैं तेरे सिवाय और किसी को न चाहूँ ।

लोभी के मन धन की लालसा ।

जिस प्रकार लोभी को 'भज कल्दार' का ही ध्यान रहता है, इसी प्रकार हमारी आत्मा का ध्यान तुझमे ही रहे । जैसे लोभी का चक्रवृद्धि ब्याज चलता है, ऐसे ही मेरा ध्यान तुझ पर चलता रहे । अर्थात् जैसे चक्रवृद्धि ब्याज बन्द नही होता, ऐसे ही मेरा ध्यान तेरी ओर से बन्द न हो ।

भोगी के मन भोग ।

जैसे भोगी को भोग की तृष्णा लगी रहती है, टुकड़े-टुकड़े हो जाने पर भी वह भोगो को नही छोडना चाहता,

से मेरा घर सुधरेगा। सुना है, अमेरिका मे एक महिला प्रेम का ही रूप है। वह यद्यपि ८० वर्ष की हो चुकी है तथापि उसके बाल काले ही हैं और वह ३०–३५ वर्ष की जान पड़ती है। ऐसा होने का कारण हो सकता है—एक निष्ठा। आपका शरीर असमय मे ही नष्ट क्यो हो रहा है? इसलिए कि आप एकनिष्ठा नही रखते। एकनिष्ठ प्रेम से ससार बिगड नही सकता। पतिव्रता स्त्री अपने पति में एकनिष्ठ प्रेम रखती है और वह अपने गृह का कार्य भी व्यवस्थित रखती है। अगर वह बिखरे मन से काम करे अर्थात् एकनिष्ठ न रह सके तो शायद ही ऐसा कर सके।

एकनिष्ठा के कारण तेज भव्य हो जाता है। एकनिष्ठा रखने वाले की दृष्टि मात्र से रोग झड जाते हैं। लक्ष्मण को जब शक्ति लगी थी तो सबने यही सलाह दी थी कि विशल्या के स्नान का जल इस पर छिड़क दिया जाय तो मूर्छा दूर हो जायगी। विशल्या से जब यह कहा गया तो वह स्वय आई और उसने लक्ष्मण की सेवा की। उसका हाथ लगते ही शक्ति भाग गई। अब बताइए शक्ति बड़ी रही या प्रेम बडा रहा?

'प्रेम!'

जब पति के प्रेम मे डूब जाने से भी इतना चमत्कार जाता है तो ईश्वर-प्रेम मे कितना चमत्कार होना ।हिए? फिर एकनिष्ठा रखने से संसार कैसे बिगड जायगा?

अरे ! ससार तो उसी समय सुधर जायगा जिस समय ईश्वर मे एकनिष्ठ प्रेम होगा ।

अब इस प्रार्थना के अगले भाग पर ध्यान दीजिए :—

चकवी न विसरे भाण ।

चकवी को सूर्य के प्रकाश के अतिरिक्त दूसरा कोई प्रकाश नही रुचता । इसका कारण है सूर्य के प्रति उसका एकनिष्ठ प्रेम । आपका सूर्य के प्रति एकनिष्ठ प्रेम नही है, इसलिए आपको बिजली की आवश्यकता पड़ती है । आप यह नही सोचते कि बिजली से आपके स्वास्थ्य को कितनी हानि पहुंचती है । आपको भवका चाहिए, इस कारण सूर्य के प्रकाश से आपको सन्तोष नही है । भक्त लोग कहते हैं कि जैसे चकवी सूर्य के प्रकाश के सिवाय दूसरा प्रकाश नही चाहती, उसी प्रकार मैं तेरे सिवाय और किसी को न चाहूँ ।

लोभी के मन धन की लालसा ।

जिस प्रकार लोभी को 'भज कल्दार' का ही ध्यान रहता है, इसी प्रकार हमारी आत्मा का ध्यान तुझमे ही रहे । जैसे लोभी का चक्रवृद्धि ब्याज चलता है, ऐसे ही मेरा ध्यान तुझ पर चलता रहे । अर्थात् जैसे चक्रवृद्धि ब्याज बन्द नही होता, ऐसे ही मेरा ध्यान तेरी ओर से बन्द न हो ।

भोगी के मन भोग ।

जैसे भोगी को भोग की तृष्णा लगी रहती है, टुकड़े-टुकडे हो जाने पर भी वह भोगों को नही छोडना चाहता,

इसी प्रकार भले मेरे टुकड़े-टुकड़े हो जाएँ, परन्तु तुझमे प्रेम न हटे ।

रोगी के मन मानै औषधि ।

बीमार को दवा दो तो बुरी लगेगी ?

'नही ।'

बल्कि उसे प्यारी लगेगी । औषध लेकर वह शान्ति पाता है । औषध शान्तिदायक प्रतीत होती है । इसी प्रकार भक्तजन कहते हैं— हे प्रभो ! तू मेरे लिए शान्ति-रूप बन जा । जैसे रोगी को दवा प्यारी लगती है, ऐसे ही तू मुझे प्रिय लग ।

जोगी के मन जोग ।

जिस प्रकार योगी समाधि मे लीन होकर किसी और की याद नही करता इसी प्रकार तू मुझे याद रह ।

भक्तो ने भगवान् से यह प्रार्थना की है । प्रार्थना सबकी एक है । आप सब मेरे साथ बोलिए :—

धर्म जिनेश्वर मुझ हिवडे बसो,
प्यारा प्राण समान ॥

[ख]

धर्म जिनेश्वर मुझ हिवडे बसो ।

भगवान् के अनेक नामो मे से कौन-सा भी नाम लेकर प्रार्थना की जाय, उसका प्रयोजन तो परमात्मपद की प्राप्ति करना ही होता है । परमात्मपद कहाँ से आता है और कैसे

प्राप्त होता है, यह समझ लेने की आवश्यकता है। मैं कह चुका हूँ कि परमात्मा कही दूर नही है। उसे खोजने के लिए कही बाहर भटकने की आवश्यकता भी नही है। परमात्मा का मन्दिर कहाँ है, यह और कही न खोज कर आत्मा मे ही खोजो। इन्द्रियाँ अल्प हैं और उनका स्वामी इन्द्र अर्थात् आत्मा महान् है। महान् शक्ति को पहचानने के लिए अल्पशक्ति पर ध्यान देना पडता है। परन्तु आत्मा महाशक्ति है, इसका पता कैसे लगे ?

मैंने रसायन जानने वालो से सुना है कि शक्कर का एक तोला सत तीन सौ या पाँच सौ तोला शक्कर की मिठास के बराबर होता है। लोग समझते होगे कि शक्कर का वह सत शक्कर से निकाला गया होगा। परन्तु वास्तव मे वह शक्कर से नही निकाला जाता, बल्कि एजिन आदि मे जले हुए कोयले की जो राख फेंक दी जाती है, उससे निकलता है। एक जर्मन डाक्टर रसायन खोज रहा था। उसने इस कूडे करकट की छानबीन की कि इसमे भी कोई वस्तु है या नही ? सयोग से उसी कूड-करकट मे शक्कर का सत निकला। डाक्टर को पता नही था कि इसमे से शक्कर का सत निकला है। वह यो ही भरे हाथो भोजन करने बैठा। रोटी उसे मीठी लगी। उसने पूछा— क्या रोटी मे मीठा मिलाया है ? रसोइये ने कहा— नही तो, जैसी रोटियाँ रोज बनाता हूँ वैसी ही आज भी बनाई हैं।

डाक्टर ने अपना हाथ चाटा तो उसे अपना हाथ मीठा लगा। उसने हाथ धोकर फिर चाटा तो हाथ फिर भी मीठा लगा। तब डाक्टर समझ गया कि इस कचरे मे रसायन है। उसने जाकर अनुसन्धान किया तो वह शक्कर का सत निकला। क्या आप अनुमान कर सकते हैं कि कूडा करकट मे मिठास मौजूद है।

'नही।'

कूडे करकट को चखने से मिठास मालूम होती है ?

'नही !'

परन्तु रासायनिक विश्लेपण से विदित हुआ कि उसमे भी मिठास है। इसी प्रकार आत्मा की खोज करने की आवश्यकता है। उसमे परमात्मा अवश्य मिलेगा।

आंख, कान आदि को इन्द्रिय-प्राण कहा जाता है। पर ये बिखरे हुए हैं। जब इस बिखरी हुई अल्पशक्ति के द्वारा इतना आनन्द मिलता है तो इनके स्वामी इन्द्र मे कितनी शक्ति होगी और उसके द्वारा कितना आनन्द प्राप्त होगा, इसका विचार तो करो ! आप लोग राख अर्थात् इन इन्द्रियो पर ही प्रसन्न हो गये हैं, परन्तु इस राख के भीतर विद्यमान रसायन अर्थात् आत्मा को नही पहचान सके हैं। परमात्मा को आप पुकारते हैं, उसे पहचानना चाहते हैं, परन्तु खोजते नही हैं। यदि इन्द्रियो को वश मे करके, इन्द्रियो के स्वामी आत्मा को पहचानने का काम करो तो परमात्मा

से भी पहचान हो जाय।

मैं कह चुका हूँ कि आत्मा स्वामी है और इन्द्रियाँ, मन तथा बुद्धि उसके सेवक हैं। आत्मा की आज्ञा से इन्द्रियाँ काम करती हैं। आँख देखने का काम करती है, परन्तु देखने-देखने मे बड़ा अन्तर है। कोई नाटक और सिनेमा मे रात बिताते हैं और दूसरे, जो आत्मा के खोजी हैं, इन्द्रियो के स्वरूप को भूल कर अद्भुत आत्मा का रूप देखते हैं। रात मे जगते दोनो हैं और देखते भी दोनो हैं, पर एक नाटक देखता है और दूसरा ईश्वर को देखता है। आप इन दोनों मे से किसे देखना पसन्द करते हैं?

'ईश्वर को।'

लोग चाहते यही हैं, परन्तु मक्खी को मिश्री की डली मिल जाने पर भी वह न मालूम क्यो अशुचि पर चली जाती है?

आप यह न समझ लें कि इन्द्रियो से ईश्वर देखा जा सकता है। ईश्वर इन्द्रियो से नही मिलेगा, बल्कि इन्द्रियों को वश मे करने से मिलेगा। सर्वप्रथम यह निश्चय कर लेना चाहिए कि परमात्मा हमारे हृदय मन्दिर मे ही बसता है और सच्चे तत्त्वो को पहचानने से ही वह दिखाई दे सकता है। गीता मे कहा है—

इन्द्रियाणि पराण्याहु।

इन्द्रिय और इन्द्रिय के विषय अलग अलग वस्तुएँ हैं।

ठडी या गर्म वस्तु अलग है और उसका स्पर्श करने वाली इन्द्रिय अलग है। अब दोनो मे बडा कौन है?

'इन्द्रिय!'

शास्त्र कहता है कि स्पर्श से, इन्द्रिय बडी है और इन्द्रिय से मन बड़ा है। मन बहुत चालाक है और यही इन्द्रियो को इधर-उधर लगाता है। परन्तु इस मन से भी बड़ी बुद्धि है और बुद्धि से भी जो परे है वह आत्मा और ईश्वर एक है।

आप मुँह से कहते है कि पदार्थ छोटे और इन्द्रिय बड़ी है, परन्तु वास्तव मे आप लोग पदार्थ को बडा समझकर उन्ही को प्रधानता देते हैं। आप पदार्थों को इन्द्रिय से तुच्छ समझते हो, यह जानते हो कि यह पदार्थ इन्द्रियो से कम कीमती हैं, इनके खाने, सूघने और देखने आदि से इन्द्रियो का नाश होगा, फिर भी पदार्थो के पीछे लगे रहते हो! तुच्छ के बदले महान् का नाश करते समय आपका विवेक कहा चला जाता है? कालीदास कवि ने कहा है—

अल्पस्य हेतोर्बहु दातुमिच्छन्,
विचारमूढ प्रतिभासि मे त्वम्।

अर्थात्—जो अल्प के लिए बहुत का नाश करता है वह मूढ है।

व्यवहार मे आप मान लेते हैं कि आत्मा की चाहे जो गति हो, हमे तो गहने और कपड़े बढिया मिलने चाहिए।

इन चीजो के लिए नरक जाना पडे तो भी कोई परवाह नही ।

आप हीरे की अपेक्षा कान को बडा समझते है, फिर भी अगर हीरो के लिए कानो को नष्ट करो तो आपको क्या समझा जाय ? आप नही जानते कि हम अपने ही हक मे क्या कर रहे हैं, इसी से भ्रम मे पडे हुए हैं। आपने आत्मा को विस्मृत करके इन्द्रिय, मन और बुद्धि को खाना-पान आदि मे लगा रक्खा है। इसी कारण परमात्मा को पहचानने मे भूल हो रही है।

मेरा आशय यह नही है कि भोजन किया ही न जाय। धर्म और भक्ति की साधना के लिए शरीर की रक्षा आवश्यक है और वह भोजन के बिना नही हो सकती। मगर खाने का उद्देश्य सही होना चाहिए। कई लोग खाने के लिए जीते हैं और कई जीने के लिए खाते हैं।

इनमे से आप किसे अच्छा समझेंगे ? निस्सन्देह आप जीने के लिए खाने वाले को अच्छा समझेंगे। इसका आशय यही हुआ कि भोजन करने का उद्देश्य जीवन को कायम रखना ही होना चाहिए। परन्तु आज उलटी ही बात दिखाई दे रही है। तरह-तरह की मिठाइयाँ, चटनियाँ और आचार आदि का आविष्कार किस उद्देश्य से हुआ है ? इसीलिए तो कि लोग खाने के लिए जी रहे हैं और इन चीजों के सहारे खूब खाया जा सकता है।

कपडों के विषय मे भी यही बात दिखाई देती है। शरीर की रक्षा के बदले आज कपडे शृंगार के साधन बन गये हैं।

ऐसी बहिर्दृष्टि जब तक आपकी बनी रहेगी तब तक आप अन्तर्दृष्टि प्राप्त नही कर सकते। अगर आप इन्द्रियो को और मन को वश मे करोगे, इन्हे पदार्थों से श्रेष्ठ मानोगे तो आत्मा प्रसन्न रहकर गति पकड़ेगी।

जिस हृदय में काम, क्रोध, मोह, मात्सर्य आदि का निवास है, उसमे परमात्मा का ध्यान नही टिक सकता। आप चौवीस घंटो में एक भी खोटा विचार न आने दीजिए और पन्द्रह दिनों तक ऐसी ही सावधानी एव सतर्कता रखिए। फिर देखिए कि आत्मा मे कैसी शक्ति आती है! जब तक मन की बिजली बिखरी रहेगी, परमात्मा नही मिलेगा। अतएव मन की बिजली को एकत्रित करो। अगर यह सोचते होओ कि मन को स्थिर रखने के लिए कोई अवलम्बन होना चाहिए तो मैं कहता हूँ—

धर्म जिनेश्वर मुझ हिवडे वसो,
प्यारा प्राण समान

१६-श्री शान्तिनाथजी

प्रार्थना ।

'विश्वसेन' नृप 'अचला' पटरानी,
तस सुत कुल सिणगार हो सुभागी ।
जनमत शान्ति करी निज देश मे,
मरी मार निवार हो सुभागी ॥१॥

शान्ति जिनेश्वर साहिब सोलमा,
शान्तिदायक तुम नाम हो सुभागी ।
तन मन वचन सुध कर ध्यावता,
पूरे सघली आस हो सुभागी ।२॥

विघन न व्यापे तुम सुमरन कियां,
नासे दारिद्र दुःख हो सुभागी ।
अष्ट सिद्धि नव निद्धि पग-पग मिले,
प्रगटे सघला सुख हो सुभागी ॥३॥

जेहने सहायक शान्ति जिनन्द तू,
तेहने कमीय न काय हो सुभागी ।
जे-जे कारज मन मे तेवड़े,
ते-ते सफला थाय हो सुभागी ॥४॥

दूर दिसावर देश प्रदेश मे,
भटके भोला लोग हो सुभागी ।
सानिधकारी सुमरन अपरो,
सहज मिटे सहू शोक हो सुभागी ।५।।

आगम-साख सुणी छे एहवी
जे जिण सेवक होय हो सुभागी ।
तेहनी आशा पूरे देवता,
चौसठ इन्द्रादिक सोय हो सुभागी ।।६।।

भव-भव अन्तरजामी तुम प्रभु,
हमने छे आधार हो सुभागी ।
बेकर जोड 'विनयचन्द' विनवे,
आपो सुख श्रीकार हो सुभागी ।।७।।

विश्व के असख्य प्राणी निरतर प्रवृत्ति मे रत रहते हैं । अगर सामान्य रूप से उनकी प्रवृत्तियो के मूल उद्देश्य को खोजा जाय तो इसी परिणाम पर पहुंचना होगा कि सभी प्राणी शान्ति प्राप्त करने के एक मात्र ध्येय की पूर्ति करने के लिए उद्योग मे लगे हैं । जिसके पास धन नही है या कम है वह धन प्राप्ति के लिए आकाश-पाताल एक करता है । जिसे मकान की आवश्यकता है वह मकान खडा करने के लिए नाना प्रयत्न करता है । जिसके हृदय मे सत्ता की भूख जागी है वह सत्ता हथियाने की चेष्टा कर रहा है । इस प्रकार प्राणियो के उद्योग चाहे भिन्न-भिन्न हो पर उन सब । एक मात्र

उद्देश्य शान्ति प्राप्त करना ही है। यह बात दूसरी है कि अधिकाश प्राणी वास्तविक ज्ञान न होने के कारण ऐसे प्रयत्न करते हैं कि उन्हे अपने प्रयत्नो के फलस्वरूप शान्ति के बदले उलटी अशान्ति ही प्राप्त होती है, लेकिन अशान्ति कोई चाहता नही। चाहते हैं सभी शान्ति।

शान्ति के लिए प्रयत्न करने पर भी अधिकाश प्राणियो को अशाति क्यो प्राप्त होती है, इसका कारण यही है कि उन्होने शान्ति के यथार्थ स्वरूप को नही समझा है। वास्तविक शान्ति क्या है? कहाँ है? उसे प्राप्त करने का साधन क्या है? इन बातो को ठीक ठीक न जानने के कारण ही प्राय: शान्ति के बदले अशान्ति पल्ले पड़ती है। अतएव यह आवश्यक है कि भगवान् शातिनाथ की शरण लेकर शाति का सच्चा स्वरूप समझ लिया जाय और फिर शाति प्राप्त करने के लिए उद्योग किया जाय।

भगवान् शान्तिनाथ का स्वरूप समझ लेना ही शाति के स्वरूप को समझ लेना है। गणधरो ने भगवान् शान्तिनाथ के स्वरूप को ऊँचा बतलाया है। उस स्वरूप मे चित्त को एकाग्र करके लगा दिया जाय तो कभी अशान्ति न हो। मित्रो! आओ, आज हम लोग मिलकर भगवान् के स्वरूप का विचार करे और सच्ची शान्ति प्राप्त करने का मार्ग खोजें।

भगवान् शान्तिनाथ के सम्बन्ध मे शास्त्र का कथन है—

चइत्ता भारह वास चक्कवट्टी महड्ढिओ।
सन्ती सन्तिकरे लोए, पत्तो गइमणुत्तरं ॥

यहाँ भगवान् के विषय मे कहा गया है 'सती सती-करे लोए।' अर्थात् शान्तिनाथ भगवान् लोक मे शान्ति करने वाले हैं। वाक्य बडा महत्त्वपूर्ण है। यह छोटा सा वाक्य इतना पूर्ण है कि मानो सब ज्ञान इसी मे समाप्त हो जाता है। शान्ति क्या है और वह किस प्रकार प्राप्त की जा सकती है, इस विषय पर मैं कई बार कह चुका हूँ और आज फिर इसी विषय मे कह रहा हूँ, क्योकि शाति प्राप्त करना ही जगत् के प्राणियो का एकमात्र ध्येय है।

कई लोग विषमभाव मे— पक्षपात मे शान्ति देखते हैं। लेकिन जहा विषमभाव है वहाँ वास्तविक शाति नही रह सकती। वास्तविक शान्ति तो समभाव के साथ ही रहती है।

बहुत-से लोग अपनी कुशल के आगे दूसरे के कुशल की कोई कीमत ही नही समझते। वे दूसरो की कुशल की उपेक्षा ही नही करते वरन् अपनी कुशल के लिए दूसरो की अकुशल भी कर डालते है। उन्हें समझना चाहिए कि शाति प्राप्त करने का मार्ग यह नहीं है। यह तो शाति के घात करने का ही तरीका है। सच्ची शान्ति तो भगवान् शान्ति-नाथ को पहिचानने से ही प्राप्त की जा सकती है। जिस शान्ति मे से अशान्ति का अकुर न फूटे, जो सदा के लिए अशान्ति का अन्त कर दे, वही सच्ची शान्ति है। सच्ची

शान्ति प्राप्त करने के लिए 'सर्वभूतहिते रत' अर्थात् प्राणी मात्र के कल्याण मे रत होना पडता है ।

कुछ लोग दुर्गापाठ आदि करके, होम करके, यहाँ तक कि जीवो का बलिदान तक करके शाति प्राप्त करना चाहते हैं । दु खविपाक सूत्र देखने से पता चलता है कि कुछ लोग तो अपने लड़के का होम करके भी शाति प्राप्त करना चाहते थे । कुछ लोग आज भी पशुबलि, यहाँ तक कि नरबलि में शाति बतलाते हैं । इस प्रकार शाति के नाम पर न जाने कितनी उपाधियाँ खडी कर दा गई हैं । लेकिन गणधरो ने एक ही वाक्य मे वास्तविक शाति का सच्चा चित्र अ कित कर दिया है—

सती सतिकरे लोए ।

नरमेध करने वालो ने नरमेध मे ही शांति मान रखी है । लेकिन नरमेध से क्या कभी ससार मे शांति हो सकती है ? मारने वाला और मरने वाला— दोनो ही मनुष्य हैं । मारने वाला शाति चाहता है तो क्या मरने वाले को शाति की अभिलाषा नही है ? फिर उसे अशाति पहुंचा कर शाति की आशा करना कितनी मूर्खतापूर्ण बात है !

नरमेध करने वाले से पूछा जाय कि तू ईश्वर के नाम पर दूसरे मनुष्य का वध करता है तो क्या ईश्वर तेरा ही है ? ईश्वर मरने वाले का नही है ? अगर मरने वाले से पूछा जाय कि हम ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए तेरा

बलिदान करना चाहते हैं तो वह क्या उत्तर देगा ? क्या वह बलि चढ़ना पसद करेगा ? क्या वह स्वीकार करेगा कि जो इस प्रकार की बलि लेकर प्रसन्न होता है वह ईश्वर है ? और इस बलि का विधान जिसमे किया गया है वह क्या शास्त्र है ? वह तो यही कहेगा कि ऐसी बलि की आज्ञा देने वाला ईश्वर नही हो सकता, कोई हिंसालोलुप अनार्य ही हो सकता है और ऐसा शास्त्र भी किसी अनार्य का ही कहा हुआ है ।

किसी भी जीव का हवन करने से शान्ति प्राप्त नही हो सकती । किसी भी प्राणी को दुख न पहुंचाने से ही वास्तविक शान्ति प्राप्त हो सकती है । आज तो जैनपरम्परा के अनुयायी भी नाना प्रकार से आरम्भ-समारम्भ करते हैं और होम आदि करते हैं मगर उसमे वास्तविक शान्ति नही है । लोगो ने शान्ति प्राप्त करने के उपायो को गलत समझ लिया है और इसी कारण शान्ति प्राप्त करने के लिए यज्ञ, होम आदि करने पर भी सच्ची शान्ति प्राप्त नही होती । सच्ची शान्ति प्र णीमात्र की कल्याण-साधना मे है। किसी का अकल्याण करने मे शाति नही है । भगवान् शान्तिनाथ के नाम पर जो शान्ति-दीपक जलाया जाता है, क्या उसमे अग्नि नही होती ! इस प्रकार अग्नि से लगाया हुआ दीपक शान्तिदीपक नही है । शान्तिदीपक वह है जिसमे ज्ञान से उजाला किया जाता है ।

ऐसी आरती करो मन मेरा,
जन्म मरण मिट जाय देख तेरा ।
ज्ञानदीपक का कर उजियाला,
शांति स्वरूप निहारो तुम्हारा ॥ऐसी॥

मित्रो ! शांतिनाथ भगवान् की आराधना करने का अवसर वार-वार नही मिलता । इसलिए शातिनाथ भगवान् की आराधना करो । अग्नि से दीपक जलाकर 'शाति-शांति' भले करते रहो पर इस उपाय से शातिनाथ को नहीं पा सकते । ज्ञान का दीपक जलाकर उजेला करोगे तो शांतिनाथ भगवान् का स्वरूप स्पष्ट रूप से देख सकोगे । इस बात पर मनन करो और इसे हृदय मे उतार लो तो शांतिनाथ हृदय मे ही प्रकट हो जाएंगे । प्राचीन ऋषियों ने कहा है—

देहो देवालय प्रोक्तो जीवो देव सनातनः ।
त्यजेदज्ञ ननिर्माल्यं, सोऽहं भावेन पूजयेत् ॥

यह देह देवालय है । इसमे आज का नही सनातन का, कृत्रिम नही अकृत्रिम, जीव परमेश्वर है ।

तुम्हारी देह अगर मन्दिर है तो दूसरे जीवों की देह भी मन्दिर है या नही ?

'है !'

यदि केवल अपनी ही देह को मन्दिर माना, दूसरे की देह को मन्दिर नही माना तो तुम पक्षपात मे पड़े होने के

कारण ईश्वर को नही जान सकते । ईश्वर ज्ञानस्वरूप सर्व-व्यापी और सबकी शान्ति चाहने वाला है । अगर आप भी सबकी शान्ति चाहते हैं, सबकी देह को देवालय मानते हैं तो आपकी देह भी देवालय है, अन्यथा नही ।

जिस मकान को देवालय मान लिया, उस मकान के ईंट–पत्थर कोई विवेकी खोदना चाहेगा ?

नही !'

अगर कोई खोदता है तो कहा जायगा कि इसने देवालय की आसातना की । लेकिन जब सभी जीवो के शरीर को देवालय मान लिया तो फिर किसी के शरीर को तोडना-फोडना क्या देवालय को तोडना-फोड़ना नही कहलाएगा ?

मित्रो ! परमात्मा से शान्ति चाहने के लिए दूसरे जीवो को कष्ट पहुंचाना, उसका घात करना कहाँ तक उचित है ? देवालय के पत्थर निकालकर कोई आसपास दीवाल बनावे और कहे कि हम देवालय की रक्षा करते हैं तो क्या यह रक्षा करना कहलाएगा ? इसी प्रकार शान्ति के लिए जीवो की घात करना क्या शान्ति प्राप्त करना है ? शाति तो उसी समय प्राप्त होगी जब ज्ञान दीपक से उजेला करके आत्मा को वैर-विकार से रहित बनाओगे । सर्वदेशीय शाति ही वास्तविक शाति है ।

शांतिनाथ भगवान् की प्रार्थना मे कहा गया है—

श्री शान्तिनाथ जिनेश्वर सायब सोलवां,
जनमत शान्ति करी निज देश में ।
मिरगी मार निवार हो सुभागी ॥
तन मन वचना शुध करि ध्यावता,
पूरे सगली हाम हो सुभागी ।।श्री।।

उन शान्तिनाथ भगवान् को पहिचानो, जिन्होने माता के उदर मे आते ही ससार मे शाति का प्रसार कर दिया था । उस समय की शाति, सूर्योदय से पहले होने वाली उषा के समान थी ।

उषा प्रात काल लालिमा फैलने और उजेला होने को कहते हैं । भगवान् शातिनाथ का जन्मकाल शातिप्रसार का उषाकाल था । इस उषाकाल के दर्शन कब और कैसे हुए, इत्यादि बातें समझाने के लिए शातिनाथ भगवान् का जन्म-चरित सक्षेप मे बतला देना आवश्यक है । जिस प्रकार सूर्योदय की उषा से सूर्य का सम्बन्ध है, उसी प्रकार भगवान् शांतिनाथ के उषाकाल से उनका सम्बन्ध है । अतएव उसे जान लेना आवश्यक है ।

हस्तिनापुर मे महाराज अश्वसेन और महारानी अचला का अखण्ड राज्य था । हस्तिनापुर नगर अधिकतर राजधानी रहा है । प्राचीन काल में उसकी बहुत प्रसिद्धि थी । आज-कल हस्तिनापुर का स्थान देहली ने ले लिया है ।*

*हस्तिनापुर के परिचय के लिए देखिए, किरण १७, (पाडवचरित्र) पृ. ९ ।

भगवान् शान्तिनाथ सर्वार्थसिद्ध विमान से च्युत होकर महारानी अचला के गर्भ में आये। गर्भ मे आते समय महारानी अचला ने जो दिव्य स्वप्न देखे, वे सब उस उषाकाल की सूचना देने वाले थे। मानो स्वप्न मे दिखाई देने वाले पदार्थों मे कोई भी स्वार्थी नही है। हाथी, वृषभ, सिंह और पुष्पमाला कहते हैं कि आप हमे अपने मे स्थान दीजिए। चन्द्रमा और सूर्य निवेदन कर रहे है कि हमारी शाति और तेज, हे प्रभो ! तेरे मे ही है।

उग्गए विमले भाणू।

हे प्रभो ! हमारे प्रकाश से अन्धकार नही मिटता है, अतएव आप ही प्रकाश कीजिए।

उधर फहराती हुई ध्वजा कहती है—मैं तीन लोक की विजयपताका हूँ। मुझे अपनाइये। मगलकलश कहता है—नाम तभी सार्थक है जब आप मुझे ग्रहण कर लें। मानसरोवर कहता है—यह मगलकलश मेरे से ही बना है। मैं और किसके पास जाऊँ ? मैं ससार के मानस का प्रतिनिधि होकर आया हूँ और प्रार्थना करता हूँ कि तू सबके मानस में प्रवेश कर और उसे उज्ज्वल बना। क्षीर सागर कहता है - यह सरोवर तो छोटा-सा है। लेकिन अगर आप मुझे न धारण करेंगे तो मैं कहाँ रहूँगा ? प्रभो ! इस ससार को अमृतमय कर दो। ससार मुझ से अतृप्त है, अत आप उसे तृप्त कीजिए।

इस प्रकार उषाकाल की सूचना देकर भगवान् शान्ति-

नाथ सर्वार्थसिद्ध विमान से महारानी अचला के गर्भ मे आये । सब देवी देवताओ ने भगवान् से प्रार्थना की—प्रभो ! सब लोग अपने-अपने पक्ष मे पड़े हुए हैं । आप ससार का उद्धार कीजिये । हमारे सिर पर भी आशीर्वाद का हाथ फेरिये ।

लोकोत्तर स्वप्नो ने मानो अचला महारानी को बधाई दी । उसके बाद अचला महारानी के गर्भ मे भगवान् का आगमन हुआ । क्रमश. गर्भ की वृद्धि होने लगी ।

जिन दिनो भगवान् शान्तिनाथ गर्भ मे थे, उन्ही दिनो महाराज अश्वसेन के राज्य मे महामारी का रोग फैल गया ।

प्रश्न हो सकता है कि जब भगवान् गर्भ मे आये तो रोग क्यो फैला ? मगर वह रोग नही, उषाकाल की महिमा को प्रकट करने वाला अन्धकार था । जैसे उषाकाल से पहले रात्रि होती है और उस रात्रि से ही उषाकाल की महिमा जानी जाती है, उसी प्रकार वह महामारी भगवान् शाति-नाथ के उषाकाल के पहले ही रात्रि थी । उसका निवारण करने के कारण ही भगवान् 'शातिनाथ' पद को प्राप्त हुए । यद्यपि भगवान् गर्भ मे आ चुके थे और उस समय रोग फैलना नही चाहिए था, फिर भी रोग के फैलने के बाद भगवान् के निमित्त से उसकी शान्ति होने के कारण भगवान् की महिमा का प्रकाश हुआ । इससे भगवान् के आने की सूचना और भगवान् के प्रताप का परिचय उनके माता-पिता

दासियो को भेजने की भूल अवश्य की है ।

समय अधिक हो जाने के कारण भोजन ठडा हो गया था । इस कारण दासियों को दूसरा भोजन बनाने की आज्ञा देकर महारानी अचला स्वय महाराज अश्वसेन के समीप गई ।

महारानी सोच रही थी—पत्नी, पति की अर्धांगिनी है । उसे पति की चिन्ता का भी भाग बांटना चाहिए । जो स्त्री, पति की प्रसन्नता मे भाग लेना चाहती है और चिन्ता मे भाग नही लेना चाहती, वह आदर्श पत्नी नही हो सकती । ऐसी स्त्री पापिनी है ।

महारानी अचला को बाल्यावस्था से ही सुन्दर सस्कार मिले थे । वह अपने पतिधर्म को भलीभाँति समझती थी । इस कारण वह भोजन किये बिना ही महाराज अश्वसेन के समीप पहुंची । वहाँ जाकर देखा कि महाराज अश्वसेन गम्भीर मुद्रा धारण करके ध्यान मे लीन हैं । महारानी ने हाथ जोडकर धीमे और मधुर किन्तु गम्भीर स्वर मे महाराज का ध्यान भग करने का प्रयत्न किया । महारानी का गम्भीर स्वर सुनकर महाराज का ध्यान टूटा । उन्होंने आँख खोलकर देखा तो सामने महारानी हाथ जोड खड़ी नजर आई । महाराज ने इस प्रकार खड़ी रहने और ध्यान भंग करने का कारण पूछा । महारानी ने कहा— आप आज अभी तक भोजन करने नही पधारे । इसका क्या कारण है ?

महाराज सोचने लगे—जिस उपद्रव को मैं दूर नहीं कर सकता, उसे महारानी स्त्री होकर कैसे दूर कर सकती है ? फिर अपनी चिन्ता का कारण कह कर उन्हे दुखी करने से क्या लाभ है ? इस प्रकार विचार कर वह चुप ही रहे। कुछ न बोले।

पति को मौन देख महारानी ने कहा—जान पडता है, आप किसी ऐसी चिन्ता मे डूबे हैं, जिसे सुनने के लिए मैं अयोग्य हूँ। सभवतः इसी कारण आप बात छिपा रहे है। यदि मेरा अनुमान सत्य है तो आज्ञा दीजिए कि मैं यहाँ से टल जाऊँ। ऐसा न हो तो कृपया अपनी चिन्ता का कारण बतलाइए। आपकी पत्नी होने के कारण आपके हर्ष-शोक मे समान रूप से भाग लेना मेरा कर्त्तव्य है।

महाराज अश्वसेन ने कहा—मेरे पास कोई चीज नही है जो तुम से छिपाने योग्य हो। मैं ऐसा पति नहीं कि अपनी पत्नी से किसी प्रकार का दुराव रक्खूँ। मगर मैं सोचता हूँ कि मेरी चिन्ता का कारण सुन लेने से मेरी चिन्ता तो दूर होगी नही, तुम्हें भी चिन्ता हो जायगी। इससे लाभ क्या होगा ?

महारानी—अगर बात कहने से दुख नही मिटेगा तो उदास होने से भी नही मिटेगा। इस समय सारा दुख आप उठा रहे हैं, लेकिन जब आप, अपनी इस अर्धांगिनी से दुःख का कारण कह देंगे तो आपका आधा दुःख कम हो

को मिल गया।

राज्य मे मरी रोग फैलने की सूचना महाराज अश्व-सेन को मिली। महाराज ने यह जानकर कि मरी रोग के कारण लोग मर रहे हैं, रोग को उपशान्ति के अनेक उपाय किये। मगर शान्ति न मिली।

यह मरी लोगो की कसौटी थी। इसी से पता चलता था कि लोग मार्ग पर हैं या मार्ग भूले हुए हैं। यह मरी शान्ति से पहले होने वाली क्राति थी।

उपाय करने पर भी शान्ति न होने के कारण महा-राज बडे दुखी हुए। वह सोचने लगे—'जिस प्रजा का मैंने पुत्र के समान पालन किया है, जिसे मैंने अज्ञान से सज्ञान, निर्धन से धनवान और निरुद्योगी से उद्योगवान् बनाया है वह मेरी प्रजा असमय मे ही मर रही है! मेरा सारा परिश्रम व्यर्थ हो रहा है! मेरे राजा रहते प्रजा को कष्ट होना मेरे पाप का कारण है।' पहले के राजा, राज्य मे दुष्काल पडना, रोग फैलना, प्रजा का दुःखी होना आदि अपने पाप का ही फल समझते थे।

रामायण मे लिखा है कि एक ब्राह्मण का लड़का बचपन मे ही मर गया। ब्राह्मण उस लडके को लेकर रामचन्द्रजी के पास गया और बोला—आपने क्या पाप किया है कि मेरा लडका मर गया?

इस उल्लेख से ज्ञात होता है कि पहले के राजा, प्रजा

के कष्ट का कारण अपना ही पाप समझते थे। इसी भावना के अनुसार महाराज अश्वसेन मरी फैलने को अपना ही दोष मानकर दुःखी हुए। उन्होने एकान्त मे जाकर निश्चय किया कि जब तक प्रजा का दुःख दूर न होगा, मैं अन्न-जल ग्रहण नही करूँगा।

सुदृढ निश्चय मे बड़ा बल होता है। भक्त तुकाराम ने कहा है :—

निश्चयाचा बल तुका म्हणे च फल।

निश्चय के बिना फल की प्राप्ति नही होती।

इस प्रकार निश्चय करके महाराज अश्वसेन ध्यान लगा कर बैठ गये। भोजन का समय होने पर महारानी अचला ने दासी को भेजा कि वह महाराज को भोजन करने के लिए बुला लावे। दासी गई, किन्तु महाराज को ध्यानमुद्रा मे बैठा देखकर वह सहम गई। भला उसका साहस कैसे हो सकता था कि वह महाराज के ध्यान के भङ्ग करने का प्रयत्न करे! वह धीमे-धीमे स्वर से पुकार कर लौट गई। उसके बाद दूसरी दासी आई, फिर तीसरी आई मगर ध्यान भंग करने का किसी को साहस न हुआ। महारानी अचला बार-बार दासियो को भेजने के अपने कृत्य पर पश्चात्ताप करके कहने लगी स्वामी को बुलाने के लिए दासियो को भेजना उचित नही था, स्वयं मुझे जाना चाहिए था। यद्यपि मैंने पति से पहले भोजन करने की भूल नही की है, लेकिन स्वयं उन्हे बुलाने न जाकर

दासियों को भेजने की भूल अवश्य की है।

समय अधिक हो जाने के कारण भोजन ठडा हो गया था। इस कारण दासियों को दूसरा भोजन बनाने की आज्ञा देकर महारानी अचला स्वय महाराज अश्वसेन के समीप गई।

महारानी सोच रही थी—पत्नी, पति की अर्धांगिनी है। उसे पति की चिन्ता का भी भाग बाटना चाहिए। जो स्त्री, पति की प्रसन्नता मे भाग लेना चाहती है और चिन्ता मे भाग नही लेना चाहती, वह आदर्श पत्नी नही हो सकती। ऐसी स्त्री पापिनी है।

महारानी अचला को बाल्यावस्था से ही सुन्दर सस्कार मिले थे। वह अपने पतिधर्म को भलीभांति समझती थी। इस कारण वह भोजन किये बिना ही महाराज अश्वसेन के समीप पहुंची। वहां जाकर देखा कि महाराज अश्वसेन गम्भीर मुद्रा धारण करके ध्यान मे लीन हैं। महारानी ने हाथ जोडकर धीमे और मधुर किन्तु गम्भीर स्वर मे महाराज का ध्यान भग करने का प्रयत्न किया। महारानी का गम्भीर स्वर सुनकर महाराज का ध्यान टूटा। उन्होने आंख खोलकर देखा तो सामने महारानी हाथ जोड खडी नजर आई। महाराज ने इस प्रकार खड़ी रहने और ध्यान भग करने का कारण पूछा। महारानी ने कहा— आप आज अभी तक भोजन करने नही पधारे। इसका क्या कारण है ?

महाराज सोचने लगे—जिस उपद्रव को मैं दूर नही कर सकता, उसे महारानी स्त्री होकर कैसे दूर कर सकती है ? फिर अपनी चिन्ता का कारण कह कर उन्हें दु खी करने से क्या लाभ है ? इस प्रकार विचार कर वह चुप ही रहे। कुछ न बोले ।

पति को मौन देख महारानी ने कहा— जान पडता है, आप किसी ऐसी चिन्ता मे डूबे हैं, जिसे सुनने के लिए मैं अयोग्य हूँ । सभवत इसी कारण आप बात छिपा रहे है । यदि मेरा अनुमान सत्य है तो आज्ञा दीजिए कि मैं यहाँ से टल जाऊँ ! ऐसा न हो तो कृपया अपनी चिन्ता का कारण बतलाइए । आपकी पत्नी होने के कारण आपके हर्ष-शोक मे समान रूप से भाग लेना मेरा कर्त्तव्य है ।

महाराज अश्वसेन ने कहा—मेरे पास कोई चीज नही है जो तुम से छिपाने योग्य हो । मैं ऐसा पति नहीं कि अपनी पत्नी से किसी प्रकार का दुराव रक्खूँ । मगर मैं सोचता हूँ कि मेरी चिन्ता का कारण सुन लेने से मेरी चिन्ता तो दूर होगी नही, तुम्हे भी चिन्ता हो जायगी । इससे लाभ क्या होगा ?

महारानी— अगर बात कहते से दु ख नही मिटेगा तो उदास होने से भी नही मिटेगा । इस समय सारा दु ख आप उठा रहे हैं, लेकिन जब आप, अपनी इस अर्धांगिनी से दुःख का कारण कह देंगे तो आपका आधा दुःख कम हो

जायगा ।

महाराज—तुम्हारी इच्छा है तो सुन लो । इस समय सारी प्रजा महामारी की बीमारी से पीडित है । मुझसे ही कोई अपराध बन गया है, जिसके कारण प्रजा को कष्ट भुगतना पड रहा है । ऐसा न होता तो मेरे सामने प्रजा क्यो दुखी होती ?

महारानी—जिस पाप के कारण प्रजा दुख पा रही है, वह आपका ही नही है मेरा भी है ।

महारानी की यह बात सुनकर महाराज को आश्चर्य हुआ । फिर उन्होने कुछ सोचकर कहा—ठीक है। आप प्रजा की माता हैं । आपका ऐसा सोचना ठीक ही है । मगर विचारणीय बात तो यह है कि यह दु.ख किस प्रकार दूर किया जाय ?

महारानी—पहले आप भोजन कर लीजिए । कोई न कोई उपाय निकलेगा ही ।

महाराज मैं प्रतिज्ञा कर चुका हूँ कि जब तक प्रजा का दुख दूर न होगा, मैं अन्न-जल ग्रहण नही करूँगा ।

महारानी—जिस नरेश मे इतनी दृढता है, जो प्रजा-हित के लिए आत्मबलिदान करने को उद्यत हैं, उसकी प्रजा कदापि दुखी नही रह सकती । लेकिन जब तक आप भोजन नही कर लेते, मैं भी भोजन नही कर सकती ।

महाराज— तुम अगर स्वतन्त्र होती और भोजन न

करती, तब तो कोई बात ही नही थी। लेकिन तुम गर्भवती हो। तुम्हारे भूखे रहने से गर्भ को भी भूखा रहना होगा और यह अत्यन्त ही अनुचित होगा।

गर्भ की याद आते ही अचला महारानी ने कहा—नाथ ! अब मैं महाभारी के मिटाने का उपाय समझ गई। यह महामारी उषा के पूर्व का अन्धकार है। मैं इसे मिटाने का उपाय करती हूँ।

महारानी अचला महल के ऊपर चढ़ गई और अमृत-दृष्टि से चारो ओर देखकर कहने लगी--प्रभो ! यदि यह महामारी शान्त न हुई तो पति जीवित नही रहेगे। पति के जीवित न रहने पर मैं भी जीवित नही रह सकूंगी। और इस प्रकार यह गर्भ भी नष्ट हो जायगा। इसलिए हे महा-मारी ! मेरे पति के लिए, मेरे लिए और इस गर्भ के लिए इस राज्य को शीघ्र छोड़ दे।

उषा के आगे अन्धकार कैसे ठहर सकता है ? महा-रानी के चारो ओर देखते ही महामारी हट गई। उसके बाद महाराज अश्वसेन को सूचना मिली कि राज्य मे शाति हो गई है। महाराज आश्चर्यचकित रह गये। वे महारानी के महल मे आये। मालूम हुआ कि वे महल के ऊपर हैं। महागज वही पहुचे। उन्होने देखा कि अचला महारानी अचल-ध्यान मे खडी है। चारो ओर अपनी दिव्य दृष्टि फिराती हैं, किन्तु मन को नही फिरने देती।

महाराज अश्वसेन ने थोडी देर यह दृश्य देखा। उसके बाद स्नेह की गम्भीरता के साथ कहा—'देवी, शान होओ !

पति को आया जान महारानी ने उनका सत्कार किया। महाराज ने अतिशय सतोष और प्रेम के साथ कहा—समझ मे नही आया कि तुम रानी हो या देवी ? तुम्हारी जितनी प्रशसा की जाय, थोडी है। तुम्हारे होने से हो मेरा बडप्पन है। तुम्हारी मौजूदगी से ही मेरा कल्याण मगल हुआ। तुमने देश मे शान्ति का प्रसार करके प्रजा के और मेरे प्राण की रक्षा की है।

पति के मुख से अपनी अलकारमय प्रशसा सुनकर रानी कुछ लज्जित हुई फिर रानी ने कहा—नाथ ! यह अलकार मुझे शोभा नही देते। ये इतने भारी हैं कि मैं इनका बोझ नही उठा सकती। मुझमे इतनी शक्ति है कहाँ जितनी आप कर रहे हैं ? थोडी सी शक्ति ही तो वह आपकी ही शक्ति है। काच की हडी मे दीपक रखने पर जो प्रकाश होता है वह काच की हडी का नही, दीपक का ही है। इसलिए आपने प्रशसा के जो अलकार मुझे प्रदान किये हैं, उन्हे आभार के साथ मैं आपको ही समर्पित करती हूँ। आप ही इनके योग्य हैं। आप ही इन्हे धारण कीजिये।

महाराज—रानी, यह भी तुम्हारा एक गुण है कि तुम्हें अपनी शक्ति की खबर ही नही ! वास्तव मे जो अपनी शक्ति का घमड नही करता वही शक्तिमान् होता है। जो शक्ति का अभिमान करता है उसमे शक्ति रहती ही नही !

बड़े-बडे ज्ञानी, ध्यानी और वीरो की यही आदत होती है कि वे अपनी शक्ति की खबर भी नही रखते। मैंने तुम्हें जो अलकार दिये हैं उन्हें तुम मेरे लिए लौटा रही हो किन्तु पुरुष होने के कारण मैं उन्हें पहिन नही सकता। साथ ही मुझे खयाल आता है कि वह शक्ति न तुम्हारी है, न हमारी है। हमारी और तुम्हारी भावना पूरी करने वाले त्रिलोकी-नाथ का ही यह प्रताप है। वह नाथ, जन्म धारण करके सारे ससार को सनाथ करेगा। आज के इस चमत्कार को देखते हुए, इन अलकारो को गर्भस्त प्रभु के लिए सुरक्षित रहने दो। जन्म होने पर इनका 'शान्तिनाथ' नाम रक्खेंगे। 'शातिनाथ' नाम एक सिद्ध-मन्त्र होगा, जिसे सारा ससार जपेगा और शाति-लाभ करेगा। देवी, तुम कृतार्थ हो कि ससार को शाति देने वाले शान्तिनाथ तुम्हारे पुत्र होगे।

रानी—नाथ! आपने यथार्थ कहा। वास्तव मे बात यही है। यह अपनी शक्ति नही, उसी की शक्ति है! उसी का प्रताप है, जिसे मैंने गर्भ में धारण किया है।

प्रार्थना मे कहा गया है :—

> अश्वसेन नृप अचला पटरानी,
> तस सुत कुल सिगार हो सुभागी।
> जन्मत शान्ति थई निज देश में,
> मिरगी मार निवार हो सुभागी॥

इस प्रकार शान्तिनाथ भगवान् रूपी सूर्य के जन्म

धारण करने से पहले होने वाली उषा का चमत्कार आपने देख लिया ! अब शान्तिनाथ सूर्य के उदय होने का वृत्तान्त कहना है। मगर समय कम होने के कारण थोडे ही शब्दो मे कहता हूँ।

शान्तिनाथ भगवान् को गर्भ मे रहने या जन्म धारण करने के कारण आप वन्दना नही कर सकते हैं। वे इस कारण वन्दनीय है कि उन्होने दीक्षा धारण करके, केवल-ज्ञान प्राप्त किया और अन्त मे मुक्ति प्राप्त की।

भगवान् शान्तिनाथ ने लम्बे काल तक ससार मे रह-कर अद्वितीय काम कर दिखाया। उन्होने स्वय राज्य करके राज्य करने का आदर्श जनता के समक्ष उपस्थित किया। राज्य करके उन्होने अहकार नही मिखलाया। उनमे ऐसी-ऐसी अलौकिक शक्तियाँ थी कि जिनकी कल्पना भी हमारे हृदय मे आश्चर्य उत्पन्न करती है। लेकिन उन्होने ऐसी शक्तियो का कभी प्रयोग नही किया। माता अपने बालक को कामधेनु का दूध पिलाकर तृप्त कर सकती हो तो भी उसे अपना दूध पिलाने मे जिस सुख का अनुभव होता है, कामधेनु का दूध पिलाने मे वह सुख कहाँ ? इसी प्रकार शान्तिनाथ शक्ति का प्रयोग कर सकते थे परन्तु उन्हे शान्ति और प्रेम से काम लेने मे ही आनन्द आता था।

शान्तिनाथ भगवान् ने ससार को क्या-क्या सिखाया और किस प्रकार महारम्भ से निकालकर अल्पारम्भ मे लाये, यह

कथा लम्बी है। अतएव इतनी सूचना करके ही सतोष करता हूँ।

प्रभो ! आप जन्म, जरा और मरण, इन तीन बातो में ही उलझे रहते तो आप शान्तिनाथ न बनते ! लेकिन आप तो ससार को शान्ति पहुचाने वाले और शाति का अनुभव-पाठ पढाने वाले हुए, इस कारण हम आपकी भक्तिपूर्वक वन्दना करते हैं। आपने कौन सी शान्ति सिखलाई है, इस सम्बन्ध में कहा है :—

'चइत्ता भारहं वासं चक्कवट्टी महड्ढिओ।'

चक्रवर्ती की विशाल समृद्धि प्राप्त करके भी आपने विचार किया कि ससार को शान्ति किस प्रकार पहुंचाई जा सकती है ? इस प्रकार विचार कर आपने शान्ति का मार्ग खोजा और ससार को दिखलाया। जैसे माता, कामधेनु का नही वरन् अपना ही दूध बालक को पिलाती है, उसी प्रकार आपने शान्ति के लिए यन्त्र-मन्त्र तन्त्र आदि का उपयोग नही किया किन्तु स्वय शान्तिस्वरूप बनकर ससार के समक्ष शान्ति का आदर्श प्रस्तुत किया। आपके आदर्श से ससार ने सीखा कि त्याग के बिना शान्ति नही प्राप्त की जा सकती। आपने ससार को अपने ही उदाहरण से बतलाया है कि सच्ची शान्ति भोग मे नही, त्याग मे है और मनुष्य सच्चे हृदय से ज्यो-ज्यो त्याग की ओर बढ़ता जायगा त्यो त्यो शान्ति उसके समीप आती जाएगी।

त्याग का अर्थ यदि आप ससार छोड़कर साधु बनना

समझें तो वह गलत अर्थ नही होगा। परन्तु यहाँ इतना समझ लेना आवश्यक है कि कस्तूरी किसी के घर हजार मन हो और किसी के घर एक कन हो तो चिन्ता नही, पर चाहिए सच्ची कस्तूरी। एक तोला रेडियम धातु का मूल्य साढ़े चार करोड रुपया सुना जाता है। उसके एक कण से भी बहुत-सा काम निकल सकता है, पर शर्त यही है कि वह नकली नही, असली हो। इसी प्रकार पूर्ण शान्ति प्राप्त करने के लिए आप पूर्ण त्याग कर सकें तो अच्छा ही है। अगर पूर्ण त्याग करने की आप मे शक्ति नही है तो आशिक तो करना ही चाहिए। मगर ध्यान रखना जो त्याग करो, वह सच्चा त्याग होना चाहिए। लोक-दिखावे का द्रव्य-त्याग आत्मा के उत्थान मे सहायक नही होगा। आत्मा के अन्त-रतम से उद्भूत होने वाली त्यागभावना ही आत्मा को ऊचा उठाती है। त्याग भले ही शक्ति के अनुसार थोडा हो परतु असली हो और शुद्ध हो जो कि भगवान् शान्तिनाथ को चढ सकता हो।

जिन देवो ने त्याग करके शान्ति नही प्राप्त की उन्होने ससार को शान्ति नही सिखाई। महापुरुषो ने स्वयं त्याग करके फिर त्याग का उपदेश दिया है और सच्ची शान्ति सिखाई है। महापुरुष त्याग के इस अद्भुत रेडियम को यथाशक्ति ग्रहण करने के लिए उपदेश देते हैं। अतएव आप पापो का भी त्याग करो। जिस समय कोई आप पर

क्रोध की ज्वालाएँ फेंके उस समय आप शाति के सागर बन जाइए। शान्तिनाथ भगवान् का नाम लीजिये। फिर आप देखेंगे कि क्रोध करने वाला किस प्रकार परास्त हो जाता है?

भगवान् शान्तिनाथ का जाप तो लोग आज भी करते हैं, परन्तु उसका प्रयोजन दूसरा होता है। कोई मुकदमा जीत लेने के लिए शातिनाथ को जपते हैं तो कोई किसी दूसरी झूठी बात को सच्ची सिद्ध करने के लिए। इस प्रकार अशान्ति के लिए शाँतिनाथ को जपने से कोई लाभ नही होगा। कोई भी अशान्ति उत्पन्न करने वाली चीज भगवान् शान्तिनाथ को स्वीकृत नही हो सकती।

प्रश्न किया जा सकता है कि क्या विवाह आदि के अवसर पर भगवान् शान्तिनाथ का स्मरण नही करना चाहिए? इसका उत्तर यह है कि स्मरण तो करना चाहिये लेकिन यह समझकर कि विवाह बन्धन की चीज है, इसलिए हे प्रभो! तू ऐसी शक्ति मुझे प्रदान कर कि मैं इस बन्धन मे ही न रहूँ। गृहस्थावस्था मे विवाह से फलित होने वाले चतुर्थ अणुव्रत का पालन कर सकूँ और शक्ति आने पर भोग को निस्सार समझ कर पूर्ण ब्रह्मचर्य को धारण कर सकूँ। इस प्रकार की धर्मभावना के साथ भगवान् का नाम जपने से आपका कल्याण ही होगा।

व्यापार के निमित्त बाहर जाते समय आप मागलिक सुनते हैं और मुनि सुनाते हैं। इसका यह अर्थ नही होना चाहिए

कि व्यापार मे खूब धन कमाने के लिए आप सुने और मुनि सुनावे। व्यापार करते समय आप धन के चक्कर मे पड़कर धर्म को न भूल जाएँ। आपको धन ही शरणभूत, मगलमय और उत्तम न दिखाई दे वरन् धर्म को उस समय भी आप मगलमय माने। इसी भावना से मुनि आपको मगल पाठ सुनाते हैं और आपको भी इसी भावना से उसे सुनना चाहिए।

भोजन करते समय भी भगवान् शान्तिनाथ को स्मरण रक्खो और विचार करो कि—'प्रभो ! मुझे भक्ष्य-अभक्ष्य का विचार रहे।' मगर आज ऐसा कौन करता है ? लोग बेभान होकर अभक्ष्य भक्षण करते हैं और ठूँस-ठूँस कर आवश्यकता से अधिक खा लेते हैं। वे सोचते हैं— अजीर्ण होगा तो औषधो की क्या कमी है ! मगर औषध के भरोसे न रहकर भगवान् शातिनाथ को याद करो और सोचो कि मैं शरीर का ढाँचा रखने के लिए ही खाऊँ और खाने मे बेभान न हो जाऊँ।

एक प्रोफेसर का कहना है कि मैं जब उपवास करता हूँ तो मेरी एकाग्रता बढ जाती है और मैं अवधान कर सकता हूँ। अगर उपवास न करूँ तो अवधान नही कर सकता।

अगर आप अधिक उपवास न कर सकें तो महीने मे चार उपवास तो किया करे। चार उपवास करने से भी औषध लेने की आवश्यकता नही रहेगी। अगर प्रसन्नता और सद्-

भावना से उपवास करोगे तो धर्म का भी लाभ होगा। मगर आपने स्वेच्छा से उपवास न किये तो प्रकृति दूसरी तरफ से उपवास करने के लिए आपको बाध्य करेगी। ज्वर आदि होने पर भोजन त्यागना पडेगा।

भगवान् शान्तिनाथ ने छह खण्ड का राज्य त्याग कर ससार को सिखाया है कि त्याग कैसे किया जाता है और त्याग मे कितनी निराकुलता तथा शान्ति है। मगर तुमसे और कुछ नही बन पडता तो शान्तिनाथ भगवान् के नाम पर क्रोध करने का ही त्याग कर दो। जहा क्रोध का अभाव है वहा ईश्वरीय शान्ति उपस्थित रहती है। आप शांति चाहते हैं तो उसे पाने का कुछ उपाय भी करो। एक भक्त कहते हैं —

कठिन कम लेहि जाहि मोहि जहाँ
तहाँ-तहाँ जन छन ....

प्रभो! क्रूर कर्म न जाने कहाँ-कहाँ मुझे घसीट कर ले जाते हैं। इसलिए हे देव! मैं आपसे यह याचना करता हूँ कि जब कर्म मुझे परायी स्त्री और पराये धन आदि की ओर ले जावे तब मैं आपको भूल न जाऊँ। आपकी दृष्टि मुझ पर उसी प्रकार बनी रहे जिस प्रकार मगर या कछुई की दृष्टि अपने अण्डो पर उन्हें पालने के लिए बनी रहती है।

गांधीजी ने अपनी आत्मकथा मे लिखा है कि मेरी माता जैनधर्मी सन्त की भक्त थी। विलायत जाते समय

मेरी माता मुझे उन सन्त के पास ले गई। वहाँ उसने कहा—मेरा यह लडका दारू, मास और परस्त्री का त्याग करे तब मैं इसे विलायत जाने दे सकती हूँ, अन्यथा नही जाने दूगी। गाधीजी माता की आज्ञा को पर्वत से भी उच्च मानते थे। इसलिए उन्होने महात्मा के सामने मदिरा, मास और परस्त्री का त्याग किया।

गाधीजी लिखते है कि उस त्याग के प्रभाव से वे कई बार भ्रष्ट होने से बचे। एक बार जब वे जहाज से सफर कर रहे थे, अपनी इस प्रतिज्ञा के कारण ही बच सके। गाधीजी जहाज से उतरे थे, कि उन्हे उनके एक मित्र मिल गए। उन मित्र ने दो-एक स्त्रियाँ रख छोडी थी, जिन्हें जहाज से उतरने वाले लोगो के पास भेजकर उन्हें भ्रष्ट कराते और इस प्रकार अपनी आजीविका चलाते थे। उन मित्र ने पैसे कमाने के उद्देश्य से तो नही पर मेरा आतिथ्य करने के लिए एक स्त्री को मेरे यहाँ भी भेजा। वह स्त्री मेरे कमरे मे आकर खडी रही। मैं उस समय ऐसा पागल-सा हो गया, मानो मुझे बचाने के लिए साक्षात् परमात्मा आ गये हो। वह कुछ देर खडी रही और फिर निराश होकर लौट गई। उसने मेरे मित्र को उलहना भी दिया कि तुमने मुझे किस पागल के पास भेज दिया! उस बाई के चले जाने पर जब मेरा पागलपन दूर हुआ तब मैं बहुत प्रसन्न हुआ और परमात्मा को धन्यवाद देने लगा कि—

प्रभो ! तुम धन्य हो । तुम्हारी कृपा से मैं बच गया ।

भक्त लोग कहते हैं— नाथ, तू इसी प्रकार मुझ पर दृष्टि रखकर मेरी रक्षा कर ।

गाधीजी ने एक घटना और लिखी है । वे जिस घर मे रहते थे उस घर की स्त्री का आचरण वेश्या सरीखा था । एक मित्र का उसके साथ अनुचित सम्बन्ध था । उन मित्र के आग्रह से मैं उस स्त्री के साथ तास खेलने बैठा । खेलते-खेलते नीयत बिगडने लगी । पर उस मित्र के मन मे आया कि मैं तो भ्रष्ट हूँ ही इन्हे क्यो भ्रष्ट होने दू ! इन्होने अपनी माता के सामने जो प्रतिज्ञा की है वह भग हो जायगी । आखिर उन्होने गाधीजी को वहाँ से उठा लिया । उस समय मुझे बुरा तो अवश्य लगा लेकिन विचार करने पर बाद मे बहुत आनन्द हुआ ।

मित्रो ! अपने त्याग की दृढता के कारण ही गाँधीजी दुष्कर्मों से बचे रहे और इसी कारण आज सारे ससार मे उनकी प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा है । उन्होने गुरु से त्याग की बानगी ही ली थी । उसका यह फल निकला तो पूरे त्याग का कितना फल न होगा ? आप पूरा त्याग कर सकें तो कीजिए । न कर सकें हो त्याग की बानगी ही लीजिये और फिर देखिए कि जीवन कितना पवित्र और आनन्दमय बनता है ।

गाधीजी लिखते हैं कि मुझ पर आये हुए सकट टल

जाने से मुझे मालूम हुआ कि परमात्मा की सत्ता अवश्य है। अगर आप लोग भी शान्तिनाथ भगवान् को याद रक्खे तो आपको भी परमात्मा के साक्षात् दर्शन होगे।

भाइयो और बहिनो ! कुकर्म जहर से बढ़कर है। जब इनकी ओर आपका चित्त खिचने लगे तब आप भगवान् शान्तिनाथ का स्मरण किया करो। ऐसा करने से आपका चित्त स्वस्थ होगा, विकार हट जायगा और पवित्र भावना उत्पन्न होगी। आप कुकर्म से बच सकेंगे और आपका जीवन पवित्र रहेगा। भगवान् शान्तिनाथ का नाम पापो से बचने का महामन्त्र है।

शान्तिनाथ भगवान् ने केवल-ज्ञान प्राप्त करके पच्चीस हजार वर्ष तक सब जीवो को शान्ति प्रदान की। आप भी अपनी योग्यता के अनुसार दूसरो को शान्ति पहुचाएँ। कोई काम ऐसा मत कीजिए जिससे किसी को अशान्ति पहुंचती हो। आपका ज्ञान, ध्यान, पठन-पाठन आदि सब ऐसे होने चाहिए जो शान्तिनाथ को पसन्द हो। अगर आप शान्तिनाथ भगवान् को हृदय मे धारण करके प्राणीमात्र को शान्ति पहुंचाएँगे तो आपको भी लोकोत्तर शान्ति प्राप्त होगी।

आज भगवान् शान्तिनाथ की प्रार्थना की है। शाति-नाथ भगवान् के नाम से शान्ति प्राप्त होती हे। अतएव यह समझ लेना आवश्यक है कि भक्ति और शाति मे क्या सम्बन्ध है ? और सच्ची शाति क्या है तथा वह कैसे प्राप्त हो

सकती है ? आज इसी विषय पर कुछ विचार प्रकट करूँगा।

प्रेमी, जिसके हृदय में प्रेम-भक्ति है, शान्ति इसलिए चाहते हैं कि मेरे प्रेम मे कोई बाधा उपस्थित न हो। जैसे किसान चाहता है कि मेरी खेती मे कोई विघ्न उपस्थित न हो जाय, खेती को कीडे या मृग आदि पशु न खा जाएँ और किसी प्रकार की उपाधि खडी न हो जाय, इसी प्रकार जिसने प्रेम-भक्ति की खेती उपजाई है, वह परमात्मा से प्रार्थना करता है कि मेरी इस खेती मे कोई विघ्न उपस्थित न हो। वह कहता है— परमात्मा ! यह ससार विघ्नो का मूल है। इसमे विघ्न ही विघ्न भरे हैं। मुझे इन विघ्नो से बचा। इन दुखो से मेरी रक्षा कर।

विघ्न क्या है ? और विघ्नो की उत्पत्ति कहाँ से होती है ? यह समझ लेना भी आवश्यक है। विघ्न तीन प्रकार के होते हैं— (१) आधिभौतिक (२) आधिदैविक और (३) आध्यात्मिक।

भौतिक पदार्थों से दुख होना, जैसे काँटा लग जाना, किसी दूसरे पदार्थ से चोट लग जाना, कपडा, अन्न, घर आदि न मिलना या इच्छा के विरुद्ध मिलना अधिभौतिक विघ्न कहलाता है।

जो विघ्न अनायास आ पडता है, वह आधिदैविक कहलाता है। जैसे अतिवृष्टि होना, अनावृष्टि होना, अग्नि, वायु आदि के द्वारा आपत्ति होना आदि।

तीसरा विघ्न आध्यात्मिक है। यह इन दोनो से बहुत गम्भीर और बड़ा है। यह आध्यात्मिक विचारो से उत्पन्न होता हैं। क्रोध, अहकार, लोभ, तृष्णा आदि से कष्ट पाना, भविष्य की आशा या भूतकाल के विचारो से, चिन्ताओ से आत्मा को दु ख होना आध्यात्मिक विघ्न कहलाता है। इसके समान और कोई दु ख नही है।

इन विघ्नो से आत्मा दुर्बल हो जाता है और दुर्बल हो जाने के कारण प्राय अपने कर्त्तव्य से पतित हो जाता है। इससे वत मे शान्ति नही मिलती। यही कारण है कि भक्त जन परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि भगवन् ! तू हमे शान्ति दे, जिससे भक्ति मे उपस्थित होने वाले विघ्न शान्त हो जाएँ। भक्त प्रार्थना करते हैं—

> शान्ति जिनेश्वर साहब सोलमां
>
> शान्तिदायक तुम नाम हो सुभागी।
>
> विघन न व्यापे तुम सुमिरन थकी,
>
> नासै दारिद्रय दु ख हो सुभागी॥

इस प्रकार सभी ससारी जीव शान्ति चाहते हैं। पर उनका उद्देश्य भिन्न-भिन्न होता है। अधर्मी पुरुष अधर्माचरण मे और धार्मिक पुरुष धर्माचरण मे विघ्न न होने की कामना से शान्ति की इच्छा करता है। चोर भी अपने काम मे विघ्न न आने की ही इच्छा से शकुन देखता है।

धर्मनिष्ठ पुरुष परमात्मा से शान्ति चाहता है, क्योकि

उससे मिली हुई शान्ति से किसी को दु:ख नही होता। दूसरो से चाही हुई शान्ति द्वारा यदि एक को सुख होता है तो दूसरे को दु ख होता है। मगर परमात्मा से चाही हुई शांति से किसी को भी दु ख नही होता।

शान्ति के अनेक रूप हैं। एक शान्ति ऐसी होती है, जिसके मिलने से मनुष्य अधिक गफलत मे पड जाता है। आलसी बनकर पाप में डूबा रहता है और दुष्कर्म करता है। ऐसी शान्ति वास्तविक शान्ति नही, घोर नरक मे ले जाने वाली अशाति है। दूसरे प्रकार की शाति के मिलने से आत्मा उत्कर्ष की ओर बढता जाता है। शास्त्र मे इसी लिए पुण्य के दो भेद किये हैं— (१) पापानुबन्धी पुन्य (२) पुण्यानुबन्धी पुण्य।

ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती को सम्पूर्ण भरतक्षेत्र का साम्राज्य मिला और सभी प्रकार के सासारिक वैभव भी प्राप्त हुए, परन्तु वह साम्राज्य और वैभव उसे सातवें नरक में ले गया। इसके विपरीत चित्र मुनि, जो उसके पूर्व भव के भाई थे, आनन्द भोग कर मोक्ष मे पधारे। चित्र मुनि कितनी सम्पत्ति के स्वामी थे, इसका अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि वे एक करोड सोनैया प्रति-दिन दान करते थे। ऐसी अक्षय सम्पत्ति होने पर भी वे उनमे आसक्त नही हुए। इसी कारण इस लोक का आनन्द- सुख भोग कर वे शाश्वत सुख के अधिकारी भी बने। तात्पर्य यह है कि ससार के भोग भोगने

वाले प्राणी दो प्रकार के होते हैं--एक तो मिश्री की मक्खी सरीखे जो मिश्री का रस तो चूस लेती हैं पर उसमे फसती नही—चूस कर उड जाती है। दूसरे लोग नाक से निकालने वाले बलगम पर बैठने वाली मक्खी के समान होते हैं। जैसे इस मक्खी को यथेष्ठ रस भी नही मिलता, बलगम मे उसके पख भी फँस जाते हैं और अन्त मे मृत्यु का आलिगन करना पडता है। इसलिए भक्त जन कहते हैं कि परमात्मा की भक्ति करके मिश्री की मक्खी की तरह रहो। इससे ससार का ऐश्वर्य भोगने के वाद भी कल्याण का मार्ग प्राप्त कर सकोगे। सार यह है कि अगर आप भोगोपभोगों का सर्वथा त्याग नही कर सकते तो भी कम से कम उसमे लिप्त-गृद्ध-मूर्छित मत वनो।

भक्त कहते हैं, हे शान्तिनाथ भगवान्! मैं तेरी सहायता सै शाति पाने की आशा करता हूँ।

जेने सहायक शान्ति जिनन्द तू,
तेने कमी न कांय हो सुभागी।

जिसे तेरी सहायता प्राप्त है उसे किस चीज की कमी है? उसका इच्छित कार्य तो सिद्ध हुआ ही समझना चाहिए।

कई कहते हैं कि हम परमात्मा को भजते हैं, फिर भी हमारी आकाक्षाएँ पूरी नही होती। पर ऐसा कहने वालो को अपनी आकाक्षाओ का ही पता नही है। उन्हें पहले यह तो समझ लेना चाहिए कि वे कल्पवृक्ष या चिन्तामणि से

माँगना क्या चाहते हैं — विष या अमृत ! जब मन यही निश्चय करने मे असमर्थ है तो फिर उन्हे शाँति मिले कैसे ? अगर आप यह निश्चय करेंगे कि मैं किसी का बुरा नही चाहता, उद्योगी बनना चाहता हूँ तो आपको अवश्य ही शातिनाथ भगवान् से सहायता मिलेगी । मगर आप तो यह चाहते हैं कि हमे मसनद के सहारे पडे-पड़े ही सब कुछ मिल जाय । उद्योग तनिक भी न करना पडे । किन्तु भक्त जन आलसी बनने के लिए परमात्मा से सहायता नही चाहते । वे आलस्यमय विचार नही करते । वे आलस्यपूर्ण जीवन को धिक्कारते हैं । इस विषय मे एक दृष्टान्त लीजिए :—

मुसलमानो के एक पैगम्बर एकान्त जगल मे बैठकर, पीपल का एक-एक पत्ता जलाकर पुस्तक को याद करते थे। जब एक पत्ता जल जाता तो दूसरा पत्ता जलाकर वह फिर पढने लगते । इस कार्य मे वह इतने मग्न थे कि दूसरी ओर उनका ध्यान ही न जाता था। वह इसी प्रकार उद्योग करते रहे ।

पैगम्बर की यह तल्लीनता देखकर उसके पास खज्जा खजर अर्थात् भूले को राह बताने वाला फरिश्ता आया । वह आकर पैगम्बर के पास खडा हुआ, परन्तु पैगम्बर बोला नही । वह अपने काम मे तल्लीन रहा, फरिश्ते की ओर आँख उठाकर भी उसने न देखा । आखिर फरिश्ते ने स्वय ही उससे कहा— क्या कर रहे हो ?

पैगम्बर—क्या देखते नहीं हो ?

फरिश्ता—देखता हूँ कि तुम पढ़ रहे हो। मगर मैं कहता हूँ कि तुम इस प्रकार एक एक पत्ता जलाकर कब तक पढ़ा करोगे ? तुम मुझसे प्रार्थना करो तो मैं अभी तुम्हे आलिम फाजिल बना दू।

पैगम्बर—तुम्हारा नाम क्या है ?

फरिश्ता—खज्जाखजर, अर्थात् भूले को राह बताने वाला।

पैगम्बर तुम अपने काम पर जाओ। जो भूला हो उसे राह बताओ। मैं भूला नही हूँ। अपनी राह पर ही हूँ।

फरिश्ता तुम राह पर कैसे हो ?

पैगम्बर—मैं इस प्रकार उद्योग करके पढ रहा हूँ सो यही विद्या मेरे काम आने वाली है। तुम्हारे दिमाग का वताया हुआ इल्म मेरे काम का नही है। मेरे काम तो वही इल्म आएगा जो मैं अपने उद्योग से सीखूँगा। तुम्हारी दी हुई विद्या अनायास मेरे पास आएगी तो अनायास ही चली भी जाएगी। इसलिए तुम वहाँ जाओ जहाँ कोई गफलत में पड़ा हो, आलस्य मे डूवा हो।

मित्रो ! अधिकाश लोग चाहते हैं कि हमे कोई काम न करना पडे। मगर आलस्य मे जीवन व्यतीत करने वाले परमात्मा के नाम की महिमा नही जानते। परमात्मा के नाम की महिमा गम्भीर है और उसको समझे विना काम

नही चल सकता। परमात्मा के नाम की महिमा को आल-सियो ने विकृत कर दिया है। वे आलसी बनने के लिए उसके नाम का स्मरण करते हैं। ज्ञानी पुरुष आलस्य में पड़े रहने के लिए परमात्मा के नाम का स्मरण नही करते, बल्कि उद्योगी बनने के लिए उसकी सहायता चाहते हैं।

[ख]

परमात्मा की प्रार्थना करना मुख्य धर्म है। वह प्रार्थना दो प्रकार की होती है— एक अन्तर्मुखी, दूसरी बहिर्मुखी। अभी शान्तिनाथ भगवान् की जो प्रार्थना की गई है, उसका अर्थ भी दोनो प्रकार से हो सकता है। अधिकाश लोग प्रार्थना का बहिर्मुख अर्थ भी समझते हैं। सास-बहू की लड़ाई हो तो सास चाहती है, बहू पर विजय प्राप्त हो। भाई-भाई मे लडाई होने पर एक दूसरे पर विजय पाने के लिए दोनो भगवान् से प्रार्थना करते हैं। बाप-बेटा, पति-पत्नी और गुरु-चेला आदि सब का यही हाल है। ऐसी अवस्था में परमात्मा को क्या करना चाहिए ? अर्थात् परमात्मा किसकी सहायता करे और किसकी न करे ? उसके भक्त दोनो हैं। वह किस पर प्रसन्न हो और किस पर क्रुद्ध हो ? परमात्मा की वास्तविकता न समझ कर आपस में लडती-झगड़ती एक स्त्री, दूसरी से कहती है—'भगवान् तेरा नाश करे।' इस लड़ाई के समय परमात्मा का नाम आने से लोग समझते हैं कि परमात्मा कोई है और वह किसी का

भला और किसी का बुरा करता है। इस तरह वे परमात्मा का नाम तो अवश्य सीख लेते है, परन्तु उसका यथार्थ स्वरूप नही समझ पाते।

बहिर्मुखी प्रार्थना के विषय मे अधिक न कहकर मैं आज अन्तर्मुखी प्रार्थना के विषय मे ही कुछ कहना चाहता हूँ।

अन्तर्मुखी प्रार्थना मे सब एक हो जाते है। कोई बड़ा या छोटा नही रहता। समदृष्टि की दिव्य ज्योति जगाने के लिए, अन्तर्मुखी प्रार्थना करने पर कोई विघ्न नही रहता।

बहिर्मुखी प्राथना करने वाले दूसरे का नाश चाहकर या दूसरे पर विजय प्राप्त करने की इच्छा करके शान्ति चाहते हैं, किन्तु अन्तर्मुखी प्रार्थना करने वाले यह चाहते हैं कि—मुझमें क्रोध की अशान्ति है, अत. मेरा क्रोध नष्ट हो जाय। पग-पग पर मुझे अभिमान छलता है। इस अभिमान के कारण बड़ी अशान्ति रहती है, यहा तक कि खाना पीना भी अच्छा नही लगता, नीद भी नही आती। रावण और दुर्योधन को सब सुख प्राप्त होने पर भी इसी अभिमान ने चैन नही लेने दी। इसलिए हे प्रभो! मेरे अभिमान का नाश हो जाय।

एक मा के दो बेटे हो और वे दोनो आपस में झगडते हो तो मां किसकी विजय चाहेगी? वह तो यही चाहेगी कि दोनो शात हो जाएं। जब माता का प्रेम ऐसा है तो क्या परमात्मा, माता से छोटा है? वह एक का पक्ष लेकर दूसरे का नाश

चाहेगा ? इसलिए परमात्मा की अन्तर्मुखी प्रार्थना करनी चाहिए, जिससे वास्तविक शान्ति प्राप्त हो ।

ईश्वर की स्तुति करना और धर्म पालन करना एक ही बात है । धर्म का पालन करके ईश्वर की स्तुति करना अन्तर्मुखी स्तुति है और धर्म का पालन न करते हुए स्तुति करना बहिर्मुखी स्तुति है । आत्मा का शाश्वत कल्याण अन्तर्मुखी प्रार्थना से ही हो सकता है ।

१७-श्री कुंथुनाथजी

प्रार्थना

कुंथु जिनराज तू ऐसो, नही कोई देव तो जैसो ।
त्रिलोकीनाथ तू कहिये' हमारी बाह दृढ गहिये ॥१॥
भवोदधि डूबतां तारो, कृपानिधि आसरो थारो ।
भरोसो आपको भारी, विचारो विरुद उपकारी ॥२॥
उमाहो मिलन को तोसैं, न राखो आतरो मोसैं ।
जैसी सिद्ध अवस्था तेरी, तसी चैतन्यता मेरी ॥३॥
करम-भ्रम जाल को दपट्यो, विषय सुख ममता मे लपट्यो ।
भ्रम्यो हुं चहूँ गति माही, उदयकर्म भ्रम की छांही ॥४॥
उदय को जोर है जौलों, न छूटे विषय सुख तौलो ।
कृपा गुरुदेव की पाई, निजामत भावना भाई ॥५॥
अजब अनुभूति उर जागी, सुरत निज रूप में लागी ।
तुम्ही हम एकता जाणूं—, द्वैत भ्रम-कल्पना मानूं ॥६॥
"श्रीदेवी" 'सूर' नृप नन्दा, अहो सरवज्ञ सुखकन्दा ।
'विनयचन्द" लीन तुम गुन मे, न व्यापे अविद्या मन मे ॥७॥

परमात्मा की प्रार्थना करने मे आत्मा का विकास होता है। परमात्मा और आत्मा मे कितना सम्बन्ध है, आज इस पर थोडा विचार करना है। यद्यपि यह विषय ऐसा नही है कि जल्दी ही समझ मे आ जाय और एकदम कार्य-रूप मे परिणत कर दिया जाय। फिर भी धीरे-धीरे उस ओर लक्ष्य देने और आगे बढने से मनुष्य कभी ध्येय पर पहुंच ही जाता है।

कुन्थु जिनराज ! तू ऐसो, नहीं कोई देव तो जैसो।

हे कुन्थुनाथ प्रभु ! तेरे समान और कोई देवता मुझे दिखाई नही देता।

त्रिलोकीनाथ तू कहिये, हमारी बांह दृढ़ गहिये।

तू त्रिलोकीनाथ है। इसलिए मैं प्रार्थना करता हूँ कि तू मेरी बाँह पकड। तेरे सिवाय मैं अपनी बाँह किसके हाथ मे दू ? ससार मे तेरे समान और कोई भी देव भरोसा देने वाला नही। मैं सबको ढूँढ खोजकर तेरे पास आया हूँ। तू मेरी बाँह दृढता से पकड।

मित्रो ! भगवान् से यह कहने का हक किसको है ? जब तक ऐसा कहने का अधिकार प्राप्त न हो, ऐसा कहना उचित नही है। अगर आप अपने कर्त्तव्य को पूर्ण करके भगवान् से इस प्रकार निवेदन करें तो आपकी इच्छा पूर्ण हुए बिना नही रहेगी।

आप अपने अन्तःकरण को टटोल कर कहिये कि क्या

इस समय आपको ऐसा कहने का अधिकार है रि— यदि तू त्रिलोकीनाथ बना है तो मेरा हाथ पकड, नही तो तू त्रिलोकिनाथ मत कहला ! तेरा और मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया है। इसलिए साहसपूर्वक कहता हूँ कि मेरा हाथ पकड' ऐसा कहने से पहले आपको अपने कर्त्तव्य का पूर्ण रूप से पालन करना चाहिए।

आश्रय उसका लिया जाता है जिसमे आश्रय देने की शक्ति हो। परन्तु आश्रय लेने पर ही आश्रय मिलेगा, अन्यथा नही। पवन सर्वदेशीय शक्तिवाला है अर्थात् वह सब के साथ समान वर्त्ताव करता है। साप, मनुष्य पशु आदि सभी को वह श्वास देता है। किसी से यह नही कहता कि तेरे पास नही आऊँगा। फिर भी श्वास तो तभी मिलेगा जब उसे खीचा जायगा। बिना खीचे वह भी नही आ सकता। पवन को सर्वव्यापक मान कर अगर कोई श्वास न खीचे और नाक बन्द कर ले तो वह मर जायगा या जीता रहेगा ?

मर जायगा।'

सर्वव्यापी होने पर भी जो पवन को अपना कर ग्रहण करता है, वह उसी के पास जाता है। इसी प्रकार त्रिलोकिनाथ भगवान् यद्यपि सर्वदेशीय हैं, तथापि जिसने उन्हे अपना लिया उसी ने उन्हें पाया है।

यहाँ यह आशका की जा सकती है कि भगवान्

वीतराग हैं। उन्हे किसी से राग-द्वेष नहीं है। वह किसकी बांह पकड़े ? इसके अतिरिक्त अगर वह अरूपी सच्चिदानंद है तो किसी की बाह नही पकडता है। फिर उसकी प्रार्थना अनावश्यक है। इसका समाधान करना आवश्यक है। कल्याण मन्दिर स्त्रोत्र मे कहा है—

त्व तारको जिन ! कथ भविनां त एव,
त्वामुद्वहन्ति हृदयेन यदुत्तरन्त. ।
यद्वा दृतिस्तरति तज्जलमेव नून—
मन्तर्गतस्य पवनस्य किलानुभाव ॥

कौन कहता है—कि तू जगत् का तारक है ? अगर तू जगत् का तारक होता हो जगत् डूबता ही क्यो ? धन्वन्तरि के होते हुए कोई रोगी रहे और क्षीर समुद्र की मौजूदगी मे कोई प्यासा बना रहे तो आश्चर्य की बात है। इससे तो यही अनुमान होता है कि तू तारक नही है। मगर इसमे भी सदेह नही कि तू तारक अवश्य है। जो तेरा आश्रय लेते हैं अर्थात् अपने हृदय मे तुझे धारण करते हैं, वे अवश्य तिर जाते हैं।

ससार की ओर दृष्टि लगाकर देखो तो मालूम हो जायगा कि परमात्मा किस प्रकार तारक है ? मशक को यो ही पानी मे डाल दो तो वह डूब जायगी। अगर उसमे पवन भर दिया जाय और मुँह बन्द कर दिया जाय तो वह डूबेगी नही, पानी पर तैरेगी।

निश्चय ही मशक पवन के प्रभाव से तरती है। इसी प्रकार मशक मे वायु की तरह जिसके हृदय मे परमात्मा विराजमान होगा, वही ससार सागर से तिर सकता है। यद्यपि भगवान् त्रिलोकिनाथ सर्वव्यापक हैं, पर जब तक हम अपनी बाह उन्हें दृढता से न गहा द अर्थात् उनकी भक्ति पर विश्वास करके उसमे तल्लीन न हो जाएँ तब तक हम तिरने की आशा कैसे कर सकते हैं ? इसीलिए ज्ञानी जन कहते हैं— मशक के लिए जैसा पवन है, मेरे लिए वैसा ही तू है।

भरोसो आपको भारी,
विचारो विरुद उपकारी।

मुझे केवल आपका ही भरोसा है। मेरी बाँह आप पकड़ लीजिए। किसी भी समय, कैसे भी कर्म उदय मे आवे, मुझे तेरा ही ध्यान बना रहे।

मशक पर चाहे जैसे चित्र बने हो और चाहे जैसा रग चढा हो, वह तब तक नही डूवेगी जब तक उसमे से हवा बाहर न निकल जाय। इसी प्रकार ससार मे चाहे सुख हो या दुःख हो, गरीबी हो अथवा अमीरी हो या कगाली हो, इन बातो की मुझे चिन्ता नही है। केवल तू अपनी अनन्य ज्योति के साथ मेरे हृदय मे विराजमान रहे, बस यही मैं चाहता हूँ। ससार के सब पदार्थों के होने या न होने से काम चल जाय, परन्तु तेरे बिना काम न चले।

ऐसा दृढ विश्वास मुझे प्रदान कर ।

मेरे हृदय मे एक बात और आई है । वह भी कह देता हूँ । एक कवि सरोवर के किनारे खड़ा था । उसने देखा कि सूर्य के ताप से सरोवर का जल सूख रहा है । कई पक्षी सरोवर के किनारे के वृक्षो पर बैठे हैं और भ्रमर कमल रस पीने के लिए उड़ रहे हैं । सरोवर मे मछलिया भी हैं । यह सब देखकर कवि ने सोचा— सरोवर सूख जाय या न सूखे, इन पक्षियो को इस बात की परवाह नही है । अगर सूख गया तो पक्षियो का क्या बिगड़ेगा ? वे अपने पखो से आकाश मे उड़कर दूसरे सरोवर पर चले जाएँगे । और यह भौरे, जो इस समय सरोवर के कमलो का मधुपान कर रहे हैं, सरोवर के सूखने पर उडकर दूसरे फूलो पर चले जाएंगे । परन्तु बेचारी यह मछलिया कहा जाएँगी ? ऐसा विचार कर कवि सरोवर से अनुनय करने लगा— हे सर ! तेरे सूख जाने की चिन्ता इन पक्षियो और भँवरो को नही है, परन्तु इन दीन अनन्यशरण मछलियो की क्या गति होगी ? यह तेरे ही साथ जन्मी हैं और तेरे ही साथ मरेंगी । इसलिए तू इनके वास्ते सजल बना रह । इनके लिए तेरे सिवाय और कोई गति नही है ।

कवि की इस उक्ति को सुनाने का अभिप्राय यह है कि आज लोग पक्षियो और भौंरो की तो मनुहार करते हैं पर बेचारी मछलियो को कोई पूछता तक नही ! जो लोग

झूठी प्रशसा करना जानते हैं उनका सत्कार होता है और अपने आश्रितो को दुत्कारा जाता है। किन्तु याद रखना चाहिए कि झूठी प्रशसा करने वाले पक्षियो और भौंरो की तरह उड जाएगे और जल को निर्मल रखने वाली तथा जल की शोभा बढ़ाने वाली-मछली के समान आश्रित लोग, मछली की ही तरह मिट जाएँगे। ऐसा समझ कर आश्रित लोगो के साथ प्रेम रखने मे ही बडप्पन है।

मित्रो ! परमात्मा से प्रार्थना करो कि मैं मीन हूँ और तू सरोवर है। मैं अपने शरीर के लिए प्रार्थना नही करता। पौद्गलिक शरीर तो अनन्त वार मिला है। पर यह दीन आत्मा रूपी मीन तेरे ही आश्रित है। अतएव तेरे प्रेम का पानी न सूखे, यही प्रार्थना है।

[ख]

कुन्थु जिनराज तू ऐसो, नहीं कोई देव तो जैसो।

भगवान् कुन्थुनाथ की यह प्रार्थना है। परमात्मा की प्रार्थना मे अमोघ शक्ति है। अमोघ उसे कहते हैं जो निष्फल न जावे। परमात्मा की प्रार्थना की शक्ति सदैव सफल है। दुनियाँ मे कोई लोग अपनी बडाई के लिए यह विज्ञापन किया करते हैं कि हमारी दवा राम बाण है। हमारा इलाज और कार्य राम वाण है। अर्थात् राम का वाण चूके तो हमारी दवा का भी लक्ष्य चूके—लाभ न करे। कई लोग रामबाण के नाम पर इस प्रकार का विज्ञापन करके अपना व्यवसाय चलाते हैं।

मगर मैं कहता हूँ कि परमात्मा की प्रार्थना अमोघ है।

शका हो सकती है कि जिस प्रकार व्यवसायी अपना-व्यवसाय चलाने के लिए दवा को रामबाण—अमोघ—कहते हैं, उसी प्रकार प्रार्थना के विषय मे भी तो नही कहा जाता है ? शकाशील के लिए सर्वत्र शका को स्थान है किन्तु परीक्षा और पहचान करने से शका का निवारण भी हो सकता है। परमात्म प्रार्थना की शक्ति अमोघ और सफल है, यह बात मिथ्या प्रशसा मे नही कही गई है। और यह भी स्पष्ट है कि ऐसा कहने वाले का इसमें कोई स्वार्थ नही है। यह बात सर्वथा सत्य है और जिन्होने परीक्षा की है उन्हे किसी तरह का सन्देह भी नही है।

राम के बाण हमने नही देखे। केवल ग्रन्थो मे उनकी अमोघता का वर्णन आया है और इसी आधार पर हम विश्वास करते हैं कि राम के बाण व्यर्थ नही जाते थे। वह ग्रन्थ सत्पुरुषो ने नि स्वार्थ भावना से बनाये हैं, इस कारण उन पर विश्वास किया जाता है। वास्तव मे चाहे चन्द्र से आग गिरने लगे और पृथ्वी उलट जाय, किन्तु सत्पुरुष झूठ कदापि नही लिख सकते। उनके वचन किसी भी अवस्था मे झूठे नही हो सकते। ऐसे सत्पुरुष जब राम का बाण अचूक कहते हैं तो समझना चाहिए कि वे राम-बाण के सम्बन्ध मे उतना नही कह रहे हैं, जितना राम के नाम की शक्ति के विषय मे कह रहे हैं। ऐसी स्थिति मे बाण के विषय मे

कही गई उनकी बात पर विश्वास करने और नाम के विषय मे कही गई बात पर अविश्वास करने का क्या कारण हो सकता है ? नाम के विषय मे वह मिथ्या कथन क्यो करेगे ? अगर आप नाम के विषय मे कही गई उनकी बात सत्य मानते हैं तो जो बात उन्होने कही है वही बात परमात्मा की प्रार्थना के विषय मे भी कही गई है। जिस तरह उनकी कही बात पर विश्वास करते हो, उसी तरह परमात्मा की प्रार्थना की शक्ति के विषय मे भी पूर्वकालीन अनेक महात्माओ ने जो कुछ कहा है, उस पर विश्वास करो । प्रार्थना की शक्ति के विषय मे हम अपनी ओर से कुछ नही कहते हैं, पूर्वकाल के महात्माओ का कथन दोहराते हैं। हम उनकी उच्छिष्ट वाणी ही सुनाते हैं। अतएव प्रार्थना की शक्ति के विषय मे सन्देह करने का कोई कारण नही है।

परमात्मा की प्रार्थना मे अमोघ शक्ति है, यह बात कहना तो सरल है, लेकिन उसे प्राप्त करना कठिन मालूम होगा । परन्तु महापुरुष को कोई बात कहना तो कठिन जान पडता है, करना उतना कठिन नही जान पडता । इसलिए हमे सावधान होकर वे ही शब्द निकालने चाहिए, जिन्हे हम अमल मे ला सकते हो । जितना कर सकते हो, उतना ही कहो और जो कुछ कहते हो उसके करने की अपने ऊपर जिम्मेदारी समझो । इस तरह स्वच्छ चित्त होकर एकाग्रतापूर्वक परमात्मा की प्रार्थना करने और परमात्म-प्रार्थना द्वारा

उसकी अमोघ शक्ति प्राप्त करने वाला सुकृति का भण्डार बन जाता है।

प्रश्न किया जा सकता है—आपने परमात्मा की प्रार्थना के विषय मे जो कुछ कहा है सो ठीक है, मगर परमात्मा कहाँ है ? उसका स्वरूप क्या है ? साम्प्रदायिक भेद के कारण परमात्मा के स्वरूप मे इतनी भिन्नता मालूम होती है और उसकी प्रार्थना करने की रीति मे भी इतनी विभिन्नता है कि इस दशा मे परमात्मा के किस रूप को और प्रार्थना की किस विधि को सत्य माने ? इन बातों का ठीक-ठीक पता कैसे लग सकता है ?

इस प्रश्न का समाधान करने के लिए महापुरुषों ने बहुत सरल मार्ग बताया है। इसी प्रार्थना मे कहा है :—

तुम्हीं–हम एकता मानूं, द्वैत भ्रम कल्पना मानूं ।

हे प्रभो ! जो तू है वही मैं हूँ और जो मैं हूँ वही तू है। 'यः परमात्मा स एवाहं योऽहं सः परमस्तथा ।' सोऽहं और हं-स। इस प्रकार हे प्रभो ! तुझ मे और मुझ मे कुछ अन्तर ही नही है।

यह कथन ऊपरी नही, भक्तो की गहरी आत्मानुभूति का उद्गार है। जो आत्मा औपाधिक मलिनता को एक ओर हटाकर, अन्तर्दृष्टि होकर—अनन्यभाव से अपने विशुद्ध स्वरूप का अवलोकन करता है और समस्त विभावो को आत्मा से भिन्न देखता है, उसे सोऽहं के तत्त्व की प्रतीति

होने लगती है। बहिरात्मा पुरुष की दृष्टि मे स्थूलता होती है अतएव वह शरीर तक, इन्द्रियो तक या मन तक पहुंच कर रह जाती है, और उसे इन शरीर आदि मे ही आत्मत्व का भान होता है, मगर अन्तरात्मा पुरुष अपनी पैनी नजर से शरीर आदि से परे सूक्ष्म आत्मा को देखता है। उस आत्मा मे असीम तेजस्विता, असीम बल, अनन्त ज्ञानशक्ति और अनन्त दर्शनशक्ति देख कर वह विस्मित-सा हो रहता है। उसके आनन्द का पार नही रहता। ऐसी ही अवस्था मे उसकी वाणी से फूट पडता है—

सिद्धोऽहं सुद्धोऽहं अणतणाणादि गुणसमिद्धोऽहं ।

अर्थात्—मैं सिद्ध हूँ, मैं शुद्ध हूँ, मैं अनन्त ज्ञानादि गुणों से समृद्ध हूँ।

इस प्रकार जब परमात्मा मे और आत्मा में अन्तर ही नही है, तब उसके रूप आदि के विषय मे किसी प्रकार का सन्देह होने का क्या कारण है ?

लेकिन फिर यह प्रश्न खडा हो सकता है कि कहाँ तो मोह के चक्कर मे पड़कर नाना प्रकार की अनुचित चेष्टा करने वाले और घृणित काम करने वाले हम लोग और कहाँ शुद्धस्वरूप परमात्मा ! हमारी और उसकी समानता भी नही हो सकती तो एकता तो होगी ही कैसे ? इस प्रश्न का उत्तर प्रकारान्तर से ऊपर आ गया है। मतलब यह है कि इस तरह उपाधिभेद तो अवश्य है, लेकिन वस्तु का शुद्ध

स्वरूप देखने वाले निश्चय नय के अभिप्राय से और सग्रह नय के अनुसार 'एगे आया' आगम वाक्य से परमात्मा एवं आत्मा मे कोई अन्तर नही है। 'एगे आया' इस कथन में सिद्ध भी आ जाते हैं और समस्त ससारी जीव भी आजाते हैं। जो कुछ भेद है, उपाधि मे है, आत्मा मे कोई भेद नही है। मूलद्रव्य के रूप मे परमात्मा और आत्मा का कोई भेद नही है। मूलद्रव्य के रूप मे परमात्मा और आत्मा का कोई भेद होता तो आत्मा समस्त विकारो और आवरणो को दूर करके परमात्मा नही बन सकता था। अगर कोई भी आत्मा, परमात्मा नही बन सकता होता तो समस्त साधना निष्प्रयोजन हो जाती। मगर ऐसा नही है। साधक पुरुष अपनी साधना द्वारा आत्मा के स्वाभाविक गुणो का विकास करता हुआ और विकारो को क्षीण करता हुआ अन्त मे पूर्णता और निर्विकारता प्राप्त कर लेता है और वही परमात्म-दशा है। उपाधि के कारण आत्मा और परमात्मा मे जो भेद है उसी को मिटाने के लिए प्रार्थना करनी होती है। अतएव उपाधि का भेद होने पर भी यह समझने की आवश्यकता नही कि मुझ मे और परमात्मा मे मूल से कोई वास्तविक भेद है।

एक बात और है। कर्म करने वाला तथा कर्म का फल भोगने वाला यह आत्मा ही है। फिर प्रार्थना करने वाला और प्रार्थना का फल पाने वाला भी आत्मा ही ठहरता

है या नही ? ऐसी अवस्था मे शका का कारण ही क्या है ?

भावनिक्षेप दो प्रकार का है आगम भावनिक्षेप और नोआगम भावनिक्षेप । आगम भावनिक्षेप के अनुसार भगवान् महावीर मे तल्लीन रहने वाला स्वय ही महावीर है । जब क्रोध का स्मरण करने वाला अर्थात् क्रोध के उपयोग मे उपयुक्त आत्मा क्रोध, मान मे उपयुक्त आत्मा मान, उच्च मे उपयुक्त आत्मा उच्च और नीच के उपयोग मे उपयुक्त आत्मा नीच माना जाता है तो भगवान् के उपयोग मे उपयुक्त (तल्लीन) आत्मा भगवान् ही है, ऐसा मानने मे सन्देह कैसे किया जा सकता है ? ऐसी अवस्था मे जिस पानी से मोती निपजता है, उसे कीचड मे डालकर खराब क्यो करना चाहिए ? प्रार्थना के उस पवित्र पानी को आत्मा मे क्यो करना चाहिए ? प्रार्थना के उस पवित्र पानी को आत्मा मे क्यो न उतारना चाहिए कि जिससे बहुमूल्य मोती बने ।

जिस प्रार्थना की शक्ति अमोघ है, वह प्रार्थना करने की तबीयत किसकी न होगी ? ऐसी प्रार्थना सभी करना चाहेगे, मगर देखना यह है कि अन्तराय कहाँ है ? वस्तु भेद से तो अन्तराय के अनेक प्रकार हैं मगर सामान्य रूप से स्वार्थबुद्धि आने से अन्तराय होता है । यो तो ससार मे स्वार्थों की सीमा नही है, किन्तु जहाँ स्वार्थ नही है वहाँ पर भी लोग काल्पनिक विचारो मे पडकर ऐसे विचार कर बैठता है, जो प्रार्थना के मार्ग मे अन्तराय करने वाले हो

जाते हैं। काल्पनिक विचारो में घुल जाना, उन पर आरूढ़ हो जाना प्रार्थना के मार्ग मे बड़ा अन्तराय है। इस अन्तराय की चिन्ता अनेक कवियो और शक्तिशाली पुरुषो को भी हुई है। सर्वसाधारण के ऐसे काल्पनिक विचार देखकर उन्हें भी चिन्तित होना पड़ा है। कहा जा सकता है कि किसी में अगर कोई बुराई है तो उन्हें चिन्ता करने की क्या आवश्यकता है? दूसरा कोई कुमार्ग मे जाता है तो जाय, हम उसके लिए चिन्तित क्यो हो? मगर बेटा के बिगड़ने पर बाप को चिन्ता होती है या नही? बिगड़े बेटे की चिन्ता करना बाप का फर्ज माना जाता है। आप स्वय अपने बेटे की चिन्ता करते हैं। यह बात दूसरी है कि आपने अपनी आत्मीयता का दायरा सकीर्ण बना लिया है। आप अपने बेटे-पोते आदि घरवालो को ही अपना समझते हैं और उनके अतिरिक्त दूसरो को गैर समझते हैं। मगर जिनका ममत्व फैल कर प्राणीमात्र तक पहुंच गया है, ससार के समस्त प्राणियो को जो आत्मवत् मानते हैं, जिन्होने 'एगे आया' का सिद्धात अपने जीवन मे घटाया है उनके लिए तो सभी जीव अपने हैं, कोई पराया नही है। ऐसी दशा मे जैसे आप अपने बेटे की चिन्ता करते हैं उसी प्रकार उदार भाव वाले ज्ञानी पुरुष प्रत्येक जीव की चिन्ता करते हैं। इस प्रकार की चिन्ता के कारण ही उन्होने परमात्मा से प्रार्थना करते हुए कहा है :—

कौन जतन विनती करिये।

निज आचरण विचारि हारि हिय मानि जानि डरिये ।।कौन०।।

जानत हू मन वचन कर्म करि परहित कीने तरियें।

सो विपरीत देखि कै पर सुख बिन कारण ही जरिये ।।कौन०।।

वह कहते हैं हे नाथ ! हे प्रभो ! मैं आपकी विनती कैसे करूँ ? कहाँ तो तुम्हारे समान मेरा स्वरूप, कहाँ 'एगे आया' मानकर तेरे और मेरे स्वरूप को एक मानने वाला मैं और कहाँ मेरे आचरण ? मैं इन आचरणो को देखकर विचार में पड़ जाता हूँ कि' हे नाथ ! किस प्रकार तेरी प्रार्थना करूँ ! किस मुंह से मैं तेरे सामने आऊँ ?

जो मनुष्य राजा की चोरी करता है या राजा की आज्ञा तथा उसके बनाये नियमो की अवज्ञा करता है, उसे राजा के सामने जाने मे सकोच होगा या नही ? अवश्य होगा ! क्योकि उसका आचरण उसे भयभीत करेगा । इसी प्रकार भक्त कहता है– प्रभो ! मैं अपना आचरण देखकर स्वय ही डरता हूँ । मेरा आचरण ही प्रकट कर रहा है कि मैंने तेरी सत्ता को नही माना और तेरी चोरी की है ।

भक्त अपने में ऐसी क्या कमी देखते हैं ? यह तो सभी जानते हैं कि तन, मन, धन और जन से जितना भी बन सके, परोपकार करना चाहिए । परोपकार करना धर्म है, यह कौन नही जानता ? 'परोपकाराय सता विभूतयः' और 'परोपकार' पुण्याय' इत्यादि उपदेश वाक्य भी बहुत-से लोगो ने सुने हैं । भक्त जन कहते हैं— 'मुझ से परोपकार

होना तो दरकिनार, मैं इससे विपरीत ही वर्त्ताव करता हूँ। मैंने किसी को सुखी नही बनाया, इतना ही नही, बल्कि मेरी करतूत तो यह है कि दूसरे को सुखी देखकर मेरे दिल मे ईर्षा का दावानल सुलगने लगता है। इस प्रकार मेरे हृदय में उपकार की भावना के बदले अपकार की भावना उत्पन्न होती है। दूसरे ने मुझसे सुख नही पाया, सम्पत्ति नही पाई, फिर भी मुझ से उसकी सुख-सम्पत्ति नहीं देखी जाती। जब मेरा यह स्वभाव है तो मैं परोपकार क्या करूँगा ? और अपनी इस निकृष्ट दशा मे तेरी क्या प्रार्थना करूँ ?

प्रभु की प्रार्थना मे यह अन्तराय सबसे बड़ा है। अगर आप किसी का उपकार नही कर सकते तो न सही, मगर कम से कम इतना तो करो कि दूसरो को देख कर जलो मत। स्वयं किसी का उपकार नही कर पाते या प्रत्यु-पकार नही कर सकते तो खैर, लेकिन जिन्होने आपके ऊपर उपकार किया है, उनका उपकार तो मत भूलो। इतना तो कर ही सकते हो। इतना करने मे भी कल्याण है।

१८-श्री अरहनाथजी

प्रार्थना

अरहनाथ अविनाशी शिव सुख लीधो,
विमल विज्ञान विलासी साहब सीधो ॥१॥

चेतन भज तू अरहनाथ ने, ते प्रभु त्रिभुवन राय।
तात 'सुदर्शन' 'देवी' माता, तेहनो पुत्र कहाय ॥२॥

क्रोड़ जतन करता नही पामे, एहवी मोटी माम।
ते जिन भक्ति करो ने लहिये, मुक्ति अमोलक ठाम ॥३॥

समकित सहित किया जिन भगती, ज्ञान दर्शन चारित्र।
तप बीरज उपयोग तिहारा, प्रगटे परम पवित्र ॥४॥

स्व उपयोग सरूप चिदानन्द, जिनवर ने तू एक।
द्वैत अविद्या विभ्रम मेटो, बाधे शुद्ध विवेक ॥५॥

अलख अरूप अखण्डित अविचल, अगम अगोचर आप।
निरविकल्प निकलंक निरंजन, अद्‌भुत ज्योति अमाप ॥६॥

ओलख अनुभव अमृत याको, प्रेम सहित रस पीजे।
हूँ तू छोड़ 'विनयचन्द' अन्तर, आतमराम रमीजे ॥७॥

आज भक्ति के रूप में परमात्मा की प्रार्थना की जाती है। भक्ति मे क्या शक्ति है और भक्ति करने से किस शान्ति की प्राप्ति होती है, यह बाते समझ लेना अत्यन्त उपयोगी है, किन्तु इन्हे समझने के लिए विस्तार की अपेक्षा है। थोड़े-से समय मे और शब्दो मे इनका पर्याप्त विवेचन होना सम्भव नही है। फिर भी सक्षेप मे समझाने का प्रयत्न किया जाएगा।

जो भक्ति करता है, जिसने भक्ति की है या जिसे भक्ति का अनुभव है, उसके लिए कुछ कहना और न कहना— दोनो बरबर हैं। हाँ, जो भक्ति की शक्ति से अनभिज्ञ हैं, उनके लिए ही कुछ कहने की आवश्यकता है।

जो वस्तु करोडो उपाय करने पर भी नही मिल सकती वह परमात्मा की भक्ति से सहज ही मिल जाती है। प्राणी साधारण वस्तु से भी प्रेम के द्वारा ही लाभ उठा सकता है, दूसरे उपाय से नही। प्रेम-भक्ति ही ऐसी चीज है जो पराये को अपना बना लेती ह।

बिना भक्ति के बाप बेटे का और बेटा बाप का नही होता। बेटा बाप की भक्ति न करे, उसकी सेवा न करे तो वह अधिकारी होने पर भी पिता की सम्पत्ति से वचित रह जाता है। इसके विपरीत जो भक्ति करता हैं वह सम्बन्धी न होने पर भी उसके सर्वस्व का स्वामी बन जाता है। तात्पर्य यह है कि हृदय का दुराव न रख कर अगर सेवा-

भक्ति की जाती है तो जिसकी भक्ति की जाती है वह खुशी-खुशी अपने प्राण तक दे देता है।

जिस प्रकार पिता को भक्ति से प्रसन्न करके पुत्र उसकी सम्पत्ति को प्राप्त करता है, उसी प्रकार परमात्मा की भक्ति से हमे सभी कुछ प्राप्त हो जाता है।

व्रत करो, नियम करो, तपस्या की अग्नि में शरीर को सुखा डालो, लेकिन आपके हृदय मे अगर विश्वास नही है तो यह सब निरर्थक है। विश्वास करने और उसमे तल्लीन होने से ही सब कार्य सिद्ध होते हैं। अतएव भक्ति में तल्लीनता होनी चाहिए।

[ख]

प्रार्थना का विषय अगाध है। जिस प्रकार गोताखोर को एक-एक मोती मिल जाने से उसे लत पड़ जाती है और वह लत फिर गोता लगाने की प्रेरणा करती है, उसी प्रकार भक्त जन परमात्मा की अनन्त गुणराशि रूपी महासागर मे गोता लगाते हैं और गुण—रत्न उपलब्ध करके निहाल हो जाते हैं। इस प्रार्थना मे कहा है—

चेतन ! भज तू अरहनाथ को।

अर्थात्—हे चेतन ! तू अरहनाथ भगवान् का भजन कर। चेतन का अर्थ आत्मा है। मैं आत्मा हूँ, तुम आत्मा हो और सभी जीवधारी आत्मा हैं। चैतन्य की अपेक्षा से सभी जीव एक हैं। फिर भी मनुष्य योनि मे चेतन का

विकास अपेक्षाकृत अधिक होता है। अत मनुष्य की योनि पाकर विशेष रूप से परमात्मा का ध्यान करना चाहिए। जिसने मनुष्यजन्म पाकर परमात्मा का भजन नही किया और जड़ को भजा, उसने मानों चिन्तामणि रत्न को पाकर वृथा गँवा दिया।

परमात्मा के ध्यान मे एक विशाल वस्तु खड़ी है। उसे मैं आप लोगो को कैसे समझाऊँ ? वहाँ पहुंच कर वाणी मूक हो जाती है। इस कारण जानते हुए भी कहने मे असमर्थ हूँ। जब मेरी यह दशा है तो महाज्ञानी के मन मे यह वस्तु कैसी होगी ?

ससार में तुम विचित्र रचना देखते हो, पुरुष तथा स्त्री की चेष्टा देखकर खुशी हो जाते हो, पर यह क्यो नही सोचते कि यह चेष्टा किसकी है ? ऊपर को देखकर भीतर को मत भूलो। मुर्दा कुछ नही कर सकता। जो कुछ करता है, आत्मा ही करता है। चित्रकार चित्र बनाता है, पर दोनो मे कौन बडा हे ? चित्र बडा है या चित्रकार ?

'चित्रकार !'

फिर भी लोग चित्र पर मुग्ध हो जाते हैं, और चित्रकार को भूल जाते हैं। इसलिए भक्त जन प्रेरणा करते हैं :—

चेतन ! भज तू अरहनाथ को,
वे प्रभु त्रिभुवन—राया।

भाइयो ! यह चिन्दानन्द कौन है, जिसकी रचना से यह ससार ऐसा है ?

मकडी अपने शरीर मे से तन्तु निकाल कर जाल बनाती है। वह जाल बनाती है दूसरे जीवो को फँसाने के लिए, परन्तु भान भूल कर आप स्वय ही उसमे उलझ कर मर जाती है। ऐसी ही दशा इस ससार की हो रही है। मनुष्य अपनी चित् शक्ति से सुख प्राप्त करने के लिए काय करते हैं किन्तु उन्हे सुख के बदले दु ख की प्राप्ति होती है। जीव की अनादि काल से ऐसी आदत पड़ रही है। इस आदत को सुधारने के लिए ही ज्ञानी जन कहते हैं कि अगर तू चेतन है तो परमात्मा को भज। आत्मा और परमात्मा की जाति एक ही है। इस कारण परमात्मा जिस पद पर पहुंच चुके हैं, उस पर तू भी पहुंच सकता ह। एक कवि ने कहा है—

आतम परमातम पद पावे,
जो परमातम में लौ लावे।
सुन के शब्द कीट भृ गी का,
निज तन मन की सुधि विसरावे।
देखहु प्रकट ध्यान की महिमा,
सोऊ कीट भृ ग होय जावे॥

पृथ्वी पर पेट घिस-घिस कर चलने वाला एक कीडा है। वह पृथ्वी से पाव अगुल भी ऊपर नही उठ सकता।

उसे एक भँवरी मिल गई। भँवरी ने उसे उठा कर अपने घर में रख लिया और घर को मिट्टी से मूँद दिया। कहते हैं, १७ दिन मे वह कीड़ा परिपक्व हो जाता है। तब तक भँवरी उस कीड़े के आसपास गुन गुन करके मन्त्र सा सुनाया करती है। वह लट भँवरी की सगति से आसमान में उड़ने लगती है। तो हे आत्मा ! तू विश्वास कर, परमात्मा की सगति से तू आकाश मे इस तरह उडने लगेगा कि तेरी गति का ओर-छोर नही होगा।

आप लोगो को पेट-घिसनी आदत बुरी लगती हो अर्थात् बार-बार जन्म-मरण करने से अगर आप उकता गये हो तो उससे छूटने का उपाय यही है। यदि बुरा न लगता हो तो फिर क्या कहा जाय ?

कवि ने कहा है –

क्रोड जतन करता नहीं लहिये,
एवी मोटी माम।

अर्थात् करोडो यत्न करने से भी जो काम नही होता, वह काम आत्मा को परमात्मा के समर्पण कर देने से हो जाते हैं।

मित्रो ! आप पेट घिसते रहना चाहते हैं या आकाश मे उड़ना चाहते हैं ? आप मेरे पास आये हो तो जो मैं कहता हूँ वह करो। आपको पेट घिसते नही रहना है, आकाश मे उडना है तो आत्मा को थोडी-थोडी ऊँची करो।

ऐसा करने से वह धीरे–धीरे ऊँची ही ऊँची उठती चली जायगी ।

आकाश मे उडने का अर्थ यह नही है कि आप पक्षियो की तरह उडने लगे, बल्कि सासारिक पुद्‌गलो का मोह त्यागना आकाश मे उडना है । किसी दूसरे ने तुम्हे बन्धन मे नही बाँधा है, वरन् तुमने आप ही अपने को बधन मे जकड लिया है । सासारिक पदार्थों से जब आत्मा चिपट जाती है तो उसे परमात्मा नही दीखता । जिस दिन आपके अन्त.-करण मे यह भाव जागेगे कि आप भूल कर रहेहैं— पुद्‌गल से प्रेम कर रहे हैं—उसी दिन आत्मा को परमात्मा मिलते देर नही लगेगी । एक कवि की कविता से मैं इस बात को समझाने का प्रयत्न करूँगा उसका आशय यह है कि ·— सखी, तेरे उदास रहने का कारण मैं समझ गई । तेरे पति को किसी नीच ने भरमा दिया है । इस कारण वह तुझे कष्ट देता है । तेरे पति का कोई दोष नही है । वह तो सगति से भरम रहा है ।

इसके उत्तर मे सखी कहती है – उस भरमाने वाले का अपराध नही । भूल तो मेरे पति की ही है जो खुशी से उसके पास जाता है ।

इस बात को आप भलीभाति समझे नही होगे । मैं चिदानन्द के विषय मे यह बात कह रहा हूँ । चिदानन्द की दो स्त्रियाँ हैं—एक सुमति और दूसरी कुमति । कुमति, सुमति से

कहती है— इस चिदानन्द को छह मे से एक ने बहकाया है। इस कारण यह पुद्गल द्रव्य के इशारे पर नाचता है। पुद्गल इसे नाना प्रकार से नाच नचाता है ।

सुमति ने कहा— पुद्गल जड है। उसकी क्या ताकत कि वह चैतन्य को नचा सके । यह तो चिदानन्द की ही भूल है जो अपने स्वरूप को न पहचान कर पुद्गल के भ्रम में पड रहा है ।

ससार का यह मायाजाल वास्तव मे पुद्गल की ही रचना है । पुद्गल जड है और मिलना तथा बिछुडना उसका धर्म है । मगर चिदानन्द ने उस मायाजाल को अपना मान लिया है । ज्ञान होने पर माया चिदानन्द के पास ठहर नही सकती, परन्तु जब तक अज्ञान है तब तक यह भ्रम मे पडा हुआ है । जड वस्तुओ का कभी सयोग होता है, कभी वियोग होता है । फिर भी चिदानन्द वास्तविकता के मर्म को नही समझता और 'यह मेरा यह मेरा' इस प्रकार की ममता के जाल मे फँसा हुआ है ।

मित्रो ! अगर आपको पेट-घिसनी आदत छोडनी हो तो विचार करो कि यह शरीर तुम्हारा है या तुम इस शरीर के हो ? इस शरीर को शरीर नाम देने वाला चिदानन्द ही है । तुम मोती को अपना कहते हो परन्तु अपना कहने वाला चिदानन्द है। अतएव मोती के तुम न बनो । भलीभाँति समझ लो कि तुम मोती के नही हो,

मोती तुम्हारा है। इन दोनों प्रकार के कथन मे क्या अन्तर है ?

अगर तुम मोती के होओगे तो मोती तुमको नही छोडेगा और तुम मोती की रक्षा के लिए अपने को निछावर कर दोगे। मोती के लिए कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, नीति-अनीति और पुण्य-पाप आदि का भी विचार न करोगे। इसके विपरीत अगर मोती मेरा है, ऐसा सोचोगे तो मोती लिए धर्म का त्याग नही करोगे। मोती जाय तो जाय, मगर धर्म न चला जाय, इस बात का पूरा ध्यान रक्खोगे।

जैनधर्म की यह विशिष्टता है कि उसकी छत्र छाया मे आश्रय लेने वाला कोई भी पुरुष हजार रुपया देने पर भी किसी क्षुद्र जीव को भी मारने के लिए तैयार न होगा। मगर यह तुम्हारी उपज नही है। बल्कि पूर्वाचार्यों ने कुल—धर्म मे इस मर्यादा को सम्मिलित कर दिया है। तुम्हारी कमाई तो तब समझे जब झूठ न बोलो। आज लोग एक दमडी के लिए झूठ बोलने में सकोच नही करते। यह कितने दुख की बात है! यह बात सिर्फ गृहस्थो मे ही नही, बल्कि कतिपय साधु भी धर्म का मर्म न समझ कर असत्य भाषण करने से नही डरते। लोकमान्यता और प्रतिष्ठा चले जाने के भय से साधु होकर भी धर्म के कार्य मे सत्य पर नही टिकते हैं!

अगर कोई गृहस्थ कीड़ी को न मारे किन्तु गरीब का

कचूमर निकाल डाले तो उसे क्या दयावान् कहा जा सकता है ?

यह सब पुद्गल के मायाजाल का प्रताप है। अगर वास्तविक कल्याण चाहते हैं तो आपको इस मायाजाल से नाता तोडना होगा। स्व-पर का भेदज्ञान करना होगा। भेदविज्ञान हो जाने पर कल्याण का मार्ग आपके लिए खुल जायगा और अन्त मे आप आत्मा के बदले परमात्मा बन जाएँगे।

१९-श्री मल्लीनाथजी

प्रार्थना

मल्लि जिन बालब्रह्मचारी,
"कुम्भ" पिता "परभावती" मइया तिनकी कुँवारी ॥टेर॥
मा नी कूँख कन्दरा माही उपना अवतारी।
मालती कुसुम-मालानी वाछा, जननी उर धारी ॥१॥
तिणथी नाम मल्लि जिन थाप्यो, त्रिभुवन प्रियकारी।
अद्भुत चरित तुम्हारो प्रभुजी, वेद धर्यो नारी ॥२॥
परणन काज जान सज आए, भूपति छह भारी।
मिथिला पुर घेरी चौतरफा, सेना विस्तारी ॥३॥
राजा "कुम्भ" प्रकाशी तुम पै, बीती विधि सारी।
छहुं नृप जान सजी तो परणन, आया अहकारी ॥४॥
श्रीमुख धीरज दिधी पिता ने, राखो हुशियारी।
पुतली एक रची निज आकृति, थोथी ढकवारी ॥५॥
भोजन सरस भरी सा पुतली, श्री जिन सिणगारी।
भूपति छः बुलवाया मन्दिर, बिच बहु दिन टारी ॥६॥

पुतली देख छहुं नृप मोह्या, अवसर विचारी ।
ढक उघार दियो पुतली को, भभक्यो अन्न भारी ॥७॥

दुसह दुगन्ध सही ना जावे, उठ्या नृप हारी ।
तब उपदेश दियो श्रीमुख से, मोह दशा टारी ॥८॥

महा असार उदारिक देही, पुतली इव प्यारी ।
सग किया भटके भव दु ख मे, नारी नरक वारी ॥९॥

भूपपि छ प्रतिबोध सुनि हो, सिद्धगति सम्भारी ।
"विनयचन्द" चाहत भव-भव मे, भक्ति प्रभू थारी ॥१०॥

यह भगवान् मल्लिनाथ की प्रार्थना की गई है। परमात्मा की प्रार्थना जीवन के उच्च होने की डोरी है। प्रार्थना से आत्मा ऊर्ध्वगामी बनता है। प्रार्थना करने वाला और जिसकी प्रार्थना की जाय वह, कैसे हो, इसमे मतभेद हो सकता है। यो तो प्रत्येक आस्तिक किसी न किसी रूप मे परमात्मा की प्रार्थना करता है और प्रार्थना द्वारा आत्मा को ऊपर चढाने की इच्छा रखता है, परन्तु सब प्रार्थनाओ मे विशेष प्रार्थना कौन-सी है, यह विचारणीय बात है।

आर्य देश के निवासियो द्वारा की जाने वाली परमात्मा की प्रार्थना मे और आर्य देश से बाहर वालो की प्रार्थना मे बहुत अन्तर है। वह अन्तर इतना अधिक है जितना आकाश और पृथ्वी मे है। आर्य देश से बाहर के लोगो की प्रार्थना मे गुलामी का भाव भरा रहता है। वे

समझते हैं कि ईश्वर एक व्यक्ति विशेष है और हम सब उसके अधीनस्थ जीव हैं। हम अपनी सहायता करने के लिए उससे प्रार्थना करते हैं। जैसे राजा के सामने किसी चीज की याचना करने से राजा सहायता देता है, उसी प्रकार ईश्वर हम से बडा है, हम उसको प्राथना करेंगे तो वह हमारी कुछ मदद करेगा।

आर्य देश से बाहर के लोगो की प्रार्थना की मूल दृष्टि यह है। जब इगलेड और जर्मनी में युद्ध चला था तब बादशाह तथा अन्य ईसाई लोग गिर्जाघर में जाकर प्रार्थना करते थे। वह प्रार्थना क्या थी ? बस, यही कि—हे परमात्मा ! जर्मनी को हरा दे और हमे विजय दे।' मगर यह बात विचारणीय है कि परमात्मा ऐसा क्यो करेगा ? क्या वह इगलेड का ही है ? जर्मन प्रजा क्या उसकी प्रजा नही है ? इसके सिवा जैसे इगलेड ने परमात्मा से अपनी विजय की और जर्मनी के पराजय की प्रार्थना की है, उसी प्रकार जर्मनी में भी तो अपनी विजय और शत्रु के पराजय की प्रार्थना की जाती थी। ऐसी दशा मे तुम्ही सोचो कि परमात्मा किसकी प्रार्थना स्वीकार करे और किसकी अस्वीकार करे ? वह कहाँ जाए ? किसे जय दिलावे और किसे पराजय दिलावे ? ईश्वर के लिए तो दोनो देश समान हैं। अगर यह खयाल किया जाता हो कि ईश्वर तुम्हारा ही है, वह शत्रु-देश का नही है, तब तो तुम ईश्वर के ईश्वरत्व मे ही

बट्टा लगाते हो इस मान्यता से ईश्वर का ईश्वरत्व छिन जाता है। फिर या तो कोई ईश्वर न ठहर सकेगा या अलग अलग देशो के अलग अलग ईश्वर मान लेने पड़ेगे।

फिर भी यह बीमारी इतने से ही शात न होगी। जब किसी एक ही देश के दो प्रातो में झगड़ा खडा होगा तब प्रान्त प्रान्त का ईश्वर भी अलग-अलग हो जाएगा। इस प्रकार ईश्वर की अनेकता का रोग फैलते-फैलते व्यक्तियो तक पहुंचेगा और एक-एक व्यक्ति का ईश्वर भी अलग-अलग कल्पित करना पडेगा। अब सोचना चाहिए कि ऐसा ईश्वर क्या दरअसल ईश्वर कहलाएगा ? लोगो मे आपस मे लडने की पाशविक वृत्ति इतनी अधिक बढी हुई है कि वे अपने साथ अपने भगवान् को भी अछूता नही छोडना चाहते। ईश्वर को भी लडाई मे शामिल करना चाहते हैं। अगर उनका वश चले तो वे साडो की तरह अपने-अपने भगवान् को लडा-भिडा कर तमाशा देखें और अपनी पशुता प्रदर्शित करे। पर उनसे ऐसा करते नही बनता। इस कारण परमात्मा से अपनी विजय और शत्रु की पराजय की प्रार्थना करके ही सतोष मान लेते हैं।

लेकिन इस सम्बन्ध मे आज कुछ नही कहना है। हम तो यहाँ सिर्फ प्रार्थना के मूल मे रही हुई भावना की ही आलोचना करना चाहते हैं। उक्त कथन से यह स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है कि आर्य देश से बाहर के लोगो

की प्रार्थना में बड़ा वेढगापन है। उनके द्वारा की जाने वाली प्रार्थना की जड मे गुलामी का भाव भरा हुआ है। उनके समीप ईश्वर के लिए भी समानता का सिद्धात नही है। वे ईश्वर को भी समभावी के रूप मे नही देखना चाहते।

वास्तव मे आत्मा और ईश्वर एक ही है। केवल प्रकृति के भेद से और कर्म की उपाधि से आत्मा और परमात्मा मे अन्तर दिखाई देता है। लोगो ने भ्रम और अज्ञान के वश हो कर ईश्वर को व्यक्ति-विशेष के रूप मे कल्पित कर लिया है। वास्तव मे ईश्वर कोई स्वतन्त्र व्यक्ति-रूप सत्ता नही है। वह आत्मा की शुद्ध और स्वाभाविक अवस्था है और उस अवस्था को प्राप्त करने का प्रत्येक प्राणी को अधिकार है। ईश्वर कहता है—कर्म का नाश करो। कर्म का नाश करने से मैं और तू एक हैं। आज जो प्रार्थी ससारी है, कर्मों से लिप्त होने के कारण शरीरधारी है और अनेक प्रकार के कष्ट उठा रहा है, वह कुछ दिन बीतने पर कर्मों को सर्वथा क्षीण करके, अशरीर बन कर परमात्मा हो जाता है। परमात्मा या सिद्ध कोई भिन्न व्यक्ति नही है।

परमात्मा का यही आदेश है—'मुझ मे और तुझ मे कोई मौलिक अन्तर नही है। जो कुछ अन्तर आज दृष्टिगोचर होता है, वह सब औपाधिक है, आगन्तुक है और एक दिन वह मिट जायगा। इस औपाधिक अन्तर को दवा दे, मैं और तू एक हो जाएँगे।'

२०-श्री मुनिसुव्रतनाथजी

प्रार्थना

श्री मुनिसुव्रत साहिवा, दीनदयाल देवाँ तणा देव के।
तारण तरण प्रभु तो भणी,
उज्जल चित्त सुमरूँ नितमेव के ॥१॥

हूँ अपराधी अनादि को, जनम-जनम गुना किया भरपूर के।
लूटिया प्राण छ कायना, सेविया पाप अठार करूर के ॥२॥

पूर्व अशुभ कर्त्तव्यता, तेहने प्रभु तुम न विचार के।
अधम उधारण विरुद छे,
सरण आयो अब कीजिये सार के ॥३॥

किंचित पुन्य परभावथी, इण भव ओलख्यो श्रीजिन धर्म के।
निवर्तूँ नरक निगोदथी, अेहवो अनुग्रह करो परिब्रह्म के ॥४॥

साधुपणो नहि संग्रह्यो, श्रावक व्रत न किया अंगीकार के।
आदरिया तो न आराधिया,
तेहथी रुलियो हूँ अनंत संसार के ॥५॥

अब समकित व्रत आदर्यो, तेने अराधी उतरूँ भवपार के।
जनम जीतव सफलो हुवे, इण पर विनवूँ वार हजार के ॥६॥

"सुमति" नराधिप तुम पिता,

घन-घन श्री 'पदमावती' माय के ।

तस सुत त्रिभुवन तिलक तू,

वदत 'विनयचन्द' सीस नवाय के ॥७॥

श्री मुनिसुव्रत सायबा !

भगवान् मुनिसुव्रतनाथ की यह प्रार्थना है । देखना चाहिए, कि भक्त अपने भावों को भगवान् के समक्ष प्रार्थना द्वारा किस प्रकार निवेदन करते है ? इस विषय को लेकर जितना भी विचार किया जायगा, उतना ही अधिक आनद अनुभव होगा । आनन्ददायक वस्तु जितने अधिक समीप होगी, उससे उतना ही अधिक आनन्द मिलेगा । समुद्र की शीतल तरगे ग्रीष्म के घोर ताप से तपे पुरुष को शान्ति-दायक मालूम होती हैं तो अधिक सन्निकट होने पर और भी अधिक शान्ति पहुंचाती हैं । पुष्प का सौरभ अच्छा लगता है लेकिन फूल जब अधिक नजदीक होता है तो उसकी खुशबू और ज्यादा आनन्द देने वाली होती है। इन लौकिक उदा-हरणो से यह बात भलीभांति समझी जा सकती है कि परमात्मा की प्रार्थना जब समीप से समीपतर हो जाती है तब उसमे और भी अधिक माधुर्य प्रतीत होने लगता है । इस दशा में प्रार्थना की सरसता बहुत कुछ बढ जाती है और उसमे अपूर्व आस्वाद आने लगता है । परमात्मा की प्रार्थना का सन्निकट होना अर्थात् जिह्वा से ही नही, वरन्

अन्तर से—अन्तरतर से—आत्मा से प्रार्थना का उद्भव होना। परमात्मा की प्रार्थना जब आत्मा से उद्भूत होती है तब आत्मा परमात्मपद की अनुभूति के अलौकिक आनन्द मे डूब जाता है। उस समय उसे बाह्य ससार विस्मृत सा हो जाता है। उस समय के आनन्द की कल्पना अनुभवगम्य है, वाणी उसे प्रकट करने मे समर्थ नही है।

प्रार्थना अन्तरतर से हुई है या नही, यह जानने की कसौटी यही है कि अगर आपको प्रार्थना में अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव हुआ है- अद्भुत शान्त रस के सरोवर मे आप डूब गये हैं तो समझिए कि आपकी प्रार्थना समीप की है। अगर आपको यह स्थिति प्राप्त नही हुई तो मानना चाहिए कि प्रार्थना आत्मस्पर्शी नही है- ऊपरी है और उससे प्रार्थना का उद्देश्य पूर्ण रूप से सफल नही हो सकता। प्रार्थना के मार्ग मे आपको और आगे बढना है— उच्चतर अवस्था प्राप्त करना है और अपनी अपूर्णता को हटाना है। जिस समय आपकी यह अपूर्णता दूर हो जायगी, उस समय आपको ससार के विषयभोग तृण के समान तुच्छ और रस-हीन प्रतीत होने लगेगे।

प्रश्न किया जा सकता है कि क्या ऊपर से प्रार्थना बोलना उचित नही है? इसका उत्तर यह है कि चाहे आपकी प्रार्थना अन्तरतर से उत्पन्न हुई हो और आप उसके रस का आस्वादन करते हों, तब भी जिह्वा से प्रार्थना बोलना

बन्द कर देने से व्यवहार उठ जायगा। अगर आपने आजीवन मौन साध लिया होता, वार्तालाप करना भी स्थगित कर दिया होता तो प्रार्थना बोलना बन्द कर देना भी कदाचित् ठीक कहा जा सकता था, लेकिन जब तक आपने ऐसा नही किया— सासारिक कार्यो मे बोलना बन्द नही किया, तब तक प्राथना बोलना बन्द कर देना कहाँ तक उचित है ? अगर आप रोटी-पानी का नाम लेना छोड चुके हो तो बात दूसरी है । अन्यथा दुनिया भर की पचायत करो और प्रार्थना बोलना छोड दो तो यह बुद्धिमत्ता की बात नही हैं । उपर्युक्त आन्तरिक प्रार्थना का अर्थ यह कदापि नही कि आप वाचनिक प्रार्थना न करें । उसका आशय यह है कि जब आप वाचनिक प्रार्थना करे तो मन भी साथ रहे । ऐसा न हो कि मन तो इधर-उधर भटकता फिरे और अकेली जीभ प्रार्थना के शब्दों का उच्चारण करती रहे । इस प्रकार की प्रार्थना का स्वाद आत्मा को और मन को नही आएगा । बेचारी जीभ तो खाने पीने का स्वाद चख सकती है, वह प्रार्थना के रस को नही चख सकती । प्रार्थना का असली रस अनुभव करना है तो मन, वचन और काय— तीनो से प्रार्थना करो । वाणी से प्रार्थना का जो पावन पीयूष-प्रवाह बहे, उसमें मन निमग्न होकर पवित्र बन जाय तो प्रार्थना से कल्याण होगा । जो मन प्रार्थना के अर्थप्रवाह से दूर भागता फिरेगा, उसके पाप किस प्रकार धुलेंगे ?

कल्पना कीजिए, आपने किसी से पानी लाने के लिए कहा। आपके शब्द के आकर्षण से वह पानी ले आया। पानी आपके सामने आ गया। मगर पानी सामने आने से ही क्या प्यास बुझ जायगी ? नही। शब्द में शक्ति है और उस शक्ति से पानी आ गया, लेकिन पानी के आ जाने से प्यास नही बुझेगी। इसी प्रकार भूख लगने पर आपने भोजन मगवाया। भोजन आ गया, मगर भाजन आ जाने से भूख नही मिट सकती। पानी पीने से प्यास और भोजन करने से ही भूख मिटेगी। इस प्रकार प्रयोजन सिद्ध करने के लिए दो व्यवहार हुए— एक वस्तु का आकर्षण करने के लिए बोलना और दूसरा आकर्षित वस्तु का उपयोग करना। सासारिक कार्यो मे आप दोनो व्यवहार करने से नही चूकते लेकिन परमात्मा की प्रार्थना करने मे भूल होती है। आप प्रार्थना बोलते हैं और बोलने से प्रार्थना का आनन्द रूपी जल आपके पास आता भी है, मगर जब तक आप उसका पान नही करेगे, तब तक आनन्द मिले कहाँ से ? प्रार्थना के परिणाम स्वरूप फिर शान्ति मिले कैसे ? अतएव वाणी द्वारा ऊपर से प्रार्थना करो और मन के द्वारा आतरिक प्रार्थना भी करो। दोनो का समन्वय करने से आप कृतार्थ हो जाएगे। आपको कल्याण की खोज मे भटकना नही पड़ेगा। कल्याण आप ही आपको खोज लेगा।

२१-श्री नमिनाथजी

प्रार्थना

"विजयसेन" नृप "विप्राराणी", नमीनाथ जिन जायो।
चौंसठ इन्द कियो मिल उत्सव, सुर नर आनन्द पायो।
सुज्ञानी जीवा ! भज लो जिन इकवीसवाँ। टेर॥१॥

भजन किया भव भवना दुष्कृत, दुःख दुर्भाग्य मिट जावे।
काम, क्रोध मद मत्सर तृष्णा दुर्मति निकट न आवे रे २॥

जीवादिक नव तत्व हिये धर, हेय ज्ञेय समझीजे।
तीजो उपादेय ओलख ने, समकित निरमल कीजे रे ॥३॥

जीव अजीव बंध, ये तीनो, ज्ञेय जथारथ जानो।
पुन्य पाप आस्रव परिहरिये, हेय पदारथ मानो रे।४।

सवर मोक्ष निर्जरा निज गुण, उपादेय आदरिये।
कारण कारज जाण भली विध, भिन्न भिन्न निरणो करिये रे ।५॥

कारण ज्ञान स्वरूप जीव को, काज क्रिया पसारो।
दोनू को साखी शुद्ध अनुभव, आपो खोज तिहारो रे ॥६॥

तू सो प्रभु प्रभु सो तू है, द्वैत कल्पना मेटो।
सच्चिद् आनन्दरूप 'विनयचन्द', परमातम पद भेटो रे ॥७॥

परमात्मा की प्रार्थना से आत्मा में पवित्र भाव उत्पन्न होते हैं। वे भाव किस प्रकार के होते हैं, यह बात अनुभव के द्वारा ही जानी जा सकती है आत्मा स्वय ही उसे जान सकता है। जैसे सूर्य के प्रकाश को नेत्र द्वारा सूर्य के प्रकाश से ही जाना जा सकता है, उसी प्रकार परमात्मा की प्रार्थना की महिमा आगम द्वारा आत्मा से ही जानी जा सकती है। उसे जानकर ज्ञानी पुरुषो के मुख से अनायास यह ध्वनि निकल पडती है :—

सुज्ञानी जीवा ! भजलो रे जिन इकवीसवा ।

कहा जा सकता है कि यहाँ ज्ञानी को भगवान् का भजन करने की प्रेरणा की गई है, किन्तु ज्ञानी को भजन की क्या आवश्यकता है ? ऐसा कहना कृतज्ञता नही, कृतघ्नता है। पिता से धन ले लेने के पश्चात् यदि पुत्र यह विचार करता है कि अब पिता की सेवा करने से क्या लाभ है, तो ऐसे पुत्र को क्या कहना चाहिए ?

'कृतघ्न !'

इसी प्रकार ज्ञान प्राप्त हो जाने पर परमात्मा के भजन की क्या आवश्यकता है, ऐसा कहने वाला भी कृतघ्न है। सोचना चाहिए कि ज्ञान की प्राप्ति हुई कहाँ से है ? ज्ञान की प्राप्ति परमात्मा की कृपा का ही फल है। अत. उसकी प्रार्थना मे मग्न होकर स्तुति करना चाहिए, जिससे ज्ञान पतित न होकर धीरे धीरे उसी परमात्मा के रूप मे

पहुंच जाय ।

यह भी कहा जा सकता है कि ज्ञानी भजन करे तो ठीक है, परन्तु जो लोग अज्ञान मे पड़े हैं वे भजन करने के अधिकारी कैसे हो सकते हैं ? चोरी, व्यभिचार, बालहत्या आदि सरीखे घोर अपराध करने वाले पापी हैं, उन्हें परमात्मा का भजन करने का क्या अधिकार है ? इसका उत्तर यह है कि औषध रोगी के लिए ही होती है। जिस औषध का सेवन रोगी न कर सके उसका कोई महत्त्व नही, उसकी कोई उपयोगिता नही है ।

परमात्मा का नाम पतितपावन है। अगर पतित लोगो को परमात्मा के भजन से अलग रक्खा जाय तो उसके पतितपावन नाम की महिमा कसे रहेगी ? अतएव पापी को भी परमात्मा का भजन करने का अधिकार है । अलबत्ता, यह ध्यान रखना चाहिए कि भजन पापो को काटने के लिए, पापो से मुक्त होने के लिए किया जाना चाहिए, पापो को बढाने के लिए नही । ठीक उसी प्रकार जैसे रोगो से मुक्त होने के लिए दवा का सेवन किया जाता है, रोग बढ़ाने के लिए नही ।

तत्त्व की सिद्धि के लिए ज्ञानी, अज्ञानी, पण्डित, मूर्ख आदि सब को परमात्मा का भजन करके पवित्र होना चाहिए ।

प्रश्न किया जा सकता है कि परमात्मा की भक्ति से

क्या प्राप्त होगा ? इस प्रश्न का उत्तर देने मे कारण, कार्य और भाव की घटना समझना आवश्यक है। यह सब बातें बहुत सूक्ष्म हैं। इन्हे समझाने के लिए बहुत समय अपेक्षित है। फिर भी सक्षेप मे कहने का प्रयत्न करूँगा।

भजन करने से क्या लाभ है, इस प्रश्न का उत्तर इसी प्रार्थना मे आ गया है। प्रार्थना मे कहा है —

काम क्रोध मद मत्सर तृष्णा दुर्मति निकट न आवे।

जिस भजन के करने से काम, क्रोध, मद, मत्सर आदि दुर्भाव नष्ट हो जाते हैं, उसी को वास्तविक भजन समझना चाहिए। अथवा यो कहा जा सकता है कि इन दुर्भावो को नष्ट करने के लिए भजन किया जाता है।

ईश्वर के भजन या नाम स्मरण मे ऐसा क्या चमत्कार है जिससे आत्मा के समस्त दुर्भाव नष्ट हो जाते हैं ? यह भी समझ लेने की आवश्यकता है। लोग दूसरे कामो की खटपट मे पडे रहते हैं ईश्वर के नाम से प्रेम नही करते। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि उन्होने ईश्वर के नाम की महिमा नही जानी। जो लोग अपना समय व्यर्थ नष्ट करते हैं, वे भी उस समय को परमात्मा का स्मरण करके सार्थक नही करते। परमात्मा का स्मरण करने वाले का चेहरा भव्य और नेत्र तेजस्वी होते हैं। उसके पास पाप टिक नही सकता। भक्त और अभक्त मे क्या अन्तर है, इसे भक्ति करने वाला ही भलीभांति समझ सकता है।

अत. परमात्मा के नाम का घोष हृदय मे श्वास की तरह निरन्तर होता रहना चाहिए। आपके हृदय मे परमात्मा के नाम का घोष अगर निरन्तर चलता रहेगा तो निश्चित रूप से आपके समस्त पाप भयभीत होकर भाग जाएंगे। सभव है, आपको इस कथन पर विश्वास न आता हो। इसके लिए एक उदाहरण लो— क्या दीपक के पास अन्धेरा आता है?

'नही!'

'क्यो?'

'दीपक के प्रकाश से वह दूर ही रहता है।'

'और दीपक यदि बुझ जाए तो?'

'अन्धेरा घेर लेगा।'

'इस बात पर पूरा विश्वास है?'

हाँ!'

मित्रो! आपको दीपक पर इतना भरोसा है किन्तु परमात्मा के नाम पर नही! आपने परमात्मा के नाम को दीपक के बराबर भी नही समझा! भाइयो, जैसे दीपक के प्रकाश से अन्धेरा भाग जाता है उसी प्रकार परमात्मा के नाम के अलौकिक प्रकाश से पाप भागेंगे। आप दीपक पर जैसा विश्वास रखते हैं, उसी प्रकार परमात्मा के नाम पर भी विश्वास रखिए।

ईश्वर भीतर और बाहर सब जगह प्रकाश देता है। उसके प्रकाश से कोई जगह खाली नही है। वह सब जगह

देखता है। चाहे आप कोठरी मे छिपकर कुछ करें चाहे प्रकट मे करें, या मन मे सोचें, पर उससे कुछ भी छिप नही सकता। आपके भीतर क्या है, यह परमात्मा को भली-भाति विदित है। अगर आपको यह प्रतीति हो जाय कि ईश्वर सब जगह देखता है तो आपका मन नीच या बुरी वासना की ओर कैसे जाएगा ? आप जानते हो कि आपके साथ राजा है तो क्या आप चोरी करने का साहस करेंगे ?

'नही !'

'क्यो ?'

'उनसे डरेंगे !'

आप सोचेंगे कि राजा के राज्य मे रहते है, फिर उनकी इच्छा के विरुद्ध कार्य कैसे करें ? इसी तरह जो परमात्मा सर्वत्र है और जिसे आप सर्वत्र जानकर भजते हैं, उसका निरन्तर ध्यान रहने से आपके हृदय मे बुरी वासना उत्पन्न नही होगी। हृदय मे परमात्मा होगा तो आप यही सोचेगे कि-मेरी प्रत्येक भावना का,, मेरे प्रत्येक कार्य और सकल्प का भगवान् साक्षी है। मैं कुमार्ग की ओर कैसे जाऊँ ?

अब आप सोचेंगे कि ऐसा तो साधु ही कर सकते हैं, हम गृहस्थो से ऐसी सावधानी नही निभ सकती। गृहस्थ तो जितनी देर साधु के पास बैठे या धर्मक्रिया करे उतना ही धर्म है। बाकी ससार मे तो सब पाप ही पाप है।'

आपकी ऐसी ही भावना रहती है। पर आपको सोचना चाहिए कि यह भावना शास्त्र के अनुकूल है या प्रतिकूल है ?

भगवान् ने उन लोगो को भी श्रावक कहा है जो सग्राम करने गये थे। क्या सग्राम मे गया हुआ श्रावक अपना श्रावकपन भूल गया था ? या सग्राम मे जाने से उसका श्रावकपन नष्ट हो गया था ? फिर क्यो सोचते हो कि मकान और दुकान में तुम अपने धर्म का पालन नही कर सकते ?

आप कहगे 'हम ससार मे जितने काम करते हैं, कुटुम्ब परिवार का पालन-पोषण करने के लिए करते हैं। बिना पाप किये काम नही चलता।' यह कहना किसी अ श मे सत्य हो सकता है, सर्वांश मे नही। गृहस्थ अगर अपनी मर्यादा मे रहकर कार्य करे तो वह धर्म का उपार्जन भी कर सकता है। परिवार का भरण पोषण करने के लिए छल कपट, दगाबाजी, बेईमानी और अनीति करना आवश्यक नही है। न्याय नीति से और प्रामाणिकता से व्यवहार करने वाले का परिवार भूखा नही रहता। आप गृहस्थी मे एकात अधर्म मान कर व्यापार मे अनीति और अप्रामाणिकता को आश्रय देते हैं, यह उचित नही है। प्रत्येक स्थिति मे मनुष्य अपने धर्म का यथायोग्य पालन कर सकता है। अतएव साधु-सतों के समागम से अन्त करण मे जो धर्म भावना आप ग्रहण करते हैं, उसका व्यवहार ससार के प्रत्येक कार्य के समय

होना चाहिए । जो भी कार्य करो, धर्म को स्मरण करके करो । अपने अन्त.करण को ऐसा साध लो कि वह प्रत्येक दशा में तुम्हारा मार्ग दर्शक बन सके । सत्य को सदैव अपने सन्मुख रक्खो ।

मित्रो ! सत्य पर विश्वास बैठ जाना बड़ा दुर्लभ है । इस विश्वास की प्राप्ति के लिए परमात्मा का भजन करो । काम, क्रोध मोह कषाय को जीतने का प्रयत्न करो तो हृदय मे कभी पाप नही जागेगा । भगवान् के भजन से काम, क्रोध, मद, मत्सरता का नाश होता है । अतएव इसका नाश करने के लिए परमात्मा का भजन करना आवश्यक है । कपट करने के लिए जो भजन किया जाता है, वह भजन नही है । बिना किसी कामना के आत्मा को पवित्र करने के लिए किया गया भजन ही सच्चा भजन है ।

आप सोचते होंगे कि प्रार्थना तो आप बोलते हैं पर वह चमत्कार, जो प्रार्थना मे हम बतलाते हैं, क्यों दिखाई नही देता ? प्रार्थना करने पर काम क्रोध आदि का नाश हो जाना चाहिए था, पर वह सब तो अब भी मौजूद है । इसका क्या कारण है ?

इस विषय को साकार करके समझना कठिन है, परतु यह देखना चाहिए कि प्रार्थना मे यह त्रुटि किस ओर से होती है ? प्रार्थना करते समय हमे भलीभाति समझना चाहिए कि जिसकी प्रार्थना की जा रही है वह कौन है ?

और इस प्रार्थना का उद्देश्य क्या है ?

आपस मे लड़ाई करने वाले दो मित्रो में से एक ईश्वर से प्रार्थना करता है— 'तू इस लड़ाई मे मेरी मदद कर' जिससे न्याय मेरे पक्ष मे हो और पतिपक्षी का पतन हो जाय ।' क्या ऐसी प्राथना करने वाले ने ईश्वर का स्वरूप समझा है ? उससे पूछा जाय— तू ईश्वर से प्रार्थना कर रहा है, परन्तु तेरा पक्ष सच्चा है या झूठा ? तब वह कहेगा—झूठा है, इसीलिए तो प्राथना कर रहा हूँ ।

अब जरा विचार कीजिए । एक वकील अगर सच्चे को झूठा और झूठे को सच्चा साबित करता है तो वह झूठ मे शरीक हुआ कहलायगा या नही ?

'अवश्य कहलाएगा ।'

उस वकील के लिए कहा जायगा कि उसने पैसों के लिए धर्म वेच दिया । उसने पैसे के लोभ मे पढकर सच्चे को झूठा और झूठे को सच्चा बना दिया ! हम उसे सलाह देंगे कि क्या सत्य से तुम्हारा पेट नही भरता जो झूठ को अपनाते हो ?

जब एक वकील से हम ऐसा कहते हैं तब ईश्वर को सच्चे को झूठा और झूठे को सच्चा वनाने के लिए याद करना क्या ईश्वर को पहचानना है ? ऐसा करने वाला क्या ईश्वर को न्यायी समझता है ?

मित्रो ! आप ईश्वर को अन्यायी बनाते हो और

फिर कहते हो कि उसकी प्रार्थना से काम-क्रोध आदि का नाश नही हुआ, यह कहाँ तक उचित है? आप उलटा काम-क्रोध की मात्रा को बढाने के लिए प्रार्थना करते हैं और फिर कहते हैं कि ईश्वर-प्रार्थना से काम-क्रोध का नाश क्यों नही होता ?

भाइयो ! ईश्वर की प्रार्थना मे कितना गुण है, यह बात जो अच्छी तरह समझ लेगा, वह राग-द्वेष को बढाने के लिए, तुच्छ लौकिक स्वार्थ पूर्ति के लिए या किसी दूसरे को हानि पहुंचाने के लिए उससे प्राथना कदापि नही करेगा। पर आज लोग चक्कर मे पड़े हैं। वे ईश्वर को तभी मानना चाहते हैं जब वह सच्चे को झूठा और झूठे को सच्चा बना दे !

तो फिर ईश्वर की प्रार्थना किस प्रकार करनी चाहिए ? इस प्रश्न के उत्तर मे मैं कहता हूँ कि ईश्वर की प्रार्थना इस प्रकार करनी चाहिए कि—'हे प्रभो ! क्रोध, लोभ, मोह आदि मेरे शत्रु हैं। तेरी शरण लिये बिना इन शत्रुओ का विनाश नही हो सकता। अतएव मुझे ऐसा बल दीजिए कि मैं कभी झूठ न बोलूँ, किसी पर क्रोध न करूँ और अपने हृदय मे लोभ, मोह, मात्सर्य आदि उत्पन्न न होने दू।' अगर आप इस प्रकार की प्रार्थना करते हुए ईश्वर तथा धर्म पर विश्वास रक्खेंगे तो आपको तीन लोक का राज्य भी तुच्छ दिखाई देगा, उस पर भी आपका मन

नही ललचाएगा ।

मित्रो ! इस प्रकार अपने दृष्टिकोण को शुद्ध और भावना को पुनीत करके परमेश्वर की प्रार्थना करो । आपका कल्याण होगा ।

२२-श्री नेमीनाथजी

प्रार्थना

"समुद्रविजय" सुत श्री नेमीश्वर, जादव कुल को टीको।
रत्न कुख रानी "शिवादेवी" तेहनो नन्दन नीको ॥
श्रीजिन मोहनगारो छे, जीवन प्राण हमारो छे ॥१॥

सुन पुकार पशु की करुणा कर, जानि जगत् फीको।
नव भव नेह तज्यो जीवन मे, उग्रसेन नृप-धी को ॥२॥

सहस्र पुरुष सग सजम लीधो, प्रभुजी पर उपकारी।
धन-धन नेम राजुल की जोडी, महा बालब्रह्मचारी ॥३॥

बोधानन्द सरूपानन्द मे, चित्त एकाग्र लगायो।
आतम अनुभव दशा अभ्यासी, शुक्लध्यान जिन ध्यायो ॥४॥

पूर्णानन्द केवली प्रगटे, परमानन्द पद पायो।
अष्टकर्म छेदी अलवेसर, सहजानन्द समायो ॥५॥

नित्यानन्द निराश्रय निश्चल, निर्विकार निर्वाणी।
निरातक निरलेप निरामय, निराकार निर्वाणी ॥६॥

एवो ज्ञान समाधि सयुत, श्री नेमीश्वर स्वामी।
पूरण कृपा "विनयचन्द" प्रभु की, अब तो ओलख पामी ॥७॥

परमात्मा की यह स्तुति साधारण रूप मे है। प्रेमी अपने प्रेम पात्र को जिन शब्दो मे याद करता है, भक्त भी कभी-कभी उन्ही शब्दो मे भगवान् को याद करता है। ऐसी प्रार्थना मे शब्दो का वास्तविक अर्थ न समझने के कारण सन्देह हो सकता है, किन्तु शब्दों का गूढ आशय समझ में आते ही सन्देह और भ्रम दूर हो जाता है।

परमात्मा 'मोहनगारो' है, किन्तु वह किसे मोहित करता है ? रागी किसे मोहता है और वीतराग किसे मोहित करता है, इस बात पर गम्भीरता के साथ विचार करना चाहिए। विचार करने पर गूढ आशय समझ मे आ जायगा और सन्देह नष्ट हो जायगा।

स्तुतिकार कहते हैं—हे परमेश्वर ! तेरी मोहनी शक्ति अद्भुत है। वह ऐसा अनोखा जादू है कि उसके सामने ससार के सारे जादू रद हो जाते है। जिस पर तेरी मोहिनी दृष्टि पडी, वह ससार मे से गायब हो जाता है— अर्थात् वह ससार की माया मे लिप्त नही हो सकता। वह ससार मे रहेगा भी तो ससार से अलिप्त होकर रहेगा, जैसे जल से कमल अलिप्त रहता है। मगर यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि भगवान् जब वीतराग हैं तो वे मोहक किस प्रकार हुए ? और जैनसिद्धान्त के अनुसार भगवान् मे मोहकता कैसे घट सकती है ?

इस प्रार्थना में राजीमती और नेमिनाथ का चरित्र

वर्णन किया गया है। राजीमती की ओर से भक्त कहता है— प्रभो! तू मोहनगारो है। लेकिन जब तुम्हे विवाह नही करना था— बालब्रह्मचारी ही रहना था तो फिर विवाह का यह ढोग क्यो रचा ? क्या सिर्फ दूर से दर्शन देने के लिए ही तोरण तक आये थे ?

इससे राजीमती समझी कि मुझे वश मे करने के लिए ही भगवान् का यहाँ तक पदार्पण हुआ था। इसी प्रकार भक्त भी समझता है कि भगवान् मोहन हैं।

भगवान् वीतराग हैं। उन्हे मोहक मानना अर्थात् ससार के समस्त नश्वर पदार्थों से मोह हटा कर एक मात्र उन्ही की ओर प्रीति लगाना तभी सम्भव है जब मनुष्य माया को छोड कर चेतन की ओर ही अपना सम्पूर्ण ध्यान लगावे।

हाड-हाड की मीजी प्रीति के रग मे रग जाय, ऐसी शक्ति केवल परमात्मा के रूप मे ही है।

> यैः शान्तरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वं,
> निर्मापितस्त्रिभुवनैकललामभूत !
> तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां,
> यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति ॥

अर्थात्—हे प्रभो! क्या निवेदन करूँ! आपका देह जिन परमाणुओ से बना है वे परमाणु ससार मे उतने ही थे। इसका प्रमाण यही है कि ससार मे आपके सदृश रूप

वाला कोई और नही है ।

रूप मे शान्ति अपना विशेष स्थान रखती है । जिस रूप के देखने से क्रूर से क्रूर आदमी भी शान्त हो जाता है वही मोहक रूप है ।

कवि कहता है— राजीमती गु'ग की खूबी समझती है । राजीमती ने प्रभु का ससारी रूप देखा तब तो उनकी ऐसी निष्ठा हो गई ससारी प्रभु के शरीर की छाया पड़ते ही उनके हृदय मे भगवान् के प्रति ऐसा शुद्ध प्रेम जागा, तो हे प्रभो ! आप तो सयमी और लोकोत्तर ज्ञान के धनी हैं । आपका तो कहना ही क्या है !

पूर्णानन्द केवली प्रकट्यो, परमानन्द पद पायो ।
अष्ट कर्म छेदी अलवेश्वर, सहजानन्द समायो ।

हे प्रभो ! आत्मानन्द मे कैसे जाया जाय ? बात बहुत सूक्ष्म है । नित्यानन्द और स्वरूपानन्द तो केवल योगी-गम्य हैं । मैं उसे शब्दो द्वारा कैसे व्यक्त कर सकता हूँ ।

जिस समय भगवान् दूल्हा बन कर जा रहे थे, उस समय वे उपशान्त थे, आनन्दमय थे, उनमे खोटा राग नही था । सम्पूर्ण उपशान्त भगवान् का ठीक ठीक वर्णन कौन कर सकता है ? उनके एक बार के दर्शन से ही बडी-बडी शक्तियाँ मोहित हो जाती हैं, फिर भगवान् को अगर वीत-राग-मोहक कहा जाय तो अनुचित क्या है ?

भगवान् के मोहक रूप को देखकर वाड़े मे घिरे पशु

क्या कहने लगे ? उनकी भावना को इस प्रकार कहा जा सकता है— हम कर्मों के सकट के वशीभूत होकर यहाँ आये थे, किन्तु वास्तव मे हमारा कोई पूर्वकृत सुकृत उदय मे आया है और वही सुकृत हमे बन्दी के रूप मे यहाँ ले आया है। हमारी उस स्वतन्त्रता से यह बन्धन लाखो गुना हितकर है, कल्याणमय है। हम बन्दी होकर यहाँ न आते तो भगवान् का यह परम शान्ति दायक दर्शन हमे कैसे नसीब होता !

भगवान् का अलौकिक रूप का दर्शन कर लेने पर सिंह और बकरी भक्ष्य और भक्षक का भाव भूल कर आपस मे रक्ष्य-रक्षक का सा व्यवहार करने लगे। बकरी सिंह को अपना बच्चा समझ कर उसे सूंघती और उस पर अपना वात्सल्य प्रकट करती है। सिंह बकरी को अपनी माता समझ कर उस पर श्रद्धा प्रकट करता है ! कैसा मोहकरूप है भगवान् का भगवान् का दर्शन पाते ही जाति-विरोधी जीव पारस्परिक विरोध को भूल करके वीतरागता की पावनी मोहिनी मे डूब कर आपस मे मित्रवत् व्यवहार करने लगे।

[ख]

भगवान् अरिष्टनेमि की प्राथना करते-करते आज एक विशेष बात मालूम हुई है। लेकिन उसका वर्णन करने मे जीभ काम नही कर रही है। वह वस्तु मन से भी परे है, जीभ से उसका वर्णन कैसे करूँ ? फिर भी आप सुनने बैठे

हैं सो उस पूर्ण को भी अपूर्ण रूप मे कहना होगा। पूर्ण बात तो पूर्ण पुरुष ही जानते हैं, मगर वे भी पूर्ण कथन नहीं कर सकते। मैं छद्मस्थ और अपूर्ण हूँ। मेरे शब्द तो सीमित और सीमित अर्थ वाले ही होगे। लेकिन मैं जो कह रहा हूँ वह मेरी कल्पना की बात नहीं है, उन्ही महापुरुष की कही हुई है जो पूर्णता को प्राप्त कर चुके थे। अतएव मेरे द्वारा अपूर्ण रूप से कही जाने पर भी, पूर्ण पुरुषो द्वारा कथित होने के कारण अगर आप इस पर रुचि लाएँगे तो निस्सन्देह आपका कल्याण ही होगा।

जो प्रार्थना अभी की गई है वह किसकी ओर से है? मेरी ओर से या आपकी ओर से? किसी की ओर से न कह कर इस प्रार्थना को यदि महासती राजीमती की ओर से की हुई मान लें तो आप और हम सभी इस प्रार्थना के अधिकारी हो जाएँगे। फिर जो भी हकदार होगा, जिसका भी हक होगा वह आप ही पा जाएगा। इस प्रार्थना मे कहा गया है —

श्रीजिन मोहनगारो छे, जीवन-प्राण हमारो छे।

यह कहती तो है राजीमती, फिर भी इस कथन में जिसका जितना हक होगा उसको उतना मिल जायगा। राजीमती इस प्रार्थना द्वारा समीप से सायुज्य में गई है। राजीमती की इच्छा विवाह करने की थी। वह विवाह करके आदर्श जीवन बिताना चाहती थी। उसका विचार उस समय

गृहत्याग कर साध्वी होने का नही था। और भगवान् अरि-ष्टनेमि के विचार के विषय मे तो कह ही कौन सकता है ! उनका विचार कुछ और ही था। फिर भी वे बरात सजाकर और दूल्हा बनकर आये। लेकिन राजीमती की और उनकी चार आखें भी नही हुई और उन्होने राजीमती को कोई सूचना या सदेश भी नही दिया, केवल—

सुनि पुकार पशु की करुणा करि जानि जगत सुख फीको।
नव भव स्नेह तज्यो जीवन मे उग्रसेन नृप धीको ॥

वे पशुओ की करुणा के लिए लौट गये। उन्होने सारथी से पूछा— हे सारथी ! इन सुखाभिलाषी और किसी को कष्ट न देने वाले भद्र प्राणियो को इस वाडे मे क्यो बन्द कर दिया है ? इन्हे इस तरह क्यो दुखी किया जा रहा है ?

क्या भगवान् इस बात को जानते नही थे कि पशुओ को वाडे मे बन्द करने का प्रयोजन क्या है ? फिर भी कायदे की खानापूरी करने के लिए उन्होने सारथी से यह प्रश्न किया— सारथी भी निर्भय होकर भगवान् से कहने लगा— भगवन् ! यह सब जीव आपके विवाह के निमित्त पकडे गये हैं। आपके विवाह मे आये हुए बहुत से लोगो को इनके मास का भोजन कराया जायगा। इस प्रकार सारथी ने उन पशुओ के बन्धन मे डाले जाने का कारण भगवान् को ही बताया। उसने सारी बात भगवान् पर ही

डाल दी ।

सारथी की बात सुनकर भगवान् ने उससे कहा— मेरे निमित्त से यह पशु जीव मारे जाएंगे । यह हिंसा मेरे लिए परलोक मे श्रेयस्कर नही हो सकती— परलोक मे कल्याण-कारिणी नही होगी ।

इस प्रकार सारथी की कही हुई बात का भगवान् ने भी समर्थन कर दिया और अपने ऊपर सम्पूर्ण उत्तरदायित्व ले लिया । उन्होने मेरी लीक तेरे जावे' इस कहावत को चरितार्थ नही किया, अर्थात् दूसरो के सिर उत्तरदायित्व थोपने का प्रयत्न नही किया । साफ कह दिया — यह मेरे लिए हितकर नही है । उन्होने यह नही कहा कि इनका पाप जो मारेगा उसी के सिर होगा । मुझे पाप क्यो लगेगा ? उन्होने 'सोधे' का आश्रय क्यो नही लिया ? भगवान् कह सकते थे इन जीवो की हिंसा के पाप का भागी मैं कैसे हो सकता हूँ ? मैं अपनी ओर से तो यह भी कह दूगा कि हिंसा मत करो । इतने पर भी यदि कोई नही मानेगा तो वही पाप का भागी होगा । लेकिन भगवान् ने ऐसा कहकर समस्या को टालना उचित नही समझा । उन्होने कहा— यह हिंसा मेरे लिए परलोक मे कल्याणकारिणी नही हो सकती ।

भगवान् का यह कथन कितना अर्थसूचक है ? इस कथन मे बडा ही गम्भीर आशय छिपा है ।

कोई आदमी तर्क-वितर्क करके दूसरे को दबा सकता है, चुप कर सकता है, लेकिन तर्क-वितर्क से पुण्य का पाप और पाप का पुण्य नही बन सकता। तर्क और दलील से कोई पाप के फल से नही बच सकता। अतएव तर्क-वितर्क के चक्कर मे न पडकर जो बात सत्य हो उसे स्वीकार कर लेना ही श्रेयस्कर है।

भगवान् को विवाह तो करना नही था, फिर भी बरात सजाकर मानो यही दिखाने के लिए आये थे। उस आम तौर पर फैली हुई हिंसा और मास भक्षण के विरुद्ध विनम्र आत्मोत्सर्ग द्वारा प्रबल जागृति उत्पन्न करने के लिए ही जैसे भगवान् ने यह युक्ति सोची थी। उन्होने ससार को दिखा दिया कि जगत् मे जो प्राणी की हिंसा करते हैं वे भी मेरी आत्मा के ही तुल्य है। अतएव पूर्ण करुणा की भावना को प्रकट करने के लिए भगवान् ने उन प्राणियो की हिंसा को अपने सिर ले लिया और कहा— उनकी हिंसा परलोक मे मेरे लिए श्रेयस्कर नही है।

हिंस्य अर्थात् मारे जाने वाले जीवो पर तो प्राय सभी सहृदय पुरुष करुणा करते हैं, कोई विरला पाषाणहृदय ही उनकी करुणा का विरोध करता है, किन्तु हिंसक अर्थात् मारने वाले पर भी करुणा करने का आदर्श अनूठा है! भगवान् हिंसक को भी आत्मीय रूप मे ग्रहण करते हैं और उनके पाप को अपना ही पाप मानकर उसका परिहार करने के लिए महान्

त्याग करते हैं । पूर्ण करुणा का यह साकार स्वरूप भगवान् अरिष्टनेमि के जीवन मे प्रत्यक्ष दिखाई देता है । वास्तव में नेमिनाथ भगवान् के द्वारा प्रदर्शित किया गया यह आदर्श अत्यन्त भावमय, अत्यन्त सुहावना और अत्यन्त बोधप्रद है।

मेरे पास एक सन्त थे । जब वह गृहस्थावस्था मे थे तो उनके लडके ने चोरी कर ली । उन्होने सोचा— यह लडका सजा पाएगा । अतएव उन्होने वह चोरी अपने ही सिर पर ले ली और लडके को बचा दिया । उन्हे सजा भी भोगनी पडी । सजा भोगने के बाद दीक्षा धारण की । इससे आप समझ सकते हैं कि बाप को बेटे पर कितनी करुणा होती है ! भगवान् की करुणा तो व्यापक और पूर्ण रूप से निस्वार्थ थी । उस समय यादवो मे जो हिंसा और अनीति चल रही थी वह भगवान् को असह्य हुई । उस समय विवाह शादी आदि के अवसर पर जीवो की हिंसा की जाती थी । उन सब की करुणा से प्रेरित होकर भगवान् ने उन जीवो की हिंसा को अपने सिर लेकर कहा— यह हिंसा मेरे लिए श्रेयस्कर नही हो सकती ।

भगवान् इतना कह कर ही नही रुके। उन्होने सारथी को रथ लौटा देने का आदेश भी दे दिया । सोचा—विवाह करना उचित नही है। मेरे इस त्याग से जगत् को बोध मिलेगा ।

भगवान् बिना विवाह किये ही लौट गये । भगवान् के

लौट जाने पर राजीमती का क्या कर्त्तव्य था ? राजीमती के विषय मे अनेक कवियो ने कविताएँ रची हैं। किसी ने भावपूर्ण रचना की है तो किसी ने इधर उधर से सामग्री जुटा कर कविता की है। 'नेमिनिर्माग' और 'नेमिदूत' आदि काव्य भी लिखे गये हैं। किसी ने कुछ भी लिखा हो, पर यह तो स्पष्ट है कि राजीमती की इच्छा विवाह करने की थी। भगवान् के लौट जाने से उसकी इच्छा पूरी नहीं हो सकी। इच्छा पूरी न होने पर क्रोध आना स्वाभाविक था। फिर भी राजीमती ने भगवान् पर क्रोध नही कि ा। इसका क्या कारण था ? यही कि राजीमती का भगवान् के प्रति गम्भीर और सात्विक प्रेम था।

राग और स्नेह अलग अलग हैं। प्रेम का मार्ग ही निराला है। प्रेमी को अपने प्रेमपात्र पर क्रोध नही आता। उसे अपने प्रेमपात्र का दोष दिखाई नही देता। प्रेम प्रथम तो विरह को सहन ही नही कर सकता, अगर सहन करता है तो विरह मे वह और अधिक बढ जाता है। प्रेमी विरह मे भी अपने प्रेमास्पद के दुर्गुणो का रोना नही रोता। इसके लिए कवियो ने अनेक उदाहरण दिये हैं। एक कवि ने कहा है—

> एक मछली जल माहे भमे छे,
> जल माहीं रेवु गमे छे,
> कोई पापीए-बाहर काढ़ी,

मुई तडफडी अंग पछाडी,
प्राण जावे जलने समरवु,
एम प्रभु चरणे चित धरवुं,

जल मे मछली प्रेम से रहती है। वह जब जल मे रहती है तो खान-पान आदि सभी क्रियाएँ करती है। लेकिन जब जल सूख जाता है या कोई पापी उसे जल से बाहर निकाल देता है तब वह फडफडाने लगती है। वह प्राण जाने के अन्तिम समय तक जल को ही स्मरण करती रहती है। मछली यह बात किससे सीख कर आई है? भक्तो ने परमात्मा से प्रेम करना मछली से सीखा है या मछली ने भक्तो से, जल से प्रेम करना सीखा है?

जिस प्रकार जल से बाहर निकाल दी जाने पर मछली तडफडाने लगती है, उसी प्रकार भगवान् के जाने पर राजीमती भी तडफडाने लगी। लेकिन उसने भगवान् को दोष नही दिया, पीछे के कवियो ने राजीमती के विषय मे अनेक कविताएँ लिखी हैं पर जिन्होने राजीमती के प्रेम की इस विशेषता को अपनी कविता मे से निकाल दिया, वे पूर्ण कवि नही है। राजीमती ने भगवान् के चले जाने पर यही कहा था कि भगवान् ने मेरा परित्याग कर दिया है, अत. अव मुझे अपने प्रेम की परीक्षा देनी चाहिए। राजीमती ने इसके सिवाय भगवान् के और कोई दुर्गुण नही कहे! विरह मे प्रेमी को व्यथा तो होती है, फिर भी वह अपने प्रेमा-

स्पद का दोष नही देखता ।

आज भगवान् आपके सामने हैं या नही? भगवान् हैं तो सही, लेकिन जिस तरह वे राजीमती को छोड़ गये थे उसी तरह आपको छोड गये हैं। अर्थात् आज भगवान् से आपका विरह है। उस विरह मे ही राजीमती ने भगवान् का सच्चा स्वरूप समझ पाया था, इसी तरह आप भी विरह मे भगवान् के सच्चे स्वरूप को पहचानो। तभी आपका भगवान् के प्रति सच्चा प्रेम कहा जायगा।

कोई भी शक्ति किसी पर जबर्दस्ती प्रेम उत्पन्न नही कर सकती। किसी ने ठीक ही कहा है—

प्रेम न वाडी नीपजे, प्रेम न हाट विकाय।
राजा प्रजा जिसको रुचे, शीश देय ले जाय।

प्रेम किसी बाग-बगीचे मे पैदा नही होता और न बाजार मे बिकता है। प्रेम जिसे रुचेगा वह अपना सिर देकर ले जायगा। प्रेम का मूल्य सिर है।

प्रेम की परीक्षा विरह में होती है। प्रेमी के हृदय मे विरह की आग तो लगती है, फिर भी वह अपने प्रेमपात्र के अवगुण नही देखता। सगर्भा अवस्था मे सीता को राम ने वन मे भेज दिया था। उस समय सीता को राम क्या बुरे लगे थे? स्त्रियाँ लग्न तो आज भी करती हैं लेकिन उनसे पूछो कि कभी पति से सच्ची लगन भी लगी है? सच्ची लगन तो विरले को ही लगती है। वन मे भेज देने

मुई तडफडी अंग पछाडी,
प्राण जावे जलने समरवु,
एम प्रभु चरणे चित धरवु,

जल मे मछली प्रेम से रहती है। वह जब जल मे रहती है तो खान-पान आदि सभी क्रियाएँ करती है। लेकिन जब जल सूख जाता है या कोई पापी उसे जल से बाहर निकाल देता है तब वह फडफडाने लगती है। वह प्राण जाने के अन्तिम समय तक जल को ही स्मरण करती रहती है। मछली यह बात किससे सीख कर आई है ? भक्तों ने परमात्मा से प्रेम करना मछली से सीखा है या मछली ने भक्तो से, जल से प्रेम करना सीखा है ?

जिस प्रकार जल से बाहर निकाल दी जाने पर मछली तडफडाने लगती है, उसी प्रकार भगवान् के जाने पर राजीमती भी तडफडाने लगी। लेकिन उसने भगवान् को दोष नही दिया। पीछे के कवियो ने राजीमती के विषय मे अनेक कविताएँ लिखी हैं पर जिन्होने राजीमती के प्रेम की इस विशेषता को अपनी कविता मे से निकाल दिया, वे पूर्ण कवि नही है। राजीमती ने भगवान् के चले जाने पर यही कहा था कि भगवान् ने मेरा परित्याग कर दिया है, अत. अब मुझे अपने प्रेम की परीक्षा देनी चाहिए। राजीमती ने इसके सिवाय भगवान् के और कोई दुर्गुण नही कहे ! विरह मे प्रेमी को व्यथा तो होती है, फिर भी वह अपने प्रेमा-

स्पद का दोष नही देखता ।

आज भगवान् आपके सामने हैं या नही ? भगवान् हैं तो सही, लेकिन जिस तरह वे राजीमती को छोड गये थे उसी तरह आपको छोड गये हैं । अर्थात् आज भगवान् से आपका विरह है । उस विरह मे ही राजीमती ने भगवान् का सच्चा स्वरूप समझ पाया था, इसी तरह आप भी विरह मे भगवान् के सच्चे स्वरूप को पहचानो । तभी आपका भगवान् के प्रति सच्चा प्रेम कहा जायगा ।

कोई भी शक्ति किसी पर जबर्दस्ती प्रेम उत्पन्न नही कर सकती । किसी ने ठीक ही कहा है—

प्रेम न वाडी नीपजे, प्रेम न हाट विकाय ।
राजा प्रजा जिसको रुचे, शीश देय ले जाय ।

प्रेम किसी बाग-बगीचे मे पैदा नही होता और न बाजार मे बिकता है । प्रेम जिसे रुचेगा वह अपना सिर देकर ले जायगा । प्रेम का मूल्य सिर है ।

प्रेम की परीक्षा विरह में होती है । प्रेमी के हृदय मे विरह की आग तो लगती है, फिर भी वह अपने प्रेमपात्र के अवगुण नही देखता । सगभा अवस्था मे सीता को राम ने वन मे भेज दिया था । उस समय सीता को राम क्या बुरे लगे थे ? स्त्रियाँ लग्न तो आज भी करती हैं लेकिन उनसे पूछो कि कभी पति से सच्ची लगन भी लगी है ? सच्ची लगन तो विरले को ही लगती है । वन मे भेज देने

पर भी सीता को राम से कोई शिकायत नही थी। आप भी परमात्मा से इसी प्रकार प्रेम करे तो समझना कि आपका प्रेम सच्चा है।

[ग]

समुदविजय-सुत श्री नेमीश्वर,

जादव-कुल नो टीको।

परमात्मा की स्तुति करना नित्य कर्म है। जीवन के लिए भोजन की तरह यह अनिवाय कार्य होना चाहिए। आज भगवान् अरिष्टनेमि की प्रार्थना की गई है। अब यह देखना है कि इस प्रार्थना से आत्मा को किन-किन वस्तुओ की प्राप्ति होती है।

मित्रो। ईश्वर प्रार्थना के आजकल अनेक उपाय देखे जाते हैं। जैनधर्म ने एक साधन यह बतलाया है कि व्यक्त के बिना अव्यक्त समझ मे नही आता। हमारे और आपके शरीर मे असख्य जीव भरे हैं, परन्तु वे जीव इतने सूक्ष्म हैं कि दृष्टि मे नही आते। अतएव यह निष्कर्ष निकलता है कि हम स्थूल को ही पहचान सकते हैं अर्थात् स्थूल शरीर के द्वारा ही जीव को जानते हैं। बिना शरीर के अथवा अत्यन्त सूक्ष्म शरीर वाले को जानना ज्ञानियो का ही काम है। मगर वह सूक्ष्मता जब स्थूल रूप मे आती है तब सब की समझ मे आ जाती है। इसी कारण हिसा के भी स्थूल और सूक्ष्म भेद किये गये है। स्थूल हिसा वही कहलाती है

जो प्रत्यक्ष दिखाई दे। पानी मे असख्यात जीव हैं, किन्तु पानी पीने वाले को कोई हत्यारा या हिंसक नही कहता। वही मनुष्य यदि कीड़ो को मारता है तो उससे कहा जाता है— क्यो हिंसा करता है ? इसका कारण यही है कि स्थूल को समझने मे कठिनता नही होती।

आज कई पुस्तकें ऐसी लिखी जाती हैं कि जिनसे जनसाधारण को कुछ समझ मे नही आता। कई स्तुतियाँ भी ऐसी हैं जिन्हें केवल विशेष ज्ञानी ही समझ सकते हैं। ऐसी चीजें भले उत्तम कोटि की हो मगर सर्व साधारण के काम की नही है। इसीलिए यहाँ तीथकर भगवान् की प्रार्थना इस रूप से की गई है कि इस प्रार्थना को सभी समझ सकें और उसके आधार से आत्मिक विचार भी कर सके। मैंने अभी कहा है—

समुदविजय सुत श्रीनेमीश्वर,
जादवकुल नो टीको ॥
रतनकुख धारिणी शिवा दे,
तेहनो नन्दन नीको ।

इस प्रकार जल्दी ही समझ मे आ जायगा। यह भगवान् के स्थूल रूप की प्राथना है। मगर इस प्रार्थना मे स्थूल रूप को दिखाकर अनन्त परमातमा का दर्शन कराया गया है। भगवान् ने स्थूल शरीर मे रह कर ऐसा काम कर दिखाया है कि जिसकी साधारण मनुष्य कल्पना भी नही

कर सकता।

नेमिनाथ भगवान् जानते थे कि विवाह की तैयारी मे आरम्भ ही आरम्भ हो रहा है। जल का व्यय, बरात की तैयारी और चलने फिरने आदि मे कितनी हिंसा हुई होगी ? क्या भगवान् को उस हिंसा का परिज्ञान नही था ? क्या हम लोगो की अपेक्षा भी भगवान् को कम ज्ञान था ? मगर उसके निराले तत्त्व को ज्ञानी ही जान सकता है।

हम लोग स्वय ज्ञानी नही हैं। हम उन्ही के समझाने से थोड़ा बहुत समझे हैं। फिर यह जानते हुए कि मुझे विवाह नही करना है, बरात तैयार की, यह दोष किसके सिर थोपना चाहिए ? कदाचित् यह कहा जाय कि कृष्णजी ने बरात सजाई थी और नेमिनाथ उन्ही के परणाये परण रहे थे तो फिर कृष्णजी की बात उन्हें अन्त तक माननी चाहिए थी। ऐसा न करके वे तोरण से क्यो लौट आये ?

मित्रो ! भगवान् नेमिनाथ का बरात को सजाने मे यही उद्देश्य था कि यादवो मे जो हिंसा घुस रही है उसे हटाया जाना चाहिए और मासाहार का विरोध करना चाहिए। इस हिंसा को दूर करने के लिए ही भगवान् ने अपनी अनोखी और प्रभावशालिनी पद्धति से आदर्श उपस्थित करने का विचार किया। इसके अतिरिक्त बरात सजाने का अगर और कोई कारण हो तो उसे सुनने के लिए हम तैयार है।

जो नेमिनाथ भगवान् गर्भ की बात जानते थे, उन्हें क्या यह पता नही था कि उन्हे विवाह नही करना है ? कदाचित् यह कहा जाय कि उन्हे पता तो था किन्तु सबका मनोरथ पूरा करने के लिए वे विवाह करने को तैयार हो गये। तो सब का मनोरथ तब पूरा होता जब वे विवाह कर लेते। विवाह किये बिना ही लौट आने से सब का मनोरथ कैसे पूरा हो गया ? भाइयो ! भगवान् का आशय आदर्श उपस्थित करके स्वयं महान् त्याग करके हिंसा को बन्द करना था। यद्यपि हिंसा तो बरात की तैयारी करते समय और स्नान करते समय भी हुई थी, किन्तु उस समय उन्होने विवाह करना अस्वीकार नही किया। इसका कारण यही था कि स्नान आदि मे हुई हिंसा सूक्ष्म हिंसा थी। भगवान् ने सूक्ष्म हिंसा का विरोध करने के लिए लोगो को पानी पीने से नही रोका, किन्तु स्थूल हिंसा का-पशु-पक्षियो के वध का—विवाह करना अस्वीकार करके विरोध किया। इससे क्या परिणाम निकलता है ? वास्तव मे सूक्ष्म हिंसा को लेकर स्थूल को न समझना अज्ञान है।

कहा जा सकता है कि हिंसा बन्द करने के लिए उन्होने आज्ञा क्यो न जारी कर दी या करा दी ? इसके लिए बरात सजाने की क्या आवश्यकता थी ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि तीर्थंकर हुक्म देकर कर्त्तव्य नही कराते, किन्तु स्वय कर के दिखलाते हैं। ऐसा करने से सारा ससार

स्वय उस ओर आकर्षित हो जाता है ? अगर ऐसा न हो तो तीर्थंकर और राजा मे अन्तर क्या रहे ? आदेश देकर करवाया हुआ कार्य स्वेच्छा प्रेरित नही होता और इसीलिए हार्दिक नही होता इसलिए उसका पालन कराने के लिए राजा को फौज और पुलिस की जमात खडी करनी पड़ती है । मगर तीर्थंकर का मार्ग इससे सर्वथा भिन्न होता है। तीर्थंकर का विधान बलात्कार से नही लादा जाता । अतएव वह स्वेच्छा - स्वं कृत और हार्दिक होता है । उसे पलवाने के लिए फौज या पुलिस की अपेक्षा नही रहती । उसमे इतनी गहराई होती है कि साधक अपने प्राणो की आहुति देकर भी उस विधान से रचमात्र विचलित नही होते ।

कृष्णजी के साथ क्या नौकर-चाकर नही थे कि उन्होने स्वय ईंटे उठाई ? वह हुक्म देते तो क्या ईंटे नही उठ सकती थी ? मगर ऐसा करने से अशक्त जनो की सेवा–सहायता करने का जो भव्य और चिरतन आदर्श उपस्थित हुआ, वह कदापि न होता । स्वय ईंटें उठाकर कृष्णजी ने ससार पर अद्भुत प्रभाव डाला है। यह बात दूसरी है कि अनुकम्पा से द्वेष होने के कारण इन बातो का वास्तविक रहस्य छिपाकर उलटा ही अर्थ लगाया जाय !

आज श्रावक साधु के और साधु श्रावक के कामों का उत्तरदायित्व अपने सिर ओढने का दम भरते हैं । इसी कारण धर्म की अवनति हो रही है । साधु की सूक्ष्म अहिंसा

को श्रावक अपने ऊपर लेते हैं। मगर नेमिनाथ भगवान् ने आदर्श उपस्थित किया है कि श्रावक को किस अहिंसा का पालन करना चाहिए।

प्रभो! यह अनुपम त्याग और अनूठा कार्य आप ही कर सकते थे। मन का दमन करना, विवाह न करने के निश्चय को किसी के भी दबाव से न बदलना और लगातार नौ भवो के स्नेहमय सम्बन्ध को तोड देना तीर्थंकर की लोकोत्तर शक्ति के बिना कसे सम्भव हो सकता है?

भगवान् ने विवाह का त्याग करके यह प्रकट किया कि मुझे इन जीवो की अपेक्षा राजीमती पर अधिक प्रेम नही है। उन जीवो को बन्धनमुक्त कर देने पर भगवान् ने सारथी को पुरस्कार दिया था। उनका तात्पर्य यह था कि यह गरीब प्राणी अशक्त हैं और मनुष्य से दया की अपेक्षा रखते हैं। उन जीवो पर यादव लोग अपने आनन्द के लिए अत्याचार करते थे। भगवान् ने उन्ही अबोध और मूक जीवो पर दया की थी।

कई भाई कहते हैं कि मरते जीव को बचा लेना मोह का ही परिणाम है। जीव की रक्षा करने वाला मोही है, क्योकि मरते हुए जीव पर राग हुए बिना उसे बचाया नही जा सकता। उनकी इस भ्रमपूर्ण मान्यता के अनुसार कहना होगा कि भगवान् नेमिनाथ को अगर वाडे मे बद जीवों पर

राग उत्पन्न हुआ था। अगर यह सच हो तो स्नान करते समय एकेन्द्रिय जीवो पर राग क्यो नही हुआ था ? वास्तव मे भगवान् के चित्त मे उन जीवो के प्रति न मोह था और न राग था, सिर्फ दया की पवित्र भावना थी। जिन्हे पिछले नौ भवो से सगाई सम्बन्ध रखने वाली राजीमती पर भी मोह नही हुआ, उन्हे वाडे मे बन्द अपरिचित पशु पक्षियो पर कैसे मोह हो सकता है ! मगर अत्यन्त खेद है कि हमारे कितने ही भाई भगवान् की इस विशुद्ध अनुकम्पा से भी मोह और राग की कल्पना करते हैं और जीवरक्षा मे पाप बतलाते हैं।

गाधीजी ने अपनी आत्मकथा मे लिखा है– मैं कलकत्ता मे कालीजी के दर्शन को गया था। वहाँ खून के घमासान का दृश्य देखकर मेरा हृदय द्रवित हो गया। मैं समझता हूँ कि बकरे का प्राण मनुष्य के प्राण से कम नही है। इसके सिवाय वह अबोल है, अत मनुष्य से विशेष दया का पात्र है। यदि काली कहे तो इसके सामने मैं अपनी गर्दन कर दूं।

कहिए, गाधीजी को भी बकरे पर राग हो गया ? मित्रो ! क णा भाव को लुप्त कर देना धर्म की आत्मा को निर्दयतापूर्वक हनन कर देना है। इससे अधिक भयकर और कोई कार्य नही हो सकता।

इस थली प्रान्त में लोगो के पास लाखो का धन है। फिर भी उनके सामने से वध के लिए पशु ले जाया जाय तो उनके हृदय मे वैसी दया उत्पन्न नही होती जैसी साधारण तथा अन्य प्रान्तवासियो के हृदय मे होती है। कोई-कोई तो खुद ही कसाई को अपना पशु बेच देते हैं। यह कितनी निष्ठुरता है ? न जाने कैसा हृदय है जो दया से द्रवित नही होता। जितनी कठोरता इस प्रान्त मे है उनकी शायद ही किसी दूसरे प्रान्त में हो। इसका कारण यही है कि यहाँ के लोगो के हृदय से दया निकाल दी गई है। इसीलिए प्राय: लोग खुद भी दया नही करते और दूसरे को करते देखते हैं तो उसे पापी कहते हैं ! नेमिनाथ भगवान् के समय मे गाय या दूसरे उपयोगी पशु नही मारे जाते थे। परन्तु यादव लोग अपनी खुराक के लिए हिरण आदि जीवों को निरुपयोगी समझ कर मारते थे। वे समझते थे कि यह जीव जगल मे रहते हैं, किस काम आते हैं ! भगवान् नेमिनाथ ने राजीमती का त्याग करके ऐसे पशुओं पर भी दया दिखलाई थी। मित्रो ! आज जो पशु आपके रक्षक हैं उन पर भी आप दया नही दिखलाते ! आपका यह हट्टाकट्टापन किसके प्रताप से हैं ? गायो का घी दूध खा पीकर आप तगडे हो रहे हैं और जी रहे हैं और उन्ही की करुणा को मोह कह कर धर्म और सभ्यता का घोर अपमान कर रहे हैं। शास्त्र को शस्त्र बना डालना कितना भयकर काम है ?

अपने आदर्श भगवान् नेमिनाथ ने राजीमती का त्याग करके दीक्षा ग्रहण की तथा दया और दान का आदर्श उपस्थित किया। उन्होने अपने कर्त्तव्य से यह भी प्रकट कर दिया है कि मनुष्य को किस दर्जे पर क्या करना चाहिए। उन्होने दीक्षा के ऊँचे दर्जे का काम करके, उससे पहले के—उससे नीचे दर्जे के कर्त्तव्य का अपमान नही किया।

जरा विचार कीजिए, इस चूरू शहर मे सब जौहरी ही जौहरी बस जाएँ और अनाज, शाक-सब्जी आदि प्रतिदिन उपयोग मे आने वाली वस्तुएँ उत्पन्न करने वाला या बेचने वाला कोई भी न हो तो काम चल सकता है ?

'नही !'

इसी प्रकार जैनधर्म मे छोटे-बड़े सब काम बतलाये गये हैं। बड़े काम पूर्ण सयम का ग्रहण आदि हो तो अच्छा ही है, परन्तु उससे पहले की स्थिति में करुणा करने का निषेध तो नही करना चाहिए।

विपत्ति से सताये हुए और भयभीत प्राणी पर थोडी-बहुत दया लाकर जैनशास्त्र की आज्ञा का पालन करो तो अच्छा ही है। इसके वजाय दया करने वाले को पापी कह-कर दया का निषेध करते हो, यह कहाँ तक ठीक है ? बन्धुओ ! अपने भविष्य का थोडा-बहुत विचार करो। जीवरक्षा का निषेध करके अपने भविष्य को दुःखमय मत

बनाओ। करुणा इस जगत् में एक दैवी गुण है। उस पर कुठाराघात करना अपनी आत्मा पर ही कुठाराघात करना है। भगवान् नेमिनाथ के चरित्र से शिक्षा ग्रहण करो। इससे आपकी आत्मा का कल्याण होगा और जगत् को प्रकाश मिलेगा।

[घ]

श्री जिन मोहनगारो छे !

समुद्रविजय सुत श्रीनेमीश्वर ।

यह भगवान् अरिष्टनेमि की प्रार्थना की गई है। सारा संसार एक मन होकर परमात्मा की जो प्रार्थना करता है, वही प्रार्थना मैंने अपने शब्दो मे की है। प्रार्थना का विषय इतना व्यापक और सार्वजनिक है कि प्रार्थ्य महापुरुष का नाम चाहे कुछ भी हो और प्रार्थना के शब्द भी कुछ भी हों, उसकी मूल वस्तु समान रूप से सभी की होती है। इस प्रार्थना मे कहा गया है :—

'श्रीजिन मोहनगारो छे, जीवन प्राण हमारो छे।'

यहा पर यह आशका की जा सकती है कि क्या भगवान् मोहनगारो हो सकता है ? जिसे जैन-धर्म वीतराग कहता है, जो राग, द्वेष और पक्षपात से रहित है, उसे 'मोहनगारो' कैसे कहा जा सकता है ? जो परमात्मा स्वय मोह से अतीत है, वह 'मोहनगारो' कैसा ? जिसे अमूर्तिक और निराकार माना जाता है, वह किस प्रकार और किसे मोहित करता है ? इस आशका पर सरल रीति से यहाँ प्रकाश डाला जाता है।

लोक-मानस इतना सकीर्ण और अनुदार है कि उसने ससार के अन्यान्य भौतिक पदार्थों की तरह ईश्वर का भी

बँटवारा-सा कर रक्खा है। यही कारण है कि ईश्वर के नाम पर भी आये दिन झगड़े होते रहते हैं। इसके अतिरिक्त ईश्वर को समझाने के लिए उपयुक्त वक्ता न होने से, ईश्वर के नाम से होने वाली शान्ति के बदले उलटी अशान्ति होती है—कलह फैलता है। यह सब होते हुए भी वास्तव मे ईश्वर का नाम शान्तिदाता है और ईश्वर 'मोहनगारो' है।

वीतराग किस प्रकार किसी को मोहित कर सकता है, इस प्रश्न के उत्तर मे सत्य यह है कि वीतराग भगवान् ही मनमोहन है। जिसमे वीतरागता नही है, वह मनमोहन या 'मोहनगारो' भी नही है। उपर्युक्त प्रार्थना वीतराग भगवान् की ही है, किसी ससारी पुरुष की नही है। इस प्रार्थना मे वीतराग को ही 'मोहनगारो' बतलाया गया है। भगवान् वीतराग मोहनगारो' किम प्रकार है, यह बात ससार की बातो पर दृष्टि डालने से साफ समझ मे आ जायगी।

जिसका चित्त ईश्वर पर मोहित होकर ससार की और वस्तुओ से हट जाएगा, जो एकमात्र परमात्मा को ही अपना आराध्य मानेगा, जो परमात्मा प्राप्ति के लिए अपने सर्वस्व को हंसते हँसते ठुकरा देगा, वह परमात्मा को ही मोहनगारो मानेगा। परमात्मा मोहनगारो नही है तो भक्तजन किसके नाम पर ससार का विपुल वैभव त्याग देते हैं? अगर

ईश्वर मे आकर्षण न होता तो बड़े-बड़े चक्रवर्ती और सम्राट उसके लिए वन की खाक क्यो छानते फिरते ? अगर भगवान् किसी का मन नही मोहते तो प्रह्लाद को किसने पागल बना रक्खा था ? और मीरा ने किस मतलब से कहा था—
'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई ।'

परमात्मा स्वय कहने नही आता कि मैं 'मोहनगारो हूँ' मगर लोग ही कहते हैं 'श्रीजिन मोहनगारो छे।' परमात्मा को 'मोहनगारो' मानने वाला भक्त कैसा होना चाहिए, यह जानने के लिए सांसारिक बातो पर दृष्टिपात करना होगा ।

जो पुरुष ससार के सब पदार्थो मे से केवल धन को 'मोहनगारो' मानता है, उसके सामने दूसरी तरह की चाहे लाखो बातें की जाएँ लेकिन वह धन के सिवाय और किसी भी बात पर नही रीझेगा । उसे धन ही धन दिखाई देगा । वह सोने मे ही सब करामात मानेगा । कहेगा—

'सर्वे गुणा काचनमाश्रयन्ति ।'

ससार के समस्त सुखो का एक मात्र साधन और विश्व मे एकमात्र सारभूत वस्तु धन है, धन ही परब्रह्म है, धन ही धर्म है, धन ही लोक-परलोक है, ऐसा समझने वाला पुरुष धन को ही 'मोहनगारो' मानेगा । ऐसा आदमी ईश्वर को मोहनगारो नही मान सकता । वह ईश्वर की तरफ झाँक कर भी नही देखेगा । कदाचित् किसी की प्रेरणा

से प्रार्थना करेगा भी तो कचन के लिए करेगा। वह धन-लाभ को ही ईश्वर की सच्चाई की कसौटी बना लेगा।

कचन और कामिनी ससार की दो महाशक्तियाँ हैं। कई लोग ऐसे भी हैं, जिनके लिए कचन तो इतना 'मोहन-गारा' नही है, किन्तु कामिनी ही उन्हे गुण निधान सुख-निधान और आनन्द-निधान जान पडती है। कनक और कामिनी मे ही ससार की समस्त शक्तियो का समावेश हो जाता है।

इन शक्तियो से जिनका अन्त करण अभिभूत हो गया है, जिसके हृदय पर इन्होने आधिपत्य जमा लिया है, वह ईश्वर की तरफ नही झाँकेगा। अगर झाँकेगा भी तो इस-लिए कि ईश्वर उसे कामिनी दे। कदाचित् कामिनी मिल जाय तो वह ईश्वर से पुत्र आदि परिवार की याचना करेगा। पुत्र-पौत्र मिल जाने पर वह सासारिक मान-सम्मान के लिए ईश्वर को नमस्कार करेगा। मगर जो मनुष्य कचन और कामिनी आदि के लिए ईश्वर की उपासना करेगा वह उन मे से किसी की कमी होते ही ईश्वर से विमुख हो जायगा और कहेगा— ईश्वर है कौन ! अपना उद्योग करना चाहिए, वही काम आता है। ऐसे लोग ईश्वर के भक्त नही हो सकते। इनके आगे ईश्वर की बात करना भी निरर्थक-सा हो जाता है।

जैसे धन को मोहनगारा मानने वाला धन के सिवाय

और किसी मे भलाई नही देखता, उसी प्रकार ईश्वर को मोहनगारा मानने वाले मनुष्य ईश्वर के सिवाय और किसी मे भलाई नही देखते। वे लोग ईश्वर को ही मोहनगारा मानते हैं और ईश्वर को ही अपना उपास्य समझते हैं।

जल मे रहने वाली मछली खाती भी है, पीती भी है, विषयभोग भी करती है, मगर करती है सब कुछ जल मे रह कर ही। जल से अलग करके उसे मखमल के बिछौने पर रख दिया जाय और बढिया भोजन खिलाया जाय, तो वह न भोजन खाएगी, न मखमल के मुलायम स्पर्श का आनन्द ही अनुभव करेगी। उसका ध्यान तो जल मे ही लगा रहेगा। परमात्मा के प्रति भक्तो की भावना भी ऐसी ही होती है। भक्त चाहे गृहस्थ हो या साधु पानी के बिना मछली की तरह परमात्मा के ध्यान के बिना-सुख अनुभव नही करता। उसका खाना-पीना आदि सारा ही व्यवहार परमात्मा के ध्यान के साथ ही होगा। परमात्मा के ध्यान के बिना कोई भी बात उसे अच्छी नही लगेगी।

प्रश्न हो सकता है - परमात्मा के भक्त, परमात्मा को 'मोहनगारो' मानकर उसके ध्यान मे आनन्द मानते हैं, लेकिन कैसे कहा जा सकता है कि यह उनका भ्रम नही है? क्या यह सम्भव नही है कि वे भ्रम के कारण ही परमात्मा का भजन करते हैं? परमात्मा मे ऐसा क्या आकर्षण है— कौन सी मोहकशक्ति है कि भक्त-जन परमात्मा के ध्यान

बिना, जल के बिना मछली की तरह, विकल रहते हैं ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि मछली को जल मे क्या आनन्द आता है, यह बात तो मछली ही जानती है, उसी से पूछो । दूसरा कोई क्या जान सकता है ! इसी प्रकार जिन्हें परमात्मा से उत्कट प्रेम है, वही बतला सकते हैं कि परमात्मा मे क्या आकर्षण है, कैसा सौन्दर्य है और कैसी मोहकशक्ति है ! क्यो उन्हें परमात्मा के ध्यान बिना चैन नही पडता ! उनके अन्तर से निरन्तर यह ध्वनि फूटती रहती है—

'श्री जिन मोहनगारो छे, जीवन-प्राण हमारो छे ।'

इस प्रकार परमात्मा, भक्त का आधारभूत है। परमात्मा को तभी ध्यान मे लिया जा सकता है, जब उसे कचन-कामिनी से अलिप्त रक्खा जाए। जिसमें कामना-वासना नही है, वही मोहनगारो होता है। जो कामना-वासना से लिप्त है वह वीतराग नही है और जो वीतराग नही है वह मोहनगारो भी नही हो सकता ।

त्याग सब आत्माओ को स्वभाव से ही प्रिय है । एक साधु को देखकर ही हृदय मे भक्ति उत्पन्न हो जाती है । आप (श्रोतागण) यहाँ धन के लिए नही आये हैं । यहाँ मेरे पास आने का मतलब दूसरा ही है । वह क्या है ? त्याग के प्रति भक्ति । जब साधु के थोडे से त्याग को देखकर ही उसके प्रति प्रीति और भक्ति की उत्पत्ति होती है, तो जो

भगवान् पूर्ण वीतराग हैं, उनके ध्यान से कितना आनन्द आता होगा ? कदाचित् यहाँ आकर व्याख्यान सुनने वालो पर एक-एक पैसा टैक्स लगा दिया जाय, तो क्या आप लोग आएँगे ? टैक्स लगा देने पर आप कहेंगे— इन साधुओ को भी हम गृहस्थो के समान ही पैसो की चाह लगी है और जहाँ पैसो की चाह है वहाँ परमात्मा कैसे हो सकता है ? क्योकि परमात्मा तो वीतराग है ।

व्याख्यान सुनने के लिए आने वालो पर पैसे का टैक्स न लगाकर छटाक-छटाक भर मिठाई लेकर आने का नियम लागू कर दिया जाय तो खुशामद के लिहाज से मिठाई लेकर आने की बात दूसरी है, लेकिन वीतरागता की भावना से आप न आएँगे और कहेंगे—इन साधुओ को भी रस-भोग की आवश्यकता है ! साराश यह कि आप यहाँ त्याग देख-कर ही आये हैं । इस प्रकार लगभग सभी आत्माओ को त्याग प्रिय है । फिर यह त्याग भावना क्यो दबी हुई है ? इस प्रश्न का उत्तर यह होगा कि आत्मा कचन और कामिनी के मोह मे फँसा हुआ है । आत्मा रात-दिन सासारिक वास-नाओ मे लगा रहता है, इसी कारण उसकी त्याग-भावना दबी हुई है । ससार-वासना के वशवर्ती होने के कारण कई लोग, धर्म-सेवन भी वासनाओ की पूर्ति के उद्देश्य से ही करते है । कनक और कामिनी के भोग मे सुविधा और वृद्धि होने के लिए ही वह धर्म का आचरण करते हैं । ऐसे

लोगों का अन्तःकरण वासना की कालिमा से इतना मलिन हो गया है कि परमात्मा का मन-मोहन रूप उस पर प्रतिबिम्बित नही हो सकता ।

यद्यपि मुझ मे वह उत्कृष्ट योग-शक्ति नही है कि मैं आपका ध्यान ससार की ओर से हटाकर ईश्वर मे लगा दू, लेकिन बड़े बड़े सिद्ध महात्माओ ने शास्त्रो मे जो कुछ कहा है, मुझे उसमे बहुत कुछ शक्ति दिखाई देती है और इसी कारण वही बात मैं आपको सुनाता हूँ। आप उन महात्माओं के अनुभवपूर्ण कथन की ओर ध्यान लगाए। फिर सम्भव है कि आपका ध्यान ससार की ओर से हटकर परमात्मा की ओर लग जाए ।

२३-श्री पार्श्वजिन-स्तवन

प्रार्थना

"अश्वसेन" नृप कुल तिलो रे, "वामा दे" नो नन्द ।
चिंतामणि चित्त मे बसे रे, दूर टले दुख द्वन्द्व ॥
जीव रे तू पार्श्व जिनेश्वर वन्द ॥टेर॥१॥

जड़ चेतन मिश्रित पणे रे, करम सुभासुभ थाय ।
ते विभ्रम जग कल्पना रे, आतम अनुभव न्याय ॥२॥

वहमी भय मान जथा रे, सूने घर वैताल ।
त्यूं मूरख आतम विषे रे, मान्यो जग भ्रम जाल ॥३॥

सर्प अन्धारे रासडी रे, रूपी सीप मझार ।
मृगतृष्णा अबू मृषा रे, त्यूं आतम मे ससार ॥४॥

अग्नि विषे ज्यूं मणि नही रे, मणि मे अग्नि न होय ।
सपने की सम्पत्ति नही, ज्यूं आतम मे जग जोय ॥५॥

वाझ पुत्र जनमे नहीं रे, सीग शशे सिर नाय ।
कुसुम न लागे व्योम मे रे, त्यूं जग आतम माय ॥६॥

अमर अजोनी आतमा रे, है निश्चे तिहुं काल ।
'विनयचन्द' अनुभव थकी रे, तू निज रूप सम्हाल ॥७॥

श्री पार्श्वनाथ

[क]

यह भगवान् पार्श्वनाथ की प्रार्थना है। इस प्रार्थना की कडियाँ सरल हैं और इसके भाव स्पष्ट हैं। लेकिन मनन करने पर इसमे गंभीर बातें दिखाई देती हैं। यह तो आप जानते है कि सादी बातों मे भी गम्भीर भाव छिपे रहते हैं। इस प्रार्थना में भी एक गम्भीर बात की सूचना की गई है।

कहा जा सकता है कि जब आत्मा का ही बोध करने की आवश्यकता है तो भगवान् पार्श्वनाथ की शरण मे जाने से क्या लाभ है ? इस कथन के उत्तर मे ज्ञानीजनों का कहना है कि आँखो मे ज्योति होने पर भी सूर्य की शरण लेनी ही पडती है। अगर सूर्य की या किसी दूसरे प्रकार की शरण न ली जाय तो आँखो मे ज्योति होने पर भी कुछ दिखाई नही देता। आँखो मे ज्योति होने पर भी सूर्य की शरण मे जाना पडता है, इसका कारण यह है कि आखों मे अपूर्णता है। आखो की अपूर्णता के कारण सूर्य की सहायता लिये बिना काम नही चलता। इसी तरह आत्मा भी अपूर्ण है। आत्मा में अभ ऐसी शक्ति नही है कि वह स्वतन्त्र रूप से अपना बोध कर सके। अतएव जिस तरह आँखो की अपूर्णता के कारण सूर्य का आश्रय लिया जाता

है, उसी प्रकार आत्मा में अपूर्णता होने के कारण परमात्मा की सहायता ली जाती है। स्तुतिकार कहते हैं—

सूर्यातिशायिमहिमाऽसि मुनीन्द्र ! लोके।

अर्थात्— हे मुनियो के नाथ ! आपकी महिमा सूर्य से भी बढ़कर है।

इस प्रकार अनन्त सूर्यों से भी बढ़कर जो भगवान् पार्श्वनाथ है, उनकी सहायता आत्मा के उत्कर्ष के लिए अपेक्षित है। भगवान् पार्श्वनाथ की शरण मे गये बिना आत्मा का बोध नही हो सकता। जो अपनी इस वास्तविक कमजोरी को जानता होगा और अपनी कमजोरी से डरा होगा, वह पार्श्वनाथ की शरण मे गये बिना नही रहेगा।

कोई कह सकता है—जब आत्मा का उत्कर्ष करने के लिए भगवान् पार्श्वनाथ की शरण मे जाने की आवश्यकता अनिवार्य है और शरण मे गये बिना काम चल ही नही सकता, तब फिर पार्श्वनाथ की ही शरण मे जाना चाहिए। ऐसी स्थिति मे आत्मा को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करने की क्या आवश्यकता है ?

इस प्रश्न का साधारण उत्तर यह है कि अन्धे के लिए लाखो सूर्य भी किस काम के ? सूर्य से वही व्यक्ति लाभ उठा सकता है जो स्वय आख वाला है। सूर्य का प्रकाश फैला होने पर भी अगर कोई अपनी आख मूँद रखता है तो वह सूर्य से कोई लाभ नही उठा सकता। इस

प्रकार भगवान् की शरण जाने पर भी आत्मबोध की आवश्यकता है। जो अपनी आत्मा का उत्कर्ष साधना चाहता है उसे आत्मबोध भी प्राप्त करना होगा और ईश्वर की शरण भी लेनी होगी। आत्मदृष्टि के बिना भगवान् की शरण मे जाना अन्धे का सूर्य की शरण मे जाने के समान है। अतएव भगवान् की शरण गहने के साथ-साथ आत्म-बोध प्राप्त करना भी आवश्यक है।

पूर्वकृत कर्मों का कुछ क्षयोपशम होने से ही हम लोग भगवान् पार्श्वनाथ के समीप हुए हैं। भगवान् पार्श्वनाथ को शास्त्र मे 'पुरुषादानी पार्श्वनाथ' कहा है। इस प्रकार जगत् मे उनकी बडी ख्याति है। बल्कि बहुत लोग तो जैनधर्म को पार्श्वनाथ का ही धर्म समझते हैं। वे जैनशास्त्र के अनु-यायियो को पार्श्वनाथ का चेला कहते हैं। अगर हम भगवान् पार्श्वनाथ का चेला कहलाने मे अपना गौरव समझते हैं तो हमे विचार करना चाहिए कि उन्होने अपने जीवन मे ऐसा कौन-सा कर्त्तव्य किया था, जिसके कारण उनकी इतनी ख्याति हुई ? और हम लोग जब उसके चेले हैं तो हमे क्या करना चाहिए ? भगवान् ने अपनी ख्याति फैलाने के लिए न किसी की गुलामी की थी और न किसी को यह प्रेरणा ही की थी कि तुम हमारी प्रशसा करो। ऐसा करने से ख्याति फैलती भी नही है। तो फिर भगवान् ने क्या किया था ? यह विचार-णीय बात है। इस जगत् पर भगवान् पार्श्वनाथ का अनन्त

उपकार है। इसी कारण जगत् के लोग उन्हे मानते हैं। उनमे अनन्त असीम करुणा थी। ससार का यह रिवाज ही है कि जो वस्तु इष्ट होती है, उसे प्राप्त कराने वालो को वहुत चाहा जाता है। इसके अतिरिक्त मनुष्य की अच्छाई का असर भी दूसरो पर पड़ता है। अच्छे रत्न का प्रभाव सारे जगत् पर पडे बिना नही रहता। भगवान् पार्श्वनाथ ने जगत् को वही मूल्यवान् वस्तु का उपहार प्रदान किया था, जिसकी उसे अत्यन्त आवश्यकता थी और जिसके अभाव मे जगत् व्याकुल, दु खपूर्ण और अशान्त था। भगवान् पार्श्वनाथ ने जगत् को वे गुण बतलाये जिनसे जगत् का कल्याण होता है। भगवान् ने जिन गुणो से विश्व का कल्याण होते देखा, उन्ही गुणो को अपनाने के लिए जोर दिया और उनके भक्तो ने वे गुण अपनाए। भक्तो के इस कार्य से भगवान् पार्श्वनाथ अधिक प्रसिद्ध हुए। भगवान् को वस्तुत· भक्त ही प्रसिद्ध करते हैं और भक्त ही बदनाम भी करते हैं। इस तथ्य को समझ लेने के पश्चात् हम सब को अपना कर्त्तव्य स्थिर करना चाहिए।

भगवान् पार्श्वनाथ के चरित्र मे एक बड़ी बात देखी जाती है। मैंने अनेक महापुरुषो के जीवनचरित्र देखे हैं और उनमे भी वह बात पाई जाती है। जिन्हे लोग महापुरुष मानते हैं उनकी जीवनी मे यह बात प्राय. देखी जाती है। साधारण लोग साप को जहरीला कहकर उसके प्रति क्रूरता-

पूर्ण व्यवहार करते हैं, लेकिन महापुरुष साप पर भी अपना प्रभाव डालते हैं। भगवान् महावीर ने चडकौशिक साप का उद्धार किया था, यह बात तो प्रसिद्ध ही है। कृष्ण के जीवनचरित्र मे भी साप का सम्बन्ध पाया जाता है। मुहम्मद साहब के चरित्र मे भी साप का वर्णन आया है। इसी प्रकार ईसा के चरित्र मे भी साँप का उल्लेख आता है। भगवान् पार्श्वनाथ के जीवनचरित्र मे भी साप का सम्बन्ध पाया जाता है। इससे प्रकट होता है कि महापुरुष माने जाने वाले व्यक्तियो के चरित्र मे साँप का सम्बन्ध आता ही है और वे अपने महापुरुषत्व का प्रभाव साप पर भी डालते हैं। समवायाग सूत्र मे तीर्थंकरो के जो चौबीस चिह्न बतलाये गये हैं उनमे भगवान् पार्श्वनाथ का चिह्न साप ही बतलाया है। साप ने उनके मस्तक पर छाया करके उनकी रक्षा की थी। बौद्ध साहित्य मे एक जगह उल्लेख आया है कि एक भिक्षु को साप ने काट खाया। जब उस भिक्षु को बुद्ध के पास ले जाया गया तो बुद्ध ने कहा—तुमने साप के प्रति मैत्री भावना नही रखी थी, इसी कारण साप ने तुम्हें काटा है।

भगवान् पार्श्वनाथ ने जब जहरीले साप पर भी प्रभाव डालकर उसे सुधारा था तथा उसका कल्याण किया था, तब क्या आप उन मनुष्यो को नही सुधार सकते जो आपकी दृष्टि मे जहरीले हैं? अगर आप अपने जीवन की उज्ज्व-

लता की किरणे ऐसे लोगो के जीवन पर भी बिखेर दे और उन्हे सुधार लें तो जनता पर आपका कैसा प्रभाव पड़े !

भगवान् पार्श्वनाथ ने साप का कल्याण किस प्रकार किया था, उस वृत्तान्त को ग्रथकारो ने अपने ग्रन्थो मे विशद रूप से लिखा है। कहा गया है कि भगवान् के पूर्व के दसवे भव के भाई कमठ, जो नरक मे जाता, उसका भगवान् ने सुधार किया था और उसका भी कल्याण किया था। लोग दुख को बुरा कहते हैं। मगर ज्ञानी पुरुष दुख की भी आवश्यकता समझते हैं। दुखो को सहन करके हम अपना भी कल्याण करते हैं और दूसरो का भी। दुख सहने से स्व-पर-कल्याण होता है, यह बात भगवान् पार्श्वनाथ के चरित्र से समझी जा सकती है।

भगवान् पार्श्वनाथ जब बालक थे, उस समय उनके पूर्ववर्त्ती दसवे भव का भाई तापस बनकर आया। उसने धूनिया जगाई और इससे लोग बहुत प्रभावित हुए। झुण्ड के झुण्ड लोग उस तापस के पास जाने लगे और अपनी श्रद्धा भक्ति प्रकट करने लगे। भगवान् पार्श्वनाथ की माता ने उनसे कहा— नगर के बाहर एक बडा भारी तपस्वी आया है। वह उग्र तपस्या कर रहा है। सब लोग उसे देखने के लिए जाते हैं। मेरे साथ तुम भी चलो तो हम सब भी देख आवें।

महापुरुष सादे बनकर प्रत्येक काम करते हैं। अतएव

माता के कहने पर भगवान् पार्श्वनाथ ने तपस्वी के पास जाना स्वीकार कर लिया। माता के साथ वे तापस के स्थान पर गये। भगवान् राजकुमार थे और उनकी माता महारानी थी। दोनो को देखकर तापस बहुत प्रसन्न हुआ। वह सोचने लगा— जब राजरानी और राजकुमार भी मेरी तपस्या से प्रभावित हो गये हैं तो मुझे और क्या चाहिए ?

भगवान् पार्श्वनाथ ने हाथी पर बैठे हुए ही - उतरने से पहले ही जान लिया था कि यह तापस मेरे दस भव पहले का भाई है। मेरा यह भाई आज जिस स्थिति मे है, अगर उसी स्थिति मे रहा तो अपना परलोक बिगाड लेगा। जैसे भी सम्भव हो, इसका उद्धार करना चाहिए। यह तो निश्चित है कि मैं इसका उद्धार करने चलूंगा तो इसके रोष और द्वेष का मुझे भाजन बनना पडेगा। उसे सहन करके भी उद्धार करना चाहिए। यह मेरा कर्त्तव्य है।

लोग कहते हैं कि भगवान् पार्श्वनाथ ने कमठ का मान भग किया था। मैं समझता हूँ कि ऐसा कहने वालो मे मान है इसी कारण वे ऐसा कहते हैं। भगवान् पार्श्वनाथ ने जो कुछ भी किया था, वह तापस के प्रति भगवान् की प्रशान्त करुणा का ही परिणाम था। भगवान् के सरल मृदुल हृदय मे तापस के प्रति असीम करुणा का भाव उत्पन्न हुआ और उसी करुणा ने उन्हें तापस के उद्धार के लिए प्रेरित किया। यह बात अलग है कि तापस का अभिमान स्वत. चूर-चूर हो गया, मगर भग-

वान् की कोई ऐसी इच्छा नहीं थी कि तापस को नीचा दिखाया जाय। भगवान् ने तापस से कहा—'तुम यह क्या कर रहे हो ? इस प्रकार के कष्ट में पड़कर अपने लिए नरक का निर्माण क्यो कर रहे हो ? सरल बनो और ऐसे काम न करो, जिनसे तुम स्वयं कष्ट मे पड़ो और दूसरे भी कष्ट पावे।

यद्यपि अनन्त करुणा से प्रेरित होकर भगवान् ने तापस से ऐसा कहा था मगर तापस कब मानने वाला था ? उसने कहा— तुम राजकुमार हो। राजमहल मे रह कर आनन्द करो। हम तपस्वियो की बातो मे मत पडो। तुम इस विषय मे कुछ नही समझते हो। तुम अस्त्र-शस्त्र चलाना सीखो। घोडे फिराओ। राजकुमार यही जानते हैं या उन्हे यही जानना चाहिए। हमारे किसी कार्य के औचित्य या अनौचित्य का निर्णय करना तुम्हारे अधिकार से बाहर है। तपस्वियो की बात तपस्वी ही समझ सकते हैं।

भगवान् ने कहा— अगर आप कुछ जानते होते तो कुछ कहने की आवश्यकता ही न रहती। लेकिन आप नहीं जानते हो इसी कारण कहना पडता है कि आपने अभी तक सच्चा मार्ग नही जान पाया है। अगर मैं कुछ नही जानता और आप सब कुछ जानते हैं तो बतलाइये कि आपकी धूनी मे जलने वाली लकडी मे क्या हैं ?

तापस— इसमे क्या है अग्निदेव के सिवाय और क्या हो सकता है ! सूर्य, इन्द्र और अग्नि—यह तीनो देव हैं।

धूनी की लकड़ी मे अग्निदेव हैं।

भगवान् ने शान्त स्वर में कहा—धूनी में जलने वाली इस लकड़ी मे अग्निदेव के सिवाय और कुछ नही है, यही आपका उत्तर है न ?

तापस—हाँ, हाँ, यही मेरा उत्तर है। उसमे और क्या रक्खा है ?

भगवान् बोले— इसी से कहता हूँ कि अभी तक आप कुछ भी नही जानते। आप जिस लकडी को धूनी मे जला रहे हैं, उस लकडी के भीतर हमारे आपके समान ही एक प्राणी जल रहा है।

तापस की आंखे लाल हो गईं। वह तिलमिला कर बोला— झूठ! एकदम झूठ! तपस्वी पर ऐसा अभियोग लगाना घोर पाप है।

भगवान्— हाथ कगन को आरसी क्या! आप झूठे हैं या मैं झूठा हूँ, इसका निर्णय तो अभी हुआ जाता है। लकडी चिरवा कर देख लो तो असलियत का पता लग जायगा।

तापस—ठीक है, मुझे स्वीकार है।

लकड़ी चीरी गई तो उसमे से एक साप निकला। वह अधजला हो चुका था। उस तडफते हुए अधजले साप को देखकर लोगो के विस्मय का ठिकाना न रहा और सांप के प्रति अतिशय करुणा जाग उठी। लोग कहने लगे—धन्य

हैं पार्श्वकुमार ! उनके विषय में जैसा सुनते थे, सचमुच वे उससे भी बढकर हैं ।' बहुतेरे लोग उस तापस की निन्दा करने लगे । अपनी प्रतिष्ठा को इस तरह धक्का लगा देखकर तापस बेहद रुष्ट हुआ । वह सोचने लगा – राजकुमार की प्रशसा हुई और मेरी निन्दा हुई !

भगवान् पार्श्वनाथ के हृदय मे जैसी दया तापस के प्रति थी वैसी ही दया साप के प्रति भी थी । भगवान् साप का कल्याण करने के लिए हाथी से नीचे उतरे ! साधारण लोग समझते हैं कि सांप क्या जाने ? लेकिन साप जानता है या नही, इसका निर्णय तो भगवान् के समान ज्ञानी पुरुष ही कर सकते हैं ! सर्वसाधारण के वश की यह बात नही है । जिस साप को लोग अतिशय भयावह, विषैला और प्राणहारक समझते हैं, उसी के कल्याण के लिए करुणानिधान हाथी से नीचे उतरे । वह सांप अधजला हो गया था और उसके जीवन की कुछ ही घडियाँ शेष रह गई थी । भगवान् ने उसे पच नमस्कार मन्त्र सुनाकर कहा— तुझे दूसरा कोई नही जला सकता और तू यह मत समझ कि दूसरे ने तुझे जलाया है । अपनी आत्मा ही अपने को जलाने वाली है । इसलिए समता भाव रख । किसी पर द्वेष मत ला । किसी पर क्रोध मत कर । इसी मे तेरा कल्याण है ।

भगवान् ने उस साप को किन शब्दों मे उपदेश दिया होगा, यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता और भगवान्

की महिमा भी नही कही जा सकती। फिर भी अनुमान के आधार पर कहा जा सकना है कि उनका उपदेश इसी आशय का रहा होगा। प्रथम तो स्वय भगवान् उपदेशक थे, दूसरे पच नमस्कार मत्र का उपदेश था। अतएव मरणासन्न साप अग्नि का सताप भूल गया। उसकी परिणति चन्दन के समान शीतल हो गई। वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ और बारम्बार भगवान् की ओर देखने लगा।

साप की जो कथा आप सुन रहे हैं वह मनोरजन के लिए नही है। उससे बहुत कुछ शिक्षा ली जा सकती है और शिक्षा लेने के लिए ही वह सुनाई गई है। क्या आप भगवान् पाश्वनाथ को भजते हैं ? अगर आप भगवान् को भजते हैं तो आपकी मनोवृत्ति ऐसी हो जानी चाहिए कि कोई कैसी ही आग मे क्यो न जलावे, आप शीतल ही बने रहे। वास्तव मे आग की ज्वाला मे सताप नही है, सताप है क्रोध मे। अगर आप अपनी वृत्ति मे से क्रोध को नष्ट कर दें तो आपको किसी भी प्रकार की आग नही जला सकती। लेकिन होता यह है कि लोग भगवान् पार्श्वनाथ का नाम जीभ से बोलकर आग को हाथ लगाते हैं और कहते हैं कि आग शीतल क्यो न हुई ? वे यह नही देखते कि हम बाहर की आग शान्त तो करना चाहते हैं मगर हृदय की आग–क्रोध की शाति हुइ है या नही ? अगर हृदय की आग शात नही हुई है तो बाहरी आग कैसे शीतल हो सकती है ? हृदय की आग को

शान्त करके देखो तो सारा जगत् शीतल दिखाई देगा।

ग्रन्थो मे कहा है कि भगवान् के उपदेश के कारण वह साप मर कर धरणेन्द्र देव हुआ। इस प्रकार भगवान् ने उस साप का भी कल्याण किया। ऐसी बातो के कारण ही जगत् मे भगवान् की महिमा का विस्तार हुआ है।

भगवान् ने साप का कल्याण किया और कल्याण करने से भगवान् की महिमा का विस्तार हुआ, यह ठीक है। किन्तु इससे आपका क्या कल्याण हुआ ? आपको अपने कल्याण के विषय मे विचार करना चाहिए। आपका कल्याण तभी सभव है जब आप भी भगवान् को अपने हृदय मे बसावें और जलती हुई क्रोध की आग को क्षमा, शान्ति, समभाव आदि के जल से शान्त कर दे।

कहा जा सकता है कि अगर भगवान् पार्श्वनाथ हृदय मे बस सकते हैं तो फिर बसते क्यो नही हैं ? क्या हम उन्हे बसने से रोकते हैं ? लेकिन सही बात यह है कि भगवान् पार्श्वनाथ को हृदय मे बसने देने मे एक प्रकार से नही तो दूसरे प्रकार से रोका जाता है। अगर उनके बसने में रुकावट न डाली जाय तो वे बसने मे विलम्ब ही न करें। अगर आप अपनी मनोवृत्तियो की चौकसी रखते हैं, अपनी भावनाओ की शुद्धि–अशुद्धि, उत्थान--पतन का विचार किया करते हैं तो यह बात समझने मे आपको दिक्कत नही हो सकती। लेकिन आम तौर पर लोग सट्टा बाजार के भावो

के चढने उतरने का जितना ध्यान रखते हैं, उतना भी आत्मा के भावो के चढाव–उतार पर ध्यान नही देते। यही कारण है कि आत्मा के पतन की भी उन्हे खबर नही पड़ती। शास्त्र मे गुणस्थानो का विस्तृत वर्णन किस लिए आया है? गुणस्थान आत्मा के उत्थान और पतन का हिसाब समझाने के लिए ही बतलाये गये हैं। अतएव देखना चाहिए कि किस प्रकार हमने अपने हृदय के द्वार भगवान् पार्श्वनाथ के आने के लिए बन्द कर रक्खे हैं और उसका परिणाम क्या हो रहा है? दूसरो के दुर्गुण देखने मे मत लगे रहो, अपने ही दुर्गुण देखो। दूसरो के दुर्गुण देखते रहने से अपने दुर्गुण दिखाई नही देते। अतएव अपने अवगुणो को देखो और सोचो कि हृदय मे परमात्मा को बसाने मे कहाँ चूक हो रही है?

[ख]

प्रार्थना का स्वरूप बहुत व्यापक है। शास्त्रकारो ने प्रार्थना के अनेक रूप और अनेक नाम बतलाये हैं। उन सब का विवेचन करना शक्य नही प्रतीत होता। अतएव यहाँ इसी प्रार्थना के सम्बन्ध मे किंचित् विचार करूँगा।

वेदान्त ने जिन्हे माया और ब्रह्म कहा है, सांख्य ने जिन्हे प्रकृति और पुरुष कहा है, जैनधर्म मे उन तत्त्वो को जड और चेतन कहा है। यद्यपि विभिन्न दर्शनो मे इन तत्त्वो का स्वरूप कुछ-कुछ भिन्न बतलाया गया है, फिर भी

इनमें मूलतः समानता है। इस प्रार्थना मे जड और चेतन को समझाते हुए पार्श्वनाथ भगवान् की वन्दना की गई है। यह प्रेरणा की गई है कि हे चिदानन्द ! तू पार्श्वनाथ भगवान् की वन्दना कर।

पार्श्वनाथ भगवान् अश्वसेन राजा के पुत्र और वामा देवी के नन्दन है। यो तो सभी मनुष्य माता पिता के पुत्र हैं परन्तु इनमे यह विशेषता है कि इनका स्वरूप चिन्तामणि है। जिस प्रकार चिन्तामणि समीप मे हो तो ससार के किसी भी पदार्थ का अभाव नही रहता, ऐसे ही भगवान् पार्श्वनाथ का नाम हृदय मे होने पर ससार सम्बन्धी चिन्ताओ का, सुख दु ख के द्वन्द्व का नाश हो जाता है और फिर किसी चीज की इच्छा शेष नही रह जाती।

भगवान् पाश्वनाथ का नाम चिन्तामणि है। उससे चिन्ताओ का नाश होता है। मगर चिन्ताओ का नाश तो तभी हो सकता है जब हम अपनी चिन्ताओ को समझ ले। हमे पहले यह समझ लेना चाहिए कि आत्मा को क्या चिन्ता है ?

चिन्तामणि से लोग तन, धन, स्त्री, पुत्र आदि नाना प्रकार के पदार्थ चाहते हैं। वह चिन्तामणि जड है। अत. उससे जड पदार्थ मांगे जाते हैं, परन्तु पार्श्वनाथ भगवान् का नाम चैतन्य-चिन्तामणि है। जड से जड पदार्थ मॉगे जाते है, लेकिन इस चैतन्य-चिन्तामणि से क्या मागना चाहिए ?

पहले चिन्ता का निर्णय कर लेना चाहिए। सासारिक पदार्थों की चिन्ता जड़ चिन्तामणि से तथा उसके अभाव मे दूसरे साधनो से ही मिट सकती है। उसके लिए चैतन्य-चिन्तामणि भगवान् पार्श्वनाथ से अभ्यर्थना करने की क्या आवश्यकता है ?

पुत्र की इच्छा पूर्ण करने के लिए पहले स्त्री की इच्छा की जाती है। पुत्र यदि भगवान् से ही मिलता हो और स्त्री से न मिलता हो तो फिर कँवारेपन मे ही भगवान् से पुत्र पाने की इच्छा क्यो न की जाती ? पहले स्त्री की इच्छा क्यो की जाती ? इससे भलीभाँति सिद्ध है कि पुत्र, स्त्री से ही मिलता है और यह बात इच्छा करने वाला भी भलीभाँति समझता है।

इसी प्रकार लक्ष्मीवान् की सेवा करन से निर्धन धनवान् हो सकता है। फिर धन की अभिलाषा करने वाले को परमात्मा से धन की प्रार्थना करने की क्या आवश्यकता है ?

शरीर का रोग वैद्य दूर कर सकता है। उसके लिए भी भगवान् के पास दौडने की आवश्यकता नही।

आशय यह है कि ससार के पदार्थ ससार से ही मिल सकते हैं। इससे यह भी सिद्ध है कि जड़ चिन्तामणि के बिना, जिससे हम ससार के पदार्थ चाहते हैं, कोई काम नहीं रुका है। हा, उसके मिलने पर यह अवश्य होगा कि उद्योग

नही करना पड़ेगा और आलस्य मे डूबे रहने पर भी यह सब वस्तुएँ मिल जाएंगी। मतलब यह निकला कि आलस्य वढाने के लिए जड चिन्तामणि की चाह की जाती है। अगर आप लोग आलस्य बढाने के लिए यहाँ आये हैं तो मेरे उपदेश से क्या लाभ है ? थोडे मे मेरे कहने का आशय यह है कि पहले अपनी चिन्ता का निर्णय करो। जड चिन्तामणि से जो चीज प्राप्त होगी वह सब नाशवान् होगी। परन्तु भगवान् पार्श्वनाथ के नाम रूपी चिन्तामणि से जो प्राप्त होगा वह नित्य और स्थायी होगा। ऐसी दशा मे प्रधान को छोड कर अप्रधान की तरफ हाथ वढ़ाना अपनी प्रधानता को नष्ट करना है।

चक्रवर्ती राजा की कृपा होने पर उससे मुठ्ठी भर घास मांगना, मागना नही उसका अपमान करना है। जिसने चक्रवर्ती से घास मागा, समझना चाहिए कि उसने चक्रवर्ती को पहचाना ही नही। जो चक्रवर्ती को समझ लेगा वह घास नही मागकर राज्य मागेगा और उससे घास भी आ जायगा।

इसी प्रकार भगवान् पार्श्वनाथ के नाम रूपी चिन्तामणि से ऐसी चीज मागो, जिनमे सभी चीजो का समावेश हो जाय। तात्पर्य यह है कि भगवान् पार्श्वनाथ की प्रार्थना शाश्वत सुख मोक्ष के लिए की जाती है। मोक्ष के मांगने पर क्या शेष रह जाता है ? मुक्ति मे सम्पूर्ण सुख का

समावेश आप ही आप हो जाता है ।

जैनसिद्धान्त के अनुसार ससार मे मूल दो पदार्थ हैं—एक जड, दूसरा चेतन । इन दोनो के मिलने बिछुडने से सारी सृष्टि का निर्माण होता है । कही, किसी ओर दृष्टि डालो, इन दो के अतिरिक्त और कोई पदार्थ दृष्टिगोचर नही होता ।

जड चेतन मिश्रितपणे रे कर्म शुभाशुभ स्थान ।
ये विभ्रम जग कल्पना रे आतम अनुभव ज्ञान ।।

यह चर्चा सूक्ष्म है । उपस्थित श्रोताओ मे दो-चार के सिवाय इसे शायद अधिक न समझ सकेंगे । मगर इतनी बात तो समझ ही लेनी चाहिए कि जीव चैतन्य स्वरूप है और जड अचेतन है । इन्ही के मिलने से ससार का यह खेल है । इस चेतन-चिन्तामणि के मिलने पर आप स्वयं अनुभव करने लगेगे कि यह ससार नीरस है और हमे इसकी आवश्यकता नही है ।

सुना है कि तोते को पकडने के लिए पारधी जगल में एक यन्त्र लगाते हैं । जैसे ही तोता आकर यन्त्र पर बैठता है, यन्त्र घूमने लगता है । ज्यो-ज्यो यन्त्र घूमता है, त्यों-त्यो तोता उसे जोर से पकडता है और सोचता है कि इसे छोडते ही मैं गिर पडूगा । उस यन्त्र की विशेषता यह होती है कि जब तक उस पर वजन रहेगा वह बराबर घूमता ही रहेगा । इसी कारण पारधी आकर तोते को पकड लेता है

अब आप विचार कीजिए कि तोता किस कारण पकडा गया ?

'भ्रम के कारण !'

वह भ्रम से समझता है कि मैंने यन्त्र को छोड़ा कि नीचे गिरा। इसी भ्रम के कारण वह पकड़ा जाता है और उसे पीजरे मे बन्द होना पड़ता है।

शास्त्रकार कहते है इसी प्रकार चिन्दानन्द कर्म-जाल मे पड़कर चक्कर खा रहा है। उसे भ्रम है कि मैंने इसे छोड़ा कि चक्कर मे आ पडा। इसी भ्रम के कारण वह चौरासी लाख योनियो मे चक्कर काट रहा है। परन्तु पार्श्वनाथ भगवान् का ध्यान करने से यह भ्रम मिट जाता है और मालूम हो जाता है कि ससार हमे चक्कर नही खिला रहा है, बल्कि हम स्वय ही चक्कर खाते हैं।

कुछ लोग यह सोचकर निराश हो जाते हैं कि जो कुछ होता है, कर्म से ही होता है। मगर उन्हे यह भी सोचना चाहिए कि कर्म को कौन बनाता और बिगाडता है ? कर्म को करने वाला कोई दूसरा नही है। तेरे लिए किसी दूसरे ने कर्म का निर्माण नही कर दिया है। तू स्वय कर्म उपार्जन करके और कर्मबन्धन मे पडकर चक्कर खा रहा है। ज्ञान हो तो चक्कर काटना ही न पड़े। इन चक्करों से छूटने के लिए ही उस चेतन चिन्तामणि का स्मरण करो। इसीलिए कहा है—

जीव रे ! तू पार्श्व जिनेश्वर वन्द ।

ये विभ्रम जगकल्पना रे आतम अनुभव न्याय ।

हे जीव ! तू किस भ्रम मे पड़ा है ! स्थिर होकर समझ कि मेरे ही चक्कर खाने से मैं घूम रहा हूँ और छूटने से छूट सकता हूँ। अर्थात् मैं ही चक्कर खा रहा हूँ और मैं ही चक्कर खाना छोड सकता हूँ।

एक आदमी ने पेड को पकड कर चिल्लाना आरम्भ किया— दौड़ो, मुझे पेड ने पकड रक्खा है। लोग उसकी चिल्लाहट सुन कर दौड़े। उन्होने देखा कि उसने स्वय पेड को पकड़ रक्खा है। उसने कहा— मूर्ख ! तुझे पेड ने पकड रक्खा है या तूने पेड़ को पकड रक्खा है ? छोड दे इस पेड को।

पकडने वाला कहता है—कैसे छोड़ूँ ? इसने तो मुझे पकड लिया है !

अब जब तक पेड पकडने वाले का भ्रम न मिटे वह सुखी कैसे हो सकता है ?

पार्श्वनाथ भगवान् की प्रार्थना से यह विदित होता है कि संसार ने तुम्हें पकड़ा है या तुमने ससार को पकड रक्खा है। लोग अब तक इसी भ्रम मे पडे हैं और इसी कारण चक्कर काट रहे हैं। भगवान् पार्श्वनाथ से इसीलिए प्रार्थना करनी चाहिए कि— प्रभो ! तेरी कृपा के बिना सच्चा ज्ञान नही आता। मैं सच्चा ज्ञान चाहता हूँ।

चिन्तामणि से तुम्हे अन्न-वस्त्र आदि सासारिक सुख के साधन मिल सकते हैं। परन्तु यह साधन आध्यात्मिक क्लेशो को मिटाकर शाश्वत शान्ति और अनन्त आनन्द नही दे सकते। बल्कि इन साधनो के कारण असन्तोष और अशान्ति बढती है और फलस्वरूप क्लेश भी बढते चले जाते हैं। लेकिन चैतन्य-चिन्तामणि से ऊपर का ही सुख नही मिलता, उससे शरीर का ही सुख नही प्राप्त होता, बल्कि आत्मा को ही आनन्द मिलता हैं। एक सैकिंड के लिए भी अगर चैतन्य-चिन्तामणि की चाह अन्त.करण मे जाग उठे तो निराला ही अनुभव होगा। इसकी चाह मे जितना वढोगे, उतना ही आपकी आत्मा का कल्याण होगा।

[ग]

जीव रे ! तू पार्श्व जिनेश्वर वन्द।

यह भगवान् पार्श्वनाथ की प्रार्थना है। प्रार्थना रूप चिन्तामणि का आत्मा के साथ किस प्रकार योग होता हैं, यह श्रवण करने का विषय है। लेकिन श्रवण करने के साथ ही मनन करने की भी आवश्यकता है। विना मनन किये श्रवण करना पूर्णतया लाभप्रद नही होता। आज मैं प्रार्थना सम्बन्धी कुछ गम्भीर बाते आपको सुनाना चाहता हूँ। आप सुनने के लिए तैयार हो अर्थात् एकाग्र चित्त से सुनें और आपका मस्तिष्क उन विचारो को ग्रहण कर सके, तभी मेरा कहना सार्थक हो सकता है।

प्रार्थना किस प्रकार करनी चाहिए ? इस सम्बन्ध में ससार मे नाना मत हैं। कोई कुछ कहता है और कोई कुछ कहता है। लेकिन प्रार्थना की शक्ति को सभी ने एकमत से स्वीकार किया है। प्रार्थना की शक्ति को वेदान्तदर्शन के अनुयायी परा शक्ति कहते हैं। शक्ति दो प्रकार की मानी गई है – परा और अपरा। अपरा शक्ति मे तो प्रायः सभी ससारी पडे हुए हैं। इस अपरा शक्ति से परा शक्ति मे जाने के लिए साधन की आवश्यकता है। पराशक्ति मे जाने के लिए ही प्रार्थना की जाती है। प्रार्थना पराशक्ति के प्राप्त करने का साधन है। परा शक्ति किसी दूसरे की नही है। वह है तो हमारी ही, लेकिन आज हम अपरा शक्ति मे पडकर उस परा शक्ति को भूल गये हैं। जो महानुभाव उस परा शक्ति को प्राप्त कर चुके हैं, उन्हे देखकर ही हम यह कह सकते हैं कि हे पराशक्ति ! तुम मुझ मे आओ। तुम मेरी हो, फिर मुझ से दूर क्यो हो रही हो ?'

अभी जो प्रार्थना बोली है, उसमे भी परा शक्ति को प्राप्ति का ही उपाय बतलाया गया है। उसमे कहा है—

चिन्तामणि चित्त में बसे तो दूर टले दुख द्वन्द्व।

परमात्मा रूप चैतन्य चिन्तामणि के हृदय मे बसे बिना वह शक्ति नही मिल सकती। अतएव उस शक्ति की प्राप्त करने के लिए परमात्मा को हृदय मे बसाने की आवश्यकता है और इसके लिए भी साधन चाहिए। यह बात

निसर्ग पर ध्यान देने से अच्छी तरह समझ में आ सकती सूर्य मे प्रकाश तो है ही, लेकिन वैज्ञानिक दृष्टि से देखने पर उसमे कुछ और ही विशेषता जान पडेगी। वैज्ञानिक यह जानते हैं कि सूर्य की किरण मे आग पैदा करने की शक्ति है। आग की आवश्यकता होने पर वैज्ञानिक सूर्य से रुई पर आग प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार यह बात प्रतीत हुई कि सूर्य की किरण मे आग है और वह आग रुई पर आ भी जाती है। रुई सूर्य की किरण की आग को पकड भी लेती है। लेकिन इसके लिए भी साधन की आवश्यकता है। वह साधन काच है। काच से सूर्य की किरणें एकत्रित होकर रुई मे आ जाती हैं।

इसी प्रकार प्रार्थना मे आत्म-विकास की शक्ति है। यदि आप अपने मे उस शक्ति को प्राप्त करना चाहते हैं तो साधन को जुटाइए। इससे वह शक्ति आप में आ जाएगी। आप उस शक्ति को अपने मे लेना तो चाहते हैं, लेकिन जब तक बीच मे साधन न हो— जिस साधन से वह शक्ति अपने मे ग्रहण की जा सकती है वह साधन न हो—तब तक आप में वह नही आ सकती। ठीक उसी तरह जैसे किरण में आग उत्पन्न करने की शक्ति है और वह रुई मे आ भी जाती है, लेकिन जब तक बीच में काच न हो, रुई मे आग नही आ सकती। इसी प्रकार परमात्मा की शक्ति रूपी आग भी बिना साधन के कैसे प्राप्त हो सकती है? इस कारण यदि आप परमात्मा

की वह शक्ति चाहते हैं, परा प्रकृति को प्राप्त करने की आपकी इच्छा है तो उस शक्ति की प्राप्ति के लिए उचित साधन काम मे लीजिए। वह शक्ति आप मे आने से इकार नही करती है। वह दयालु शक्ति है। लेकिन उसे ग्रहण करने के लिए अपने हृदय को तैयार करो। परमात्मा की सच्चे भाव से प्रार्थना करो। अगर कोई सच्ची रीति से परमात्मा की प्रार्थना नही करता और उस शक्ति को दोष देता है तो वह दोष देने वाला झूठा है।

परा शक्ति को प्राप्त करने का साधन परमात्मा की प्रार्थना रूपी काच है। लेकिन आपने उस काच पर अनेक आवरण डाल रक्खे हैं। उसे बहुत मैला कर रक्खा है। यही कारण है कि उस शक्ति की किरणें आप मे नही आ पाती। अतएव पहले यह विचार करो कि उस शक्ति की किरणें हमारे मे क्यो नही आती? साथ ही यह भी सोचो कि उस शक्ति को ग्रहण करने वाले काच को किस प्रकार साफ किया जाय? उस काच को साफ करने के लिए काम, क्रोध, मोह, मद, मत्सरता और लोभ का त्याग करो और जो चीज आपकी नही है उससे नाता तोड़ लो। आचारांग-सूत्र मे कहा है कि जो प्रारम्भ मे ही आपकी नही है, वह अन्त मे और मध्य मे भी आपकी कैसे हो सकती है? आचाराग का पाठ इस प्रकार है :—

जस्स नत्थि पुव्वं, पच्छा, मज्झे तस्स कुओ सिआ?

अर्थात्—जो पौद्गलिकशक्ति पहले नहीं थी और अन्त मे भी नही रहेगी, वह बीच मे आपकी कैसे हो सकती है ?

अतएव जो पहले आपका नही था उसे त्यागो। उसके भुलावे मे मत पडो। पाँच और पाँच दस होते है। इस बात पर आपको विश्वास है। कोई कितना ही पढा-लिखा विद्वान् हो और वह आपको दस के बदले नौ या ग्यारह कहे तो आप उसका कथन सत्य नही मानेंगे। आपको पक्का विश्वास है कि पाँच और पाँच दस ही होते हैं। इस सत्य से किसी के भी कहने पर आप विचलित नही हो सकते। इसी तरह सदा सत्य पर विश्वास रक्खो। जो अत्यन्त और एकात सत्य है उसी को अपनाओ। फिर वह परा शक्ति आपसे दूर नही है। वह आप मे आने के लिए सदा ही तैयार है। लेकिन या तो आप उसके और अपने बीच मे साधन रूप काच नही रखते या वह काच मैला है। जब बीच मे काच ही न हो या काच मैला हो तब परा शक्ति रूप सूर्य की किरणें कैसे आ सकती हैं ? साधन रूप काच बीच मे हो और वह मैला न हो किन्तु साफ हो तो वह शक्ति अवश्य ही आप मे आ जाएगी।

कई लोग उस शक्ति के विषय मे सन्देह करते हैं कि वह शक्ति है भी या नही ? लेकिन इस प्रकार का सन्देह हृदय रूपी काच पर मैल होने का प्रमाण है। जिसका हृदय रूपी काच स्वच्छ होगा उसे उस शक्ति के अस्तित्व से सन्देह नही हो

सकता । उस शक्ति का अस्तित्व उसी प्रकार सत्य है जिस प्रकार सूर्य की किरणो से आग उत्पन्न होने की बात सत्य है । सूर्य पर तो कभी आवरण भी आ जाता है, मगर वह शक्ति निरावरण है । सूर्य पर आवरण आ जाने से उसकी किरणो से आग नही भी मिलती है, किन्तु वह पराशक्ति तो सदा ही प्राप्त हो सकती है ।

सूर्य पर आवरण आ जाने पर और उसकी किरणें प्राप्त न होने पर आग को प्राप्त करने के लिए पहले के लोगो ने चकमक का आविष्कार किया । एक लोहे का टुकडा होता है । दोनो को आपस मे रगडने से आग पैदा हो जाती है, जिसे रुई पर ले लिया जाता है । इस तरह कुछ ही पैसो मे चकमक मिल जाती थी और उससे आग प्राप्त कर ली जाती थी । लेकिन आज चकमक के स्थान पर लाखो रुपयो की दियासलाइयाँ लग जाती हैं ।

महाकवि भवभूति के द्वारा रचित उत्तररामचरित के एक श्लोक पर यो तो बहुत कुछ कहा जा सकता है, पर यहाँ थोडे मे ही कहूँगा । उसमे जो विचार व्यक्त किये गये हैं उन्हें समझा देना मेरा काम है, लेकिन अमल मे लाना आपका काम है । समझाने वाले चाहे साक्षात् तीर्थंकर ही क्यो न हो, सुनने वालो को अमल तो स्वय ही करना पड़ता है । अपने किये विना कुछ नही होता । भवभूति कहते हैं—

अद्वैत सुखदु खयोरनुगुण सर्वास्वस्थासु यत् ।
विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रस. ।।
कालेनावरणात्ययात् परिणते यत्स्नेहसारे स्थितम् ।
भद्र प्रेम सुमानुषस्य कथमप्येक हि तत् प्राप्यते ।।

इस श्लोक मे बतलाया है कि ससार मे सब वस्तुएँ मिल सकती हैं, लेकिन एक वस्तु का मिलना बहुत ही कठिन है। वह वस्तु तो पूर्व-जन्मो की अच्छी करणी होने पर ही मिल सकती है। वह वस्तु है—प्रेम। वह पूर्व पुण्य के सचय बिना और कष्ट के बिना नही मिलता। उस प्रेम का स्वरूप अहेतुक अनुरक्ति है। अर्थात् वह प्रेम नि.स्वार्थ होना चाहिए। प्रेम दो प्रकार का होता है—भद्रप्रेम और अभद्र-प्रेम। अच्छे मनुष्य का प्रेम भद्रप्रेम होता है और बुरे मनुष्य का प्रेम अभद्रप्रेम होता है। यहाँ जिस प्रेम की दुर्लभता बतलाई गई है वह भद्रप्रेम ह। यह बात अनेक उदाहरणो द्वारा बतलाई जाती है।

ससार व्यवहार मे पति-पत्नी के प्रेम को प्राय: सब से बडा माना जाता है। जिसमे किंचित् भी स्वार्थ की भावना नही है, ऐमा निस्वार्थ पत्नीप्रेम किसी ही पति को उसके पूर्वपुण्य से ही मिलता है। इसी भाति पत्नी का पूर्व पुण्य हो तभी उसे पति का नि.स्वार्थ प्रेम प्राप्त होता है। इसी प्रकार स्वामी सेवक, राजा-प्रजा, गुरु-शिष्य और भगवान् तथा भक्त मे भी निस्वार्थ प्रेम बिना पूर्वपुण्य के नही होता।

जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश चाहे जहाँ लिया जा सकता है, इसी प्रकार प्रेम का प्रकाश भी सब जगह और सब अवस्थाओ मे आता है। यह प्रेम ऐसा है कि चाहे सुख हो या दु ख हो, अद्वैतभाव से रहता है। सुख और दु ख की अवस्था मे प्रेम मे भेद हो जाना द्वैत है।

सीता ने स्वयवरमडप मे राम के गले मे माला डाली थी। इसमे कोई विशेषता नही थी क्योकि उस सभा में उनके समान बलवान् दूसरा कोई नही था और सिर्फ उन्होने धनुष चढाया था। अतएव उस समय सीता को राम के गले मे वरमाला डालने से प्रसन्नता हुई। इससे सीता की कोई विशेषता नही प्रकट होती। सीता की विशेषता तो इस बात से प्रकट होती है कि उसे जैसी प्रसन्नता राम के गले मे वरमाला डालते समय हुई थी, वैसी ही प्रसन्नता राम के साथ वन जाते समय भी हुई। इसी का नाम सुख और दु ख मे समान प्रेम रहना है और यही अद्वैत प्रेम है। जो प्रेम सुख मे रहे और दु ख मे न रहे, वह द्वैतप्रेम है।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि इस प्रकार का अद्वैत प्रेम पति और पत्नी तक ही सीमित रक्खा जाय या आगे बढाया जाय ? आगे स्वामी-सेवक मे भी इस प्रकार का अद्वैत प्रेम रहना कठिन होता है। कई सेवक ऐसे होते हैं कि जब तक स्वामी से पैसे मिलते हैं तब तक तो सेवा करते हैं और जब पैसा मिलना बन्द हो जाता है तब स्वामी

की आबरू लेने को तयार हो जाते हैं ! निःस्वार्थभाव से सेवा करने वाले सेवक या नि.स्वार्थ प्रेम रखने वाले सेवक बड़े भाग्य से ही मिलते हैं !

अब पिता-पुत्र के प्रेम को देखिए। पिता, पुत्र की और पुत्र, पिता की स्वार्थ से प्रेरित होकर तो सेवा करते ही हैं, स्वार्थ से तो प्रेम करते ही हैं, लेकिन निस्वार्थ प्रेम पूर्वपुण्य के अभाव मे नही मिल सकता। भाई-भाई मे स्वार्थमय प्रेम होता ही है। मगर निस्वार्थ प्रेम कैसा होता है, यह जानना हो तो लक्ष्मण को देखो। राम का राज्य छूटने और उनके वन जाने के समय लक्ष्मण को क्रोध भी आया था और वे सारी पृथ्वी को कपित कर सकते थे। उन्होने कहा भी था कि सौमित्र के होते हुए राम का राज्य कौन ले सकता है ? लेकिन फिर लक्ष्मण ने सोचा कि मैं जिनके विषय मे यह सब सोच रहा हूँ, उन राम की इच्छा क्या है, यह भी तो देख लेना चाहिए। वे राज्य चाहते हैं या नही ? जब उन्होने राम को देखा तो उनमे निस्वार्थ प्रेम ही दिखाई दिया। यह देखकर और भाई की इच्छा जानकर उन्होने अपना विचार वदल दिया और राम के साथ ही वन जाने का विचार कर लिया। यो तो राम के नाम की माला सभी जपते हैं। मगर उस जाप का उद्देश्य क्या है ? प्राय. यही उद्देश्य होता है कि हम पराया माल किसी तरह हजम कर लें।

भाई-भाई के ही प्रेम की तरह सहधर्मी के प्रेम को

भी देखो। सहधर्मी भाई से सुख मे प्रेम किया और दुःख के समय उसे भूल गये तो निस्वार्थ प्रेम नही है। यह स्वार्थ पूर्ण प्रेम है।

गुरु और शिष्य मे कैसा प्रेम होना चाहिए ? जब गुरु सुख मे हो तो चेला हाजिर रहे और गुरु पर जब दुःख आ पडे तो दूर हो जाय, तो क्या उस शिष्य का गुरु पर निस्वार्थ प्रेम कहा जा सकता है ? निस्वार्थ प्रेम तो तभी कहला सकता है जब वह सुख और दु.ख मे समान रूप से रहे, बल्कि दुःख के समय और अधिक समीप आवे। कहावत है—

वखत पड्या ने आवे आडो,
वो सज्जन से प्रेम है गाडो।
वखत पड्या पर लेवे टालो,
वो सज्जन को मूँडो कालो।

इस प्रकार जो मनुष्य समय पर काम न आवे, दुःख के समय प्रेम न रक्खे, वह सच्चा प्रेमी नही है।

अब ईश्वर और भक्त के प्रेम पर विचार करो। भक्त का ईश्वर पर कैसा प्रेम होना चाहिए ? जब आपको ससार के सभी सुख प्राप्त हो, बेटे-पोते आदि हो, और खाने-पीने को खूब मिलता हो उस समय परमात्मा की कृपा मानना और कष्ट के समय भगवान् को गाली देने लगना भगवान् के प्रति निस्वार्थ अद्वैत प्रेम नही है। परमात्मा से निस्वार्थ प्रेम करना सीखना हो तो उनसे सीखो जिन्होने

सिर पर धधकते अगार रक्खे जाने पर और घानी मे पीले जाने पर भी परमात्मा से प्रेम नही त्यागा, जो ऐसी भीषण स्थिति मे भी परमात्मा के प्रति अटल प्रीति बनाये रहे। जिस प्रकार अगरबत्ती जलने के समय बहुत खुशबू देती है, बदबू नही देने लगती, उसी तरह निस्वार्थ प्रम करने वाला दु ख के समय परमात्मा से और अधिक सामीप्यमय प्रेम स्थापित करता है, वह उस समय परमात्मा को गालियाँ नही देने लगता। अगर दु ख के समय परमात्मा को गाली देने लगे तो स्वार्थपूर्ण और द्वैतमय प्रेम समझना चाहिए।

सीता का राम के प्रति निस्वार्थ प्रेम था ही, लेकिन राम भी सीता से निस्वार्थ प्रम करते थे। वे सुख के समय सीता से जितना प्रेम करते थे उतना ही प्रेम दु ख के समय भी करते थे। वैसे तो राम के चरित्र को बहिर्दृष्टि से देखने वाले कई लोग उनके चरित्र मे से काँटे भी निकालते हैं। वे कहते हैं—सीता गर्भवती थी। उसको प्रसव पीडा हो रही थी, फिर भी राम ने उसे भयानक वन मे छोड दिया। किन्तु उस समय भी राम की मनोदशा का जो वर्णन भव-भूति ने किया है उसे सुनकर किसी भी सहृदय पुरुष को रोना आये बिना नही रह सकता। सीता का परित्याग करने से राम को अत्यन्त उग्र और गहन व्यथा हुई थी। उनके लिए सीता का त्याग करना प्राणो का त्याग करने के समान अप्रिय—अनिष्ट था। लेकिन उन्होने कहा था कि,

भले मुझे प्राण ही क्यो न देने पड़े, फिर भी मेरे लिए प्रजा का अनुरजन करना आवश्यक है । प्रजा ने जानकी पर कलक लगाया है । मैं इस बात को लेकर प्रजा का विरोध नही करना चाहता । विरोध करने से प्रजा का अनुरजन नही होगा और मेरी तथा जानकी की प्रतिष्ठा भी नही बढेगी । जानकी निर्दोष है, इसलिए उसका वन मे भी क्या बिगड़ सकता है ! अन्त मे सचाई सूर्य की तरह चमकेगी और उसके चरित्र को घेरने वाले सन्देह के मेघ उसके कष्ट सहन रूप पवन से छिन्न-भिन्न हो जाएँगे । अतएव सीता को वन मे भेज देना ही ठीक है । वन जाने के कारण सीता को कष्ट होगा और मुझे भी असीम दु ख होगा, मगर सीता की निष्कलकता सिद्ध हो जायगी और ससार के समक्ष एक सुन्दर आदर्श खडा हो जायगा । राम ने इस प्रकार विचार किया था । इसी कारण वन भेजने के निमित्त को लेकर सीता को भी राम के प्रति अप्रीति नही हुई ।

राम ने सीता को वन मे भेज दिया था फिर भी राम के प्रति सीता का प्रेम कम नही हुआ, ज्यो का त्यो बना रहा । इसका कारण यह था कि उन दोनो मे अहेतुकी अनुरक्ति थी । अहेतुकी अनुरक्ति सुख और दु.ख दोनो मे समान ही रहती है । उसमे किसी भी समय द्वैत तो होता ही नही है । चाहे सुषुप्ति-अवस्था हो या जागृति--अवस्था हो, कैसी भी अवस्था क्यो न हो, इस प्रेम मे अन्तर नही

आता। जैसे पतिव्रता स्त्री को परपुरुषरमण का स्वप्न भी नही आता और जसे किसी भी कुलीन पुरुष को मातृरमण का स्वप्न नही आता, क्योकि हृदय मे इसकी भावना ही नही है। जो पुरुष मास--मदिरा नही खाता-पीता उसे उसके खाने--पीने का स्वप्न भी नही आता होगा, क्योकि उसके हृदय मे वैसी भावना ही नही होती। इसी प्रकार अहेतुक प्रेम किसी भी अवस्था मे अन्यथा नही होता। वह प्रेम प्रत्येक अवस्था मे समान बना रहता है। किसी भी समय कम या ज्यादा नही होता। यह बात उन पति--पत्नि की है जो सदाचारी हैं और जिनमे निस्वार्थ पेम है। अहकार निर्लज्जता या दुर्व्यसन मे पड़े हुए लोगो की बात निराली है। उनके विषय मे यह नही कहा जा सकता।

अहेतुकी प्रेम से हृदय को विश्राम मिलता है। सासारिक लोगो का हृदय त्रिताप से सदा ही सतप्त रहता है। उदाहरण के लिए, गृहस्थ को धन कमाने मे भी दुख होता है, उसकी रक्षा मे भी दुख होता है और व्यय मे भी दुख होता है। धन चोरी या लूट आदि से चला जाय तब भी दुख होता है और न जावे तो भी दुख होता है। इस प्रकार ससारी प्राणी का हृदय त्रिताप से जला करता है। अहेतुकी अनुरक्ति उस तप्त हृदय को विश्राम देती है।

यह प्रेम हृदय का विश्राम किस प्रकार है ? आपने धन का उपार्जन किया है। फिर उसे तिजोरी मे बद कर

रखने का कारण क्या है ? यही तो आपको भय है कि उस धन को कोई ले न जाय । पैसा कही चला न जाय ! इस प्रकार आपका धन ही आपके लिए तापकारक है ।

आपका विधिवत् विवाह हो गया है, फिर भी स्त्री पर विश्वास नही है । इसीलिए उसे पर्दे मे रक्खा जाता है कि कही कोई देख न ले । अहेतुकी अनुरक्ति होने पर इस तरह का भय नही रहता । सीता को रावण हर ले गया था । सीता अकेली और असहाय थी और रावण प्रचण्ड शक्ति से सम्पन्न था । फिर भी राम को अविश्वास नही हुआ था । सुदर्शन सेठ को शूली पर चढाने के लिए ले जाया जा रहा था । किसी ने उसकी स्त्री मनोरमा से कहा कि तुम्हारे पति को शूली पर चढाया जा रहा है । तब मनो-रमा ने यही कहा कि मुझे विश्वास है, कि मेरे पति को शूली नही लग सकती । मेरे पति ऐसे नही कि उन्हें शूली लग सके ! इतने पर भी अगर शूली लग जाय तो मैं यही समझूँगी कि मेरे पति शूली पर नही चढे हैं किन्तु उनके किसी समय के किसी पाप को ही शूली पर चढाया गया है । धर्म कभी शूली पर नही चढ़ता । शूली पर चढता है पाप !

जहाँ इस तरह निस्वार्थ प्रेम है वहाँ विश्वास रहता है और जहाँ विश्वास है वहाँ हृदय को विश्राम है । पति-पत्नी, भाई-भाई, पिता पुत्र आदि जिनमे भी इस प्रकार का

प्रेम है उनमे सदा विश्वास ही रहता है और उनका गृहस्थ-जीवन सुखमय तथा शान्तिमय व्यतीत होता है। वहा भय और अविश्वास को अवकाश नही रहता। इस तरह निस्वार्थ प्रेम हृदय के लिए विश्राम है। ऐसा निस्वार्थ प्रेम अनेक जन्म के पुण्य और अनेक जन्म की तपस्या से ही मिलता है।

हमने पहले पुण्य का उपार्जन नही किया है, अब हम क्या कर सकते हैं? इस प्रकार विचार कर निराश होने का कोई कारण नही है। आस्तिक के पास निराशा फटक नही सकती। आस्तिक पक्का आशावादी होता है। उसका धैर्य असीम और उसका उत्साह अटूट होता है। अनादि भूतकाल की भाँति।

भविष्य उसकी दृष्टि के सन्मुख रहता है। आस्तिक यही सोचेगा कि पहले पुण्य नही किया तो न सही। मैं इस जीवन के साथ समाप्त हो जाने वाला नही हूँ। अनन्त-काल समाप्त हो गया पर मैं समाप्त नही हुआ और अनन्त भविष्यकाल, भूतकाल के रूप मे परिणित हो जायगा, फिर भी मैं वर्त्तमान ही रहूँगा। मैं अब पुण्य का सग्रह करूँगा और वह पुण्य भविष्य मे काम आएगा। इस भव में उपाजन किया हुआ पुण्य और की हुई तपस्या कदापि वृथा नही जाएगी। जो इस तरह सुदृढ श्रद्धा के साथ पुण्य और तप करेगा उसका भविष्य निस्सदेह मगलमय होगा।

मित्रो! अहेतुक प्रेम जगत् का शृङ्गार है। वही

परमात्मा से साक्षात् कराने वाला है। अतएव परमेश्वर के प्रति निस्वार्थ भाव से अनुराग धारण करो। यह प्रार्थना का सर्वश्रेष्ठ उद्देश्य है और इसी मे आपका सच्चा कल्याण है।

[घ]

जीव रे तू पार्श्व जिनेश्वर वन्द।

भगवान् पार्श्वनाथ की इस स्तुति मे अपूर्व रहस्य भरा है। वह रहस्य गहरे विचार के बिना समझ मे नही आ सकता। थोडे शब्दो मे मैं यह समझाने का प्रयत्न करूँगा कि इस स्तुति मे क्या विचार निहित है।

सामान्य रूप से भगवान् एक है, परन्तु एक मे अनेक दिखाने के लिए चौवीस तीर्थंकरो की स्तुति की जाती है। प्रत्येक स्तुति मे भिन्न-भिन्न विचार प्रकट किये गये हैं। उन सबको भलीभाँति समझ कर आत्मा को बलवान् बनाने का उपाय करना हम सबका परम कर्त्तव्य है।

भगवान् पार्श्वनाथ की इस स्तुति मे कहा है—

जीव रे ! तू पार्श्व जिनेश्वर वन्द।

अर्थात्—हे जीव ! तू इधर–उधर मत भटक, पार्श्वनाथ भगवान् की वन्दना कर। पार्श्वनाथ भगवान् कौन है !

अश्वसेन—नृप कुल--तिलो रे,
वामा देवी के नन्द।

भगवान् का यह स्थूल रूप मे परिचय है। इससे

ज्ञानी तो समझेंगे ही, बाल जीव भी इतना समझ लेगे कि पार्श्वनाथ भगवान् अश्वसेन राजा और वामा देवी के पुत्र थे। वे भी अपने जैसे ही थे। यद्यपि वे थे विशिष्ट परन्तु थे मनुष्य ही। उनका जन्म उसी प्रकार स्वाभाविक रीति से हुआ था, जैसा मनुष्यो का होता है। इनके जन्म मे ऐसी कोई विचित्रता या अस्वाभाविकता नही थी, जैसी कि दूसरे लोग अपने भगवान् की महिमा प्रकट करने के लिए कल्पना करते हैं। जैसे दूसरे लोग कुंआरी का बिना बाप का बेटा या आकाश से उतरा हुआ बेटा कह कर असभव को सत्य करने का प्रयत्न करते हैं, इनके जन्म मे ऐसी कोई अलौकिकता नही थी। हा उनमे यह विशेषता अवश्य थी कि जन्म लेकर भी वह अजन्माधर्म को पहुचे अर्थात् उन्होने परम पद प्राप्त किया। इस कारण वे हमारे लिए चिन्तामणि है।

चिन्तामणि चित मे वसे रे,
दूर टले दुख द्वन्द्व।

चिन्तामणि का अर्थ है—जो चित्त की चिन्ताओ को दूर करे। प्रश्न किया जा सकता है कि जब जड चिन्तामणि से चित्त की चिन्ताएँ दूर हो जाती हैं तब पाश्वनाथ भगवान् का ध्यान क्यो करे ?

मित्रो ! चिन्तामणि से जो कार्य होता है वह कार्य तो भगवान् पार्श्वनाथ के स्मरण से ही हो जाता है। परन्तु जो चिन्ता इनसे नाश हो सकती है वह चिन्ता चिन्तामणि

से नही नष्ट हो सकती ।

ससार मे साधारणतया पहले अन्न की चिन्ता रहती है । अन्न के पश्चात् दूसरी चिन्ता वस्त्र की होती है । यद्यपि वस्त्र कृत्रिम है फिर भी उसकी चिन्ता होती है । वस्त्र के बाद घर की, घर मिल जाने पर स्त्री की और स्त्री प्राप्त हो जाने पर पुत्र की चिन्ता होती है । मतलब यह है कि एक-एक चिन्ता पूरी होती जाती है और दूसरी-दूसरी चिन्ता उत्पन्न होती जाती है । इस प्रकार घर, स्त्री और पुत्र आदि हुए तो टके पैसो की चिन्ता लगती है । जब वह चिन्ता भी पूर्ण हो गई तो मान, बडाई और आनन्दमय जीवन व्यतीत होने की नवीन चिन्ता का जन्म होता है । भगवान् पार्श्वनाथ की प्रार्थना और वन्दना से यह चिन्ताएँ सहज ही दूर हो जाती हैं, साथ ही पार्श्वनाथ के सिवाय अन्य तरह से भी यह चिन्ताएँ मिट सकती हैं । मैं अलग-अलग समझाने का प्रयत्न करूँगा तो समय अधिक लग जायगा । इसलिए सक्षेप मे ही कहता हूँ । मैं आपसे पूछता हूँ कि पहले आप पेट चाहते हैं या अन्न ?

'पेट !'

पेट हुआ तो दो हाथो से पेट भरने के लिए उद्योग क्यो न किया जाय ? पेट भरने के लिए किसी की शरण लेने से क्या लाभ है ? इसी प्रकार वस्त्र, घर और स्त्री की प्राप्ति भी उद्योग से हो सकती है । स्त्री होने पर पुत्र भी

मिल जायगा । । तात्पर्य यह है कि इन सब चिन्ताओ को पूर्ण करने के लिए पार्श्वनाथ का स्मरण न किया जाय तो भी उद्योग से वह पूरी हो सकती हैं । तो फिर पार्श्वनाथ की वन्दना करने की आवश्यकता क्यो है ? किस प्रयोजन के लिए पार्श्वनाथ का चिन्तन करना चाहिए ? अभी प्रार्थना मे कहा हैं—

जड चेतन मिश्रितपणेरे,
कर्म शुभाशुभ भाव ।

भगवान् पार्श्वनाथ के स्मरण के बिना यह मालूम नही होता कि जड़-चेतन क्या है ? इनकी मिलावट से ससार मे क्या बना है ।

ससार मे दो वस्तुओ की शक्ति है या एक की ही, इस विषय को लेकर ससार मे भ्रम फैला हुआ है । यह विषय बहुत गम्भीर है । भारतवर्ष के बडे-बडे दार्शनिको ने इस विषय मे विशाल ग्रन्थ रचे हैं । फिर भी विषय का अन्त नही आया । मैं यहाँ थोड़े से शब्दो मे इस विषय पर साधारण प्रकाश डालूँगा ।

सम्पूर्ण विश्व को एक ही शक्ति का परिणाम मानने वालो मे भी दो मत हैं । चार्वाकदर्शन एक जड़ शक्ति को स्वीकार करता है । वह कहता है— ससार मे जो कुछ है, जड ही है । जड़ के अतिरिक्त चैतन्य कुछ भी नही है । जड से ही यह सारा ससार बना हुआ है । जैसे स्त्री पुरुष

के मिलने से मनुष्य बनते हैं, इसी प्रकार एक जड पदार्थ का दूसरे जड पदार्थ के साथ मेल होने से सारा ससार बना है। कत्था, चूना और पान अलग-अलग हो तो रग नही आएगा, किन्तु जब यह तीनो मिलते हैं तो रग आ जाता है। साराश यह है कि जड के आपस मे मिलने से ही यह सब कुछ है।

उनकी यह भी मान्यता है कि नर-नारी के सभोग से स्त्री और पुरुष की उत्पत्ति होती है। यदि वीर्य ज्यादा हुआ तो पुरुष उत्पन्न होगा, रज ज्यादा होगा तो स्त्री। रज और वीर्य के बराबर होने पर नपुंसक पैदा होगा। इस प्रकार ससार के समस्त पदार्थ जड के सम्मिलन और परिणमन से ही बने हैं। जड के अतिरिक्त चैतन्य की कोई सत्ता नही है।

अब दूसरे वेदान्त को लीजिए। वेदान्तदर्शन, चार्वाक-दर्शन के समान ही एक शक्ति को स्वीकार करता है, लेकिन वह चैतन्यवादी है। उसकी मान्यता के अनुसार चेतनत्व ही सत् है। चेतन के अतिरिक्त जड की कोई सत्ता नही है। चिदानन्द रूप एक अखड पुरुष है। उसी की बिखरी हुई यह माया ससार है।

इन सब मान्यताओ पर विस्तार के साथ विचार करने का समय नही है। परन्तु चार्वाक से पूछा जाय, कि तुम्हारे मत से वीर्य—सामग्री से मनुष्य बना है और इसकी पुष्टि के लिए तुम पान का उदाहरण देते हो। पर यह किसी के

अधीन हैं या आप ही आप मिल जाते हैं ? यह खट खट करने वाली घडी जड पदार्थ के सयोग से बनी है, परन्तु किसी अधीनता से बनी है या आप ही आप ? अगर अधीनता मे बनी है तो किसकी अधीनता मे बनी है— जड या चेतन की ? यदि जड के ही अधीन है तो फिर विज्ञान की क्या आवश्यकता थी ? चाहे जो क्यो नही बना लेता ?

थोडी देर के लिए समझ लें कि घडी को बनाने वाला चैतन्य नही है, परन्तु इस घडी को घडी समझने वाला कौन है ? मित्रो ! जिसने यह पदार्थों का सयोग करके घडी को बनाया है और जो इसको घडी समझता ह, वह चैतन्य है।

इसी प्रकार सिर, हाथ, पाँव चेतन नही हैं, परन्तु इनको हाथ, पाँव और सिर समझने वाला और इनका सयोग करने वाला चिदानन्द है, जो हमारे भीतर वास कर रहा है। उसी के प्रभाव से यह शरीर जुडा है। पान, कत्था और चूने का भी यही हाल समझिए। उन्हें ज्ञान नही था कि हमारे मिलने से रग आ जाएगा। चेतन ने उन्हें मिलाया तब वे मिले हैं। मतलब यह है कि जो कुछ होता है, जड-चेतन के मिश्रण से होता है। केवल जड से नही।

वेदान्तदर्शन केवल चेतनतत्त्व को ही स्वीकार करता है। उससे भी यही प्रश्न किया जा सकता है कि यह घड़ी जड से बनी है या केवल चेतन से ? अगर केवल चेतन से ही बनी है तो यह खोखा यहाँ क्यो आया ? आप बैठे बैठे

मन.कल्पना से घडी क्यो नही बना लेते ? परन्तु बिना जड़ उपादान के वह कैसे बन सकती है ?

इन सब बातो पर विचार करके ही जैनसिद्धान्त कहता है कि यह सारा ससार न केवल जड का ही परिणाम है, न केवल चेतन का ही, वरन् जड और चेतन दोनो के सम्मिलन का ही परिणाम है। शरीर का कर्त्ता चेतन है परन्तु वह बिना जड के नही ठहर सकता। यदि चेतन का ही परिणाम हो तो अन्न पानी खाने पीने की आवश्यकता क्यो हो ? साराश यह है कि वास्तव मे जड और चेतन के मेल से ही ससार का यह खेल है। दोनो के मेल के बिना यह कुछ भी नही हो सकता।

अब प्रश्न होता है कि इस मिश्रण मे दो भेद क्यो हुए ? अर्थात् कोई सुखी है और कोई दुखी है, सो क्यो ?

मित्रो ! यह कर्त्ता का भाव है। कर्त्ता यदि अच्छे रूप से करे तो अच्छा होता है, बुरे रूप से करे तो बुरा होता है। ज्ञान न रख कर काम कर डालने का ही यह परिणाम है। लाल मिर्च मुह मे डाल लेने पर जलन अवश्य होगी। जलन उत्पन्न होने देना या न होने देना मिर्च खाने वाले के हाथ मे नही रहता। इसी कारण ज्ञानी कहते हैं कि कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का ध्यान रक्खो। क्या करने से लाभ होगा और क्या करने से लाभ नही होगा ? कौनसा कार्य हानिकारक होगा और कौनसा कार्य हानिकारक नही होगा ?

इन बातो पर विचार करके ही प्रवृत्ति करनी चाहिए ।

कर्त्ता चेतन है, परन्तु उसे भ्रम क्या है, यह समझ लीजिए ।

वहमी भय माने यथा रे,
सूने घर वेताल ।
त्यों मूरख आतम विषे रे,
मान्यों जग भ्रम जाल ।।जीव रे० ।।

कोई कहता है इस घर मे वैताल रहता है। मैं पूछता हूँ कि यह कैसे जाना ? जिस घर मे वैताल बतलाया जाता है, उसमे दो आदमी जाते हैं। एक वैताल के भय से भ्रान्त होकर और दूसरा निर्भय होकर। भयभीत मर जाय और निर्भय न मरे, इसका क्या कारण है ? अगर वैताल वास्तव मे है तो दोनो क्यो नही मरे ?

सुना है, दो मित्रो मे से एक ने कहा कि मैं आधी रात को श्मशान मे जाऊँ तो भी डर नही लग सकता। दूसरे ने कहा अगर आधी रात के समय श्मशान मे जाकर खूटी गाड आओ तो मैं तुम्हे मिठाई दूगा। पहला मित्र गया और उसने खूटी गाड दी। तब तक उसे किसी प्रकार का भय नही हुआ। परन्तु खूटी के साथ उसके कपडे का एक पल्ला भी गड गया था। जब वह चलने लगा तो पल्ला खिंचा। इससे यकायक चित्त मे भय का उद्रेक हुआ और वह वही मर गया।

मैं अपने अनुभव की बात कहता हूँ। जहां लोग भूत का रहना कहते थे और बतलाते थे कि यहा भूत पटक देता है वहा हम खूब रहे, परन्तु तनिक भी खटका नही हुआ। इसका क्या कारण है ? मित्रो ! असल मे भ्रम ही अनिष्ट-कारक होता है। भ्रम ही बुराई का बीज है और इसी को अविद्या, माया या भ्रम कहते हैं। मनुष्य स्वय भय की कल्पना करता है और उसी कल्पित भय से मर जाता है।

कहा जा सकता है कि अगर सचमुच भूत मिल जाय तो ? परन्तु जब तक आपके हृदय मे भय न हो तब तक भूत कुछ नही बिगाड़ सकता। प्रश्नव्याकरण सूत्र मे कहा है कि जो भूत से डरता है उसी को भूत छलता है और जो नही डरता उसका वह कुछ नही बिगाड सकता। तात्पर्य यह है कि मनुष्य अपने भ्रम से मरता है।

इसी प्रकार कुछ लोग कहते हैं कि भगवान् मारता है और भगवान् जिलाता है। भगवान् सुख देता है और भगवान् ही दु ख देता है। यह सब कल्पना मात्र है। वास्तव मे मनुष्य का विचार ही नरक या स्वर्ग देता है। परमात्मा का इन बातो से कोई सरोकार नही है। अगर मनुष्य बुरे विचारो को तिलाजलि दे दे तो वह स्वय मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

मैं बचपन मे रतलाम मे रहा था। वहाँ के एक श्रावक सेठ अमरचन्दजी कहा करते थे—

प्रभु सुमरन सौ दुख हरे, चुप दुख हरे हजार।
गुरु—कृपा लख दुख हरे, सब दुख हरे विचार॥

अर्थात्—परमात्मा के स्मरण से सौ दुखो का नाश होता है, चुप रहना हजार दुखो को दूर करता है, गुरु की कृपा से लाख दु.खो का अन्त हो जाता है और विचार से सभी दुखो का नाश होता है।

शुभकरणजी चौवीस वर्षो मे चारो धाम करके आये, पर शिकार और मजा मौज मे उन्हे जो आनन्द आता था, उसमे कोई अन्तर नही आया। उनका मन ज्यो का त्यो रहा। इसका कारण यही था कि उनके विचार वही थे। मैं एक बार रतलाम था तब शुभकरणजी-जो उदयपुर के राजकवि थे—एक बार आये। उस समय के एक व्याख्यान का उन पर ऐसा असर पडा कि जो नियम आप श्रावक कहलाते हुए भी न पालते होगे, उन नियमो का वे पालन करने लगे। रात्रि मे भोजन न करना, जमीकन्द न खाना, आदि कई नियम वे पालने लगे। यद्यपि उन्हे प्राय: राजाओ के साथ रहना पडता है फिर भी उनके नियमो पर राजाओ की सगति का कोई असर नही पडता। असल बात है कि आत्मा मे बल हो तो फिर कोई भी शक्ति नियम मे बाधा नही डाल सकती। आशय यह है कि गुरु की भक्ति से हृदय का भ्रम दूर होता है और निश्चय हो जाता है। मगर गुरु-भक्ति होना सरल नही है। कहा है :—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वर ।
गुरु साक्षात् परमब्रह्म, तस्मै श्रीगुरवे नम ॥

अर्थात् गुरु ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश है। और सब जाने दीजिए, परम ब्रह्म का दर्शन करना हो तो वह भी गुरु ही है।

गुरु को इतना ऊँचा पद क्यों दिया गया है, इस पर विवेचन करने का समय नही है। फिर भी इतना कहता हूँ कि गुरुभक्ति हो तो लाखो दुख दूर हो जाए। गुरु मार्ग बतलाता है तब परम ब्रह्म का दर्शन होता है। गुरु की कृपा के बिना परम ब्रह्म की प्रतीति और प्राप्ति नही हो सकती।

प्रश्न किया जा सकता है कि जिन्होने गुरु बना लिया है, क्या उन सबके दुख दूर हो गये ? इसका उत्तर यह है कि गुरु सच्चा हो, पहुंचा हुआ हो और शिष्य उसके निर्देश के अनुसार चले तो दुख दूर होते हैं। एक के दुख को दूसरा नष्ट नही कर सकता। गुरु मार्ग प्रदर्शित करता है। गलत रास्ते से बचा कर सही रास्ते पर चलाता है। मगर चलने का काम तो स्वय शिष्य का होता है। सूर्य प्रकाश फैलाता है और उसके प्रकाश मे रास्तागीर रास्ता देख सकता है। मगर चलना तो रास्तागीर को ही पडेगा। तभी उसकी मजिल पूरी होगी। अगर रास्तागीर आँखें बन्द कर ले तो उसे सूर्य का प्रकाश होने पर भी सही रास्ता दिखाई

नही देगा । या आँख खोलकर भी वह जान–बूझ कर गलत रास्ते पर चले तो सूर्य उसे किस प्रकार रोक सकता है। अथवा रास्तागीर सुस्त होकर पडा रहे, आगे कदम न बढाए तो भी मजिल कैसे तय होगी ? सूर्य अपना काम करे और रास्तागीर अपना काम करे तभी उसका प्रयोजन सिद्ध होगा। यही बात गुरु और शिष्य के सम्बन्ध में समझ लेनी चाहिए।

मत्र-तत्र मे भी यही कहा जाता है—

गुरु की शक्ति, मेरी भक्ति,
फुरो मन्त्र ईश्वरो वाचा।

मतलब यह है कि छोटी-छोटी बातो मे भी गुरु की शक्ति और अपनी भक्ति बतलाई गई है। और कहाँ तक कहा जाय, ईश्वर की कल्पना भी गुरु बतलाएँगे।

हाँ, मैं विचार के सम्बन्ध कह रहा था। 'सब दुख हरे विचार।' ससार का सुख, दुख, स्वर्ग, मोक्ष, सब विचारो पर ही अवलम्बित हैं। विचार इन सब का खजाना है। इसलिए बुरे विचारो को फैंक दो। माँ, बाप, भाई भाई आदि मे भी कलह होता है, उसका कारण विचार ही से उत्पन्न होता है। बुरे विचारो के समान आत्मा का और कोई शत्रु नही है। अतएव बुरे विचारो को बदलने के लिए कहा है—

जीव रे ! तू पार्श्व जिनेश्वर वन्द।

गुरु यही उपदेश देंगे कि यदि तुझे अपना विचार

अच्छा बनाना है तो पार्श्वनाथ जिनेश्वर को हृदय मे स्थान दे। उन्हें हृदय मे बसाने से तेरे बुरे विचार बदल जाएँगे। शास्त्र मे भी कहा है—

अप्पा कत्ता विकत्ता या दुक्खाण सुहाण य।

अर्थात्– आत्मा आप ही अपने दु खो और सुखो का कर्ता है। गीता मे भी यही कहा है--

आत्मैवात्मन. शत्रुरात्मैव मित्रमात्मन·।

अर्थात्—तुम्हारा ही तू मित्र और शत्रु तुम्ही हो, और काई नही।

जब तक मनुष्य को जड चेतन का ज्ञान नही होता तब तक वह अपने ही विचार के कारण डूबता है। जैन-शास्त्र और गीता के उद्धरण इसी सत्य पर प्रकाश डालते है।

चिन्दानन्द को चक्कर खाते-खाते बहुत समय व्यतीत हो गया है। जो भूतकाल मे हो चुका है उसे देखकर भविष्य का विचार करना चाहिए। पूर्व कर्मों को भस्म करने का उपाय पश्चात्ताप है। जिसने पूर्वकृत पापो के लिए पश्चात्ताप किया होगा, उसी की आत्मा मे दृढता होगी और वही आगे पाप न करने का सकल्प करके पापो से बचने का प्रयत्न करेगा। जो पश्चात्ताप करेगा उसके पाप तो छूट जाएँगे, परन्तु जो पश्चात्ताप नही करता उसके

पाप किसी भी प्रकार नही छूट सकते । पाप को छिपाना व र का वाम और उन्हे प्रकट करके पश्चात्ताप करना वीरता हैं ।

मित्रो ! जो बात गई सो गई । अब रही को रक्खो । 'गई सो गई अब राख रही को ।' अगर आप इन विचारो को हृदय मे धारण करेंगे तो आपको अपूर्व आनन्द होगा । ससार के ही कामों को देख कर विचारना चाहिए कि अच्छे काम और बुरे काम का परिणाम क्या है ? ससार को सुधारने के लिए भी अच्छे विचारो की आवश्यकता है और मुक्ति प्राप्त करने के लिए भी । बुरे विचारो से कही भी काम नही चलता । शास्त्र मे श्रावको के लिए कहा है कि श्रावक आजीविका भी धर्म से ही चलाता है । श्रावक धर्म से आजीविका चलाता है तो वह धर्म की आजीविका शुभ विचार से ही करेगा या अशुभ विचार से ?

लोगो ने भ्रम फला रक्खा है कि धर्म सिर्फ साधु के पास ही है, और सब जगह तो पाप ही पाप है । इस भ्रम से आपको बचना चाहिए साधु के पास आपके लिए धर्म की शिक्षा है, उसको प्रयोग मे लाने का स्थान दूसरा है । बालक पाठशाला मे विद्या सीखते हैं । अगर घर जाकर वे भूल जाएँ तो ? अगर वे यह समझ कर कि विद्या तो पाठशाला की ही चीज है, घर मे उसका उपयोग न करें तो ? वह विद्या निरर्थक सिद्ध होगी । इसी प्रकार साधु के पास जाकर

सुना हुआ धर्म यदि घर जाकर भुला दिया जाय तो वह भी किस काम का ? साधु से धर्म का जो श्रवण करते हो उसे अपने जीवन-व्यवहार मे उतारने की चेष्टा करो, अपना प्रत्येक व्यवहार धर्म के अनुकूल बनाओ ऐसा करने से ही आपका कल्याण होगा और जगत् का भी कल्याण होगा।

२४-श्री महावीरजिन-स्तवन

प्रार्थना

श्री महावीर नमूं वरनाणी,
शासन जेहनो जाण रे प्राणी ।
धन धन जनक 'सिद्धारथ' राजा,
धन 'त्रिसलादे' मात रे प्राणी ॥१॥

ज्यो सुत जायो गोद खिलायो,
'वर्धमान' विख्यात रे प्राणी ।
प्रवचन सार विचार हिया मे,
कीजे अरथ प्रमाण रे प्राणी ॥२॥

सूत्र विनय आचार तपस्या,
चार प्रकार समाध रे प्राणी ।
ते करिये भवसागर तरिये,
आतम भाव अराध रे प्राणी ॥३॥

ज्यो कचन तिहु काल कहीजे,
भूषण नाम अनेक रे प्राणी ।
त्यो जगजीव चराचर जानी,
है चेतन गुण एक रे प्राणी ॥४॥

अपनो आप विषै थिर आतम,
सोहं हंस कहाय रे प्राणी।
केवल ब्रह्म पदारथ परिचय,
पुद्गल भरम मिटाय रे प्राणी ॥५॥

शब्द रूप रस गंध न जामे,
नाम परस तप छांह रे प्राणी।
तिमिर उद्योत प्रभा कछु नाहीं,
आतम अनुभव मांहि रे प्राणी ॥६॥
सुख दुख जीवन मरन अवस्था,
ए दस प्राण संगात रे प्राणी।
इन थी भिन्न 'विनयचन्द' रहिजे,
ज्यों जल मे जलजात रे प्राणी ॥७॥

आज चौवीसवें तीर्थंकर भगवान् महावीर की प्रार्थना की गई है। इस प्रार्थना मे भगवान् के द्वारा दी हुई शिक्षा का विचार करना है।

भगवान् महावीर महान् उपदेशक और महान् शिक्षा-दाता हो गए हैं। उनकी शिक्षाओं के अनुसार ही आज शासन चल रहा है। शिक्षा तो महावीर स्वामी के पूर्ववर्ती भगवान् पार्श्वनाथ आदि ने भी दी थी, लेकिन भगवान् महा-वीर न जनमते तो वह शिक्षा अपने तक कैसे पहुंचती? अतएव हमारे अव्यवहित कल्याणकारी शिक्षादाता भगवान् महावीर ही हैं।

भगवान् ने क्या शिक्षा दी है, यह तब देख पाओगे जब एकाग्र आत्मा करके उतरोगे। सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से यद्यपि छोटी-छोटी चीजे बड़ी दिखाई देती हैं, परन्तु देखने वाला यदि आखें ही मूँद ले तो यन्त्र क्या कर सकता है ? अगर हम हृदय के नेत्रो से देखें तो बड़े-बड़े गम्भीर विचार दीखेंगे। हृदय शून्य होगा तो यह लाभ नही हो सकेगा।

इस प्रार्थना में भगवान् के माता-पिता के प्रति कृतज्ञता प्रकट गई है। कारण यह है कि भगवान् से हमें शिक्षा मिली है। इसी कारण भगवान् को नमस्कार किया जाता है और इसी कारण उनके जन्मदाता माता-पिता का नाता अपने साथ जुड जाता है। कन्या की सगाई वर के साथ होती है। लेकिन वर के माता-पिता को वह सास श्वसुर समझती है। ऐसा समझकर वह उनकी जो मान-प्रतिष्ठा करती है सो पति सम्बन्ध के ही कारण करती है। वह जानती है कि यह माता-पिता न होते तो पति कहां से आते ? इसी प्रकार भगवान् के माता-पिता न होते तो भगवान् हमे शिक्षा देने के लिए कैसे जन्म लेते ?

माता-पिता की तपस्या के बिना अच्छे पुत्र का जन्म नही होता। भगवान् महावीर के माता-पिता ने महान् तपस्या की थी, ब्रह्मचर्य का पालन किया था, उसी के फलस्वरूप उनके यहां भगवान् का जन्म हुआ।

भगवान् महावीर के माता-पिता को जो पूज्य दृष्टि

से न देखे वह कृतघ्न है। उसने जैनधर्म को नही समझा। उपकारी का उपकार मानना परम कर्त्तव्य है। इसीलिए यह प्रार्थना की गई है—

धन धन जनक सिधारथ राजा,
धन त्रिसलादे मात रे प्राणी।
ज्यां सुत जायो गोद खिलायो,
वर्द्धमान विख्यात रे प्राणी।
श्री महावीर नमू वर नाणी,
शासन जेहनो जाण रे प्राणी।

धन्य हैं वे माता-पिता जिन्होने जगत् मे प्रकाश करने वाले पुत्र को जन्म दिया। जिनके पुत्र के होने पर ६४ इन्द्र उत्सव करें वे धन्य हैं। वे धन्य हैं जिन्होने ऐसे पुत्र को गोद में खिलाया कि जिनसे हमे धर्म का अपूर्व प्रकाश मिला है!

भगवान् महावीर से हमे प्रेम क्यो होना चाहिए? इसका उत्तर पहले ही दिया जा चुका है। भगवान् ने हमे धर्म की शिक्षा दी है। अगर वे हमे शिक्षा न देकर आप ही तर जाते, और यह सोच लेते कि दूसरो के डूब जाने या तिरने से हमे क्या प्रयोजन है? तो हमारी क्या स्थिति होती?

भगवान् महावीर ने करीव साढे बारह वर्ष तक तपस्या करके केवलज्ञान और तप का सार लेकर ३० वर्ष तक

ससार को उपदेश दिया है और हम लोगो ने भी पात्रता प्राप्त करके उस उपदेश को ग्रहण किया है। अब यह सोचना चाहिए कि जब भगवान् ने हमे शिक्षा दी है तो हम जगत् को शिक्षा क्यो न दे ?

साधु, साधु की तरह और श्रावक, श्रावक की तरह शिक्षा देते हैं। सुबुद्धि प्रधान ने जितशत्रु राजा को पानी से समझाया। राजा, प्रधान से कहा करता था कि अशुभ पुद्-गल, शुभ पुद्गल कैसे हो सकते हैं ? इसी बात को समझाने के लिए सुबुद्धि प्रधान ने गदी खाई का पानी मगवा कर, शुद्ध करके राजा को पिलाया। अब जरा विचार करो कि राजा को समझाने का कार्य पाप हुआ या धर्म ?

कहा जायगा कि प्रतिबोध देना तो धर्म है किन्तु आरम्भ पाप है। इस सम्बन्ध मे गहराई के साथ सूक्ष्म विचार करने की आवश्यकता है। एक आदमी पीने के लिए जल साफ करता है और दूसरा धर्म का तत्त्व समझाने के लिए। क्या दोनो का आरम्भ एक--सा बराबर है ? एक आरम्भ शादी के लिए करो और एक कल्याण के लिए करो तो क्या दोनो बराबर हैं ? एक मनुष्य अपनी जिह्वा की तृप्ति के लिए बढिया भोजन बनाता है और दूसरा लूले--लगड़े एव भूख से तडपते हुए को देने के लिए बनाता है। क्या दोनो का फल बराबर है ?

'अन्तर है !'

बस, इसी तरह समझ लो ।

कहा जा सकता है कि यह पुण्य है तो साधु क्यो नही करते ? इसका उत्तर यह है कि सुबुद्धि ने पानी के द्वारा राजा को समझाया था तो साधु पानी के द्वारा क्यों नही समझाते ? इस प्रश्न के उत्तर मे कहा जाएगा कि ऐसा करना साधु का कल्प नही है । और यही उत्तर इस प्रश्न का भी समझ लेना चाहिए । वास्तविक बात यह है कि साधु और श्रावक का कल्प अलग-अलग है । दोनो अपने-अपने कल्प के अनुसार प्रवृत्ति करते हैं । जो कार्य साधु के कल्प से बाहर हैं वे श्रावक के कल्प से भी बाहर हैं, इस प्रकार का एकान्त मान बैठना धर्म के तत्त्व की अनभिज्ञता का सूचक है ।

मित्रो ! जरा विचार करो । एक मनुष्य स्वार्थ से प्रेरित होकर अर्थात् यह सोचकर कि राजा खुश हो जायगा तो जागीर दे देगा, उसे घोडे पर चढाकर घुमाता है । दूसरा पुरुष चित्त प्रधान की भाँति राजा के द्वारा होने वाली घोर हिंसा को टालने के लिए, राजा को सच्चे धर्म का बोध कराकर नास्तिक से आस्तिक बनाने के उद्देश्य से घोड़े पर चढाकर मुनि के पास ले जाता है । क्या यह दोनो पुरुष बराबर हैं ?

इन सब बातो पर भलीभाँति विचार कर ऐसा मत करो जिससे जैनधर्म पर पानी फिरे, ऐसा करो जिससे धर्म

की जड न कटे । यह तो स्पष्ट है कि स्वार्थ और परमार्थ दोनो मे घोड़े दौडाने का आरम्भ ऊपरी दृष्टि से बराबर है, फिर भी दोनो के आरम्भ मे आन्तरिक दृष्टि से बहुत फर्क है । एक स्वार्थ के लिए आरम्भ समारम्भ करता है और दूसरा किसी दुःख मे पडे हुए को मुक्त करने के लिए आरम्भ-समारम्भ की क्रिया करता है, तो दोनो बराबर कैसे हो सकते हैं ? कोई भी काम बिना क्रिया के नही हो सकता । बालू बाजरे का काम देने लगे तो चक्की क्यो पीसनी पड़े ? बिना खिलाये-पिलाये बालक बड़ा हो जाय तो लोग क्यो खिलावें-पिलावें ? परन्तु ऐसा सम्भव नही है, इसलिए अनुकम्पादान का विधान है ।

अगर बिना क्रिया ही काम हो सकता हो तो चित्त प्रधान, राजा प्रदेशी को केशी स्वामी के पास लाने की क्रिया क्यो करता ? और यदि वह क्रिया पाप हुई तो—

धरम दलालो चित करे ।

ऐसा क्यो गाते हैं ?

अगर इस क्रिया के सम्बन्ध मे यह कहा जाय कि इसका परिणाम सुन्दर था तो दूसरी क्रियाओ के परिणाम का भी विचार करना चाहिए ।

आपने एक मनुष्य को मुनीम नियुक्त करके दुकान का कारोबार सम्भालने के लिए कलकत्ता भेजा। दूसरा आदमी वहा नाच कूद आदि करने को गया । इन दोनो को आप

खर्च दे तो क्या बराबर है ? मुनीम के लिए तो आप कह देंगे कि बिना वेतन दिये उससे काम कैसे कराया जा सकता है ? दूसरे आदमी को एक पाई देना भी अनुचित मालूम होगा। इसी प्रकार एक क्रिया पाप के लिए की जाए और दूसरी क्रिया के साथ अच्छे फल का सम्बन्ध हो, तो उस अच्छे फल को न देखते हुए दोनो क्रियाओ मे एक-सा पाप बतला देना और भाव का विचार न करके अच्छे काम की जड ही काट देना कितना अन्याय है ?

मित्रो ! धर्म मे भावना का स्थान बहुत उच्च है। भगवान् महावीर ने भावना की शिक्षा दी है। भगवान् ने शिक्षा दी है, इसीलिए हम लोग भगवान् की प्रार्थना करते हैं। भगवान् ने तीस वर्ष तक आत्मकल्याण और जगत्कल्याण की शिक्षा दी है, इसीलिए आज भी श्रद्धा और भक्ति के साथ उनका नाम-स्मरण किया जाता है। न केवल जैन ही, वरन् इतिहास के ज्ञाता समस्त निष्पक्ष विद्वान् मुक्तकठ से उनकी प्रशसा करते हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर जैसे विश्वप्रसिद्ध विद्वान् भी भगवान् महावीर के बतलाये हुए अहिंसातत्त्व को समझकर कहा कि भगवान् महावीर ही ऐसे थे जिन्होने ससार मे दयाभाव फैलाया।

भगवान् महावीर के महान् उपकार से हम केवल उनका स्मरण करके उऋण नही हो सकते, बल्कि उस उपकार का बदला चुका कर ही उऋण हो सकते हैं। भगवान्

ने हमारा उपकार किया है, हम दूसरों का उपकार करे और अनुकम्पा करें तभी बदला चुक सकता है।

परोपकार करने की बुद्धि पहले सब देशो मे थी। परोपकार की भावना ज्यो ज्यो कम होती गई त्यो त्यो स्वार्थ का अवतार हुआ। स्वार्थ के अवतार ने अत्याचार को जन्म दिया और ससार मे भयानक आग फैलने लगी। चाहे कोई हिन्दू हो या मुसलमान, ईसाई हो या कोई और हो, जब तक उसमे परोपकार की बुद्धि होगी, कभी अत्याचार नही करेगा।

किसी भी धर्म का यह सिद्धान्त नही है कि परोपकार करना पाप हैं। विभिन्न धर्मों मे, कुछ बाते निराली निराली अवश्य हैं, किन्तु परोपकार करुणाभाव और अनुकम्पा का किसी ने विरोध नही किया। फिर जैनधर्म की दुहाई देकर अनुकम्पा को पाप बताना कितनी भयकर बात है? शान्ति और कल्याण के लिए धर्म का आश्रय लिया जाता है। इसमें पक्षपात और दुराग्रह के लिए स्थान नही होना चाहिए। जो पक्षपान और दुराग्रह के वशीभूत होकर धर्म को अधर्म और और अधर्म को धर्म मा गा, उसका निस्तार कैसे होगा? इसलिए, मित्रो! निष्पक्षभाव से धर्म का विचार करो। इसी मे आपका हित है।

[ख]

श्री महावीर नमू वर नाणी।

यह भगवान् वर्धमान की प्रार्थना है। प्रार्थना के विषय

मे मैं प्रतिदिन ही कुछ न कुछ कहता हूँ। आप मेरे शब्दों को सुनते तो हैं, मगर उन पर मनन करते हैं या नही ? मनन न करे तो श्रवण से परिपूर्ण लाभ नही हो सकता। यह सम्भव नही कि मैं स्वय आपको मनन करादू। मनन करना आपका ही कार्य है। आप अपना कार्य करें और मैं अपना कार्य करूँ, तभी काम चल सकता है।

एक दिन मैंने परा और अपरा शक्ति के विषय मे कहा था। परमात्मिक शक्ति पराशक्ति और पौद्गलिक शक्ति अपराशक्ति कहलाती है। परा शक्ति को प्राप्त करने के लिए परमात्मा की प्रार्थना की जाती है। इसीलिए हम कहते हैं— हे प्रभो ! हमारे हृदय मे बास कर। परमात्मा को अपने हृदय मे बसाने से कोई इन्कार नही करेगा। सभी उसे अपने अपने हृदय मे बसाना चाहते है। पर परमात्मा सब के हृदय मे क्यो नही बसता ? क्या परमात्मा हृदय में बसने के लिए तैयार नही है ? परमात्मा परम दयालु है और हृदय मे बसने के लिए भी तैयार है। लेकिन यह तो देखो कि आप परमात्मा से अधिक माया को तो हृदय में नही बसाना चाहते ? परमात्मा को माया का एजेंट तो नही बनाना चाहते ? आपका हृदय अगर माया का पुजारी है और उसी को हृदय मे वसाना चाहता है तो परमात्मा का स्मरण करना वृथा है। मैं यह आशा नही करता कि आप माया मे डूबे रहना चाहते है। मैं यह आशा करता हूँ

कि आप माया को जीतने का विचार करते हैं, माया से हारना नही चाहते। इसी आशा के बल पर मैं आपको उपदेश देता हूँ और प्रेरणा करता हूँ कि परमात्मा को हृदय मे बसाने के लिए माया को जीतो। आप भी इसी मे वास्तविक कल्याण समझे।

किसी अच्छी वस्तु को प्राप्त करने का विचार रखने पर भी जब तक उस विचार को पूरा करने के लिए अनुकूल आचरण न किया जाय, तब तक वह वस्तु प्राप्त नही हो सकती। शब्दो से कोई चीज नही मिलती— उसके लिए प्रयत्न और पुरुषार्थ करने की आवश्यकता है। विचार और उच्चार के साथ आचार भी होना चाहिए। आप मुख से परमात्मा की प्रार्थना करते हैं, लेकिन सच्ची प्रार्थना करने के लिए सब से पहले हृदय की शुद्धि होनी चाहिए। हृदय की शुद्धि होगी तो परमात्मा हृदय मे निवास करने लगेगा। और जब परमात्मा हृदय मे निवास करेगा तभी वह शक्ति पराशक्ति प्राप्त हो सकती है।

आप हृदय को शुद्ध करना कठिन कार्य समझते होगे, लेकिन मैं अनुभव के आधार पर कहता हूँ कि हृदय को शुद्ध करना बहुत सरल कार्य है। सरल कार्य कैसे है, यह बात अभी प्रार्थना मे कही है—

ज्यो कचन तिहु काल कहीजे,
भूषण नाम अनेक रे प्राणी .

त्यों जगजीव चराचर जानी,
है चेतन गुण एक रे प्राणी । महा०

सोने और सोने के घाट मे सोना बड़ा है, लेकिन कोई पुरुष यदि सोने को तुच्छ माने और घाट को महत्व दे तो आप उसे मूर्ख कहेंगे । इसी दृष्टान्त को सामने रख-कर आगे की बात सोच ले तो अधिक कहने की आवश्यकता ही न रहे । ससार मे जो चराचरयोनि है, उनमे सोने के समान आत्मा व्याप रहा है । 'एगे आया' कह कर शास्त्र-कारो ने इस तथ्य की ओर सकेत किया है । सभी योनियो के जीवो मे वह आत्मा विद्यमान है । परन्तु लोग शरीर रूपी घाट की कीमत तो कर रहे हैं और आत्मा रूपी सोने को भूल रहे हैं, व्यवहार मे माने जाने वाले सोने और उसके घाट के विषय मे शायद भूल न होती हो किन्तु शरीररूपी घाट और उसके भीतर रहने वाले आत्मा रूपी सोने का मूल्य आँकने मे अकसर भूल होती है । यह सुखी है, यह दुखी है, यह तो आप देखते ही हैं, लेकिन दोनो के ही भीतर समान आत्मा का अस्तित्व नही देखते । सुखी को देखकर आपको प्रसन्नता होती है मगर दुखी को देखकर भी आप क्या उतने ही प्रसन्न होते हैं ?

माया से माया मिली, कर-कर लम्बे हाथ ।
तुलसीदास गरीब की, कोई न पूछे बात ॥

जो धनवान को देखकर प्रसन्न होता है वह गरीब को

देखकर प्रसन्न क्यो नही होता ? क्या धनवान् मे ही आत्मा है ? गरीब मे आत्मा नही है ? आत्मा तो दोनो ही समान है। फिर भी जो धनवान् को ही देखकर प्रसन्न होता है, सुखी की ओर ही दृष्टि रखता है, गरीब या दुखी को नही देखता, वह सोने को भूला हुआ सा क्यो न कहा जाय ? सोने का आभूषण चाहे सिर का हो, चाहे पैर का, है तो सोने का ही। यह ठीक है कि सिर का आभूषण सिर पर रहेगा और पैर का आभूषण पैर पर रहेगा, मगर यह भेद तो सिर और पैर का है। आभूषण तो स्वर्णमय ही है। उसकी मौलिक एकता को कैसे भुलाया जा सकता है ?

इस प्रकार ऊपर का घाट कैसा ही क्यो न हो, आत्मा सब मे समान है। इस तथ्य को आपने जान लिया तो हृदय शुद्ध होना कठिन नही रह जायगा। इसलिए मैं कहता हूँ कि आत्मा को शुद्ध करने के लिए शरीर के आगे आत्मा को मत भूलो। यह छोटा है और यह बडा है, इस प्रकार का भेदभाव करते-करते अनन्त काल बीत गया है। अब अपने विवेक को जागृत करो और अन्तर्दृष्टि से सब मे समान आत्मा देखो। आत्मा की दृष्टि से सबको समान समझो। भावना करो।

न त्वहं कामये राज्य, न स्वर्ग न पुनर्भवम्।
कामये दुखतप्ताना, प्राणीनामर्त्तिनाशनम्॥

अर्थात्—मैं राज्य नही चाहता। मुझे स्वर्ग और

सुखमय परलोक की चाह नही। मैं केवल दुखिया जीवों के दुख को नष्ट करना चाहता हूँ।

एक प्रार्थना करने वाले पर देव तुष्ट हुआ। देव ने पूछा— बोल, तू क्या चाहता है! जो मांगेगा वही दूंगा।' वह क्या मांगना चाहेगा? साधारणतया ऐसे अवसर पर राज्य, धन, सपदा स्वर्ग और मोक्ष की ही मांग की जाएगी। लेकिन वह कहता है— ससार की और सम्पदा तो राज्य से कम ही है, परन्तु मैं राज्य भी नही चाहता। यदि राज्य की आकाक्षा नही है तो क्या स्वर्ग लेगा? इसके उत्तर मे वह कहता है— मुझे स्वर्ग भी नही चाहिए। तो क्या मोक्ष चाहिए? वह बोला— नही, मुझे मोक्ष की कामना भी नही है। तब चाहिए क्या? इसके उत्तर मे उसने कहा— मैं यही चाहता हूँ कि दुखी जीवो का दुख मिट जाए। बस, एक मात्र यही मेरी कामना है।

आपकी समझ मे इस प्रकार की मांग करने वाला क्या पागल है? उसने राज्य नही लिया, स्वर्ग नही लिया, मोक्ष भी नही चाहा और दुखियो का दुख नष्ट करना ही मांगा। दूसरा कोई सुखी रहे या दुखी रहे, इससे आपको क्या सरोकार! अपने को तो अपनी सोचना है। ऐसा कहने वाले भी बहुत मिलेंगे। एक तो पथ ही ऐसा चल पडा है जो पराये दुख को दूर करने मे पाप मानता है। ऐसे लोग उस भक्त की मांग को पागलपन भी कह सकते

हैं, मगर वह तो यही चाहता है कि दुखी जीवो के दुख का नाश हो ।

इसे कहते है निस्वार्थ प्रेम ! इसी को अहेतुकी अनुरक्ति भी कहते हैं । निस्वार्थ प्रेम ससार मे दुर्लभ वस्तु है । वह सच्चे भक्त मे ही हो सकता है । इसी कारण सच्चा भक्त राज्य और स्वर्ग आदि की आकाक्षा नही करता । वह दुखियो के दुखो का नाश चाहता है । सब दानो मे अभयदान ही श्रेष्ठ माना जाता है । जो दाता है वह अभयदान देकर पराये दु ख का नाश ही चाहेगा और इस प्रकार मोक्ष ही प्राप्त कर लेगा । मोक्ष की प्राप्ति इच्छा करने से नही होती, बल्कि मोक्ष की सामग्री जुटाने से होती है । इच्छा उल्टी मोक्ष प्राप्ति मे बाधक है । कहा भी है –

यस्य मोक्षेऽप्यनाकाक्षा स मोक्षमधिगच्छति ।

अर्थात्—जिसे मोक्ष की भी इच्छा नही रहती वही मोक्ष पाता है। इच्छा करने से ही मोक्ष प्राप्त होने लगे तो कौन मुक्त न हो जाय ? मगर मोक्ष यो नही मिलता । मोक्ष की सामग्री जुटने पर ही मोक्ष प्राप्त होता है । मोक्ष की सामग्री मे करुणाभाव की प्रधानता है । निस्वार्थ प्रेम की आवश्यकता है । अहेतुकी अनुरक्ति के बिना मुक्ति प्राप्त नही की जा सकती ।

अहेतुकी अनुरक्ति किसमे और कैसी होती है, यह प्रकट करने के लिए महाकवियो ने सर्वसाधारण का हृदय

खोलने के लिए बहुत कुछ कहा है। उन्होने जो कुछ कहा है उसे समझने वाला ही पूरी तरह समझ सकता है। वैषयिक अनुरक्ति को वृद्धावस्था बिगाड देती है, स्वार्थमयी अनुरक्ति भी स्वार्थभग होते ही लुप्त हो जाती है, परन्तु अहेतुकी अनुरक्ति को कोई बिगाड नही सकता। विषयजन्य प्रेम मे और निस्वार्थ प्रेम मे वैसा ही अन्तर है जैसा काम-धेनु और कुत्ते मे है। विषयजन्य प्रेम भटकने वाले कुत्ते के समान है। जो कुत्ता इधर उधर भटकता फिरता है, उसके लिए यह नही कहा जा सकता कि वह कब और किस कुत्ती से खराब हो जायगा? इसी प्रकार जिन व्यक्तियो को जाति और कुल आदि का विचार नही है, उसके प्रेम का भी कोई ठिकाना नही है। उनका विषयजन्य प्रेम किस समय नष्ट हो जायगा यह नही कहा जा सकता।

अहेतुकी अनुरक्ति ऐसी नही है। उसे जरा नही बिगाड सकती। जरा के कारण जिस प्रेम मे कोई अन्तर न आवे, उसी प्रेम को अहेतुकी अनुरक्ति समझना चाहिए। यह अहे-तुकी अनुरक्ति बडी कठिनाई से मिलती है।

विवाह होने पर पति पत्नी प्रेम-बन्धन मे जुड जाते हैं। मगर उनके प्रेम मे भी भिन्नता देखी जाती है। किसी-किसी मे विवाह करने पर भी स्वार्थपूर्ण प्रेम होता है और किसी किसी मे निस्वार्थ प्रेम भी रहता है। जिन दम्पती में स्वार्थपूर्ण प्रेम होगा उनकी दृष्टि एक दूसरे की सुन्दरता पर

रहेगी और किसी कारण सुन्दरता मे कमी होने पर वह प्रेम टूट जायगा। परन्तु जिनमे निस्वार्थ प्रेम है, उनमे पति रोगी या कुरूप अथवा कोढ़ी होगा तो भी पत्नी का प्रेम कम न होगा। श्रीपाळ को कोढ हो गया था। फिर भी उसकी पत्नी ने पति प्रेम मे किसी प्रकार की कमी नही की। तात्पर्य यह है कि जिस प्रेम मे किसी भी कारण से न्यूनता आ जाय, वह निस्वार्थ प्रेम नही है, वह स्वार्थपूर्ण और दिखावटी प्रेम है। इसके विरुद्ध जो प्रेम किसी भी समय, किसी भी कारण से और किसी भी अवस्था मे कम न हो वह निस्वार्थ प्रेम है। सच्चे भक्त परमात्मा से ऐसा निस्वार्थ प्रेम ही करते हैं। इसलिए वे अपने लिए कुछ भी न चाह कर यही इच्छा करते हैं कि दुखियो का दुख दूर हो जाय।

[ग]

श्रीमहावीर नमू वर नाणी।
शासन जेहनो जाण रे प्राणी॥

यह चौवीसवे तीर्थंकर भगवान् महावीर की प्रार्थना है। आज जो सघ विद्यमान है वह भगवान् महावीर का ही है। साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका, यह चतुर्विध संघ भगवान् महावीर ने ही स्थापित किया है।

आज भगवान् महावीर स्थूल रूप मे हमारे सामने नही हैं, लेकिन जिसे भगवान् महावीर पर श्रद्धा है, उसे समझना चाहिए कि चतुर्विध सघ में ही भगवान् महावीर

हैं। भगवान् तीर्थंकर थे और तीर्थ की स्थापना करने वाले तीर्थंकर कहलाते हैं। आज तीर्थंकर नही हैं, लेकिन उनके बनाये तीर्थ मौजूद हैं। जिस कारीगर का बनाया हुआ किला विशाल और सुदृढ है तो निश्चय ही वह कारीगर बड़ा विशाल होगा। जिसका सघ आज हजारो वर्ष की नीव हो जाने पर भी मौजूद है, उस सघ का सस्थापक कोई होना ही चाहिए और इस प्रकार महावीर भगवान् सघ के रूप मे प्रत्यक्ष हैं।

व्यावहारिक दृष्टि से हम मे और भगवान् मे समय का बहुत अन्तर है, लेकिन गौतम स्वामी तो भगवान् महावीर के समय मे ही थे। भगवान् ने तो गौतम से भी कहा था –

न हु जिणे अज्ज दीसइ।'

अर्थात्– गौतम ! आज तुझे जिन नही दीखते, (लेकिन तू इसके लिए सोच मत कर। उनके द्वारा उपदिष्ट स्याद्वाद-मार्ग तो तेरी दृष्टि मे है ही। तू यह देख कि यह मार्ग किसी अल्पज्ञ का बतलाया नही हो सकता। तूने न्यायमार्ग प्राप्त किया है, अतएव जिन को न देख पाने की परवाह मत कर। उनके उपदिष्ट मार्ग को ही देख कि यह सच्चा है या नही ? अगर उनका मार्ग सच्चा है तो जिन हैं ही और वह सच्चे है।

प्रश्न होता है, भगवान् स्वय मौजूद थे, फिर उन्होंने

रहेगी और किसी कारण सुन्दरता मे कमी होने पर वह प्रेम टूट जायगा । परन्तु जिनमे निस्वार्थ प्रेम है, उनमे पति रोगी या कुरूप अथवा कोढ़ी होगा तो भी पत्नी का प्रेम कम न होगा । श्रीपाळ को कोढ हो गया था । फिर भी उसकी पत्नी ने पति प्रेम मे किसी प्रकार की कमी नही की । तात्पर्य यह है कि जिस प्रेम मे किसी भी कारण से न्यूनता आ जाय, वह निस्वार्थ प्रेम नही है, वह स्वार्थपूर्ण और दिखावटी प्रेम है । इसके विरुद्ध जो प्रेम किसी भी समय, किसी भी कारण से और किसी भी अवस्था मे कम न हो वह निस्वार्थ प्रेम है । सच्चे भक्त परमात्मा से ऐसा निस्वार्थ प्रेम ही करते हैं । इसलिए वे अपने लिए कुछ भी न चाह कर यही इच्छा करते हैं कि दुखियो का दुख दूर हो जाय ।

[ग]

श्रीमहावीर नमू वर नाणी ।
शासन जेहनो जाण रे प्राणी ।।

यह चौवीसवे तीर्थंकर भगवान् महावीर की प्रार्थना है । आज जो सघ विद्यमान है वह भगवान् महावीर का ही है । साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका, यह चतुर्विध सघ भगवान् महावीर ने ही स्थापित किया है ।

आज भगवान् महावीर स्थूल रूप मे हमारे सामने नही हैं, लेकिन जिसे भगवान् महावीर पर श्रद्धा है, उसे समझना चाहिए कि चतुर्विध सघ में ही भगवान् महावीर

है। भगवान् तीर्थंकर थे और तीर्थ की स्थापना करने वाले तीर्थंकर कहलाते हैं। आज तीर्थंकर नही हैं, लेकिन उनके बनाये तीर्थ मौजूद हैं। जिस कारीगर का बनाया हुआ किला विशाल और सुदृढ है तो निश्चय ही वह कारीगर बड़ा विशाल होगा। जिसका सघ आज हजारो वर्ष की नीव हो जाने पर भी मौजूद है, उस सघ का सस्थापक कोई होना ही चाहिए और इस प्रकार महावीर भगवान् सघ के रूप में प्रत्यक्ष हैं।

व्यावहारिक दृष्टि से हम मे और भगवान् मे समय का बहुत अन्तर है, लेकिन गौतम स्वामी तो भगवान् महावीर के समय मे ही थे। भगवान् ने तो गौतम से भी कहा था –

न हु जिणे अज्ज दीसइ।'

अर्थात्– गौतम ! आज तुझे जिन नही दीखते, (लेकिन तू इसके लिए सोच मत कर। उनके द्वारा उपदिष्ट स्याद्वाद-मार्ग तो तेरी दृष्टि मे है ही। तू यह देख कि यह मार्ग किसी अल्पज्ञ का बतलाया नही हो सकता। तूने न्यायमार्ग प्राप्त किया है, अतएव जिन को न देख पाने की परवाह मत कर। उनके उपदिष्ट मार्ग को ही देख कि यह सच्चा है या नही ? अगर उनका मार्ग सच्चा है तो जिन हैं ही और वह सच्चे है।

प्रश्न होता है, भगवान् स्वय मौजूद थे, फिर उन्होंने

गौतम स्वामी से क्यो कहा कि आज तुझे जिन नही दिखलाई देते ? इस कथन का अभिप्राय क्या है ?

इस गाथा का अर्थ करते हुए डाक्टर हर्मन जैकोबी भी गडबड मे पड गये थे। अन्त मे उन्होने यह गाथा प्रक्षिप्त (वाद मे मिलाई हुई) समझी। उनकी समझ का आधार यही था कि खुद भगवान् महावीर बैठे थे, फिर वह कैसे कह सकते कि आज तुझे जिन नही दिखते ? इस कारण उन्होने लिख दिया कि यह गाथा प्रक्षिप्त है।

डाक्टर हर्मन जैकोबी की दौड यही तक रही, लेकिन वास्तव मे यह गाथा प्रक्षिप्त नही है सूत्रकार की ही मौलिक रचना है। भगवान् महावीर केवलज्ञानी जिन थे और गौतम स्वामी छद्मस्थ थे। केवलज्ञानी को केवलज्ञानी ही देख सकता है। छद्मस्थ नही देख सकता अगर गौतम स्वामी, जो छद्मस्थ थे केवलज्ञानी को देख लेते तब तो वह स्वयं उसी समय केवलज्ञानी कहलाते। आचाराग सूत्र मे कहा है—

'उवएसो पासगस्स नत्थि।'

अर्थात् सर्वज्ञ के लिए उपदेश नही है।

इस गाथा से और ऊपर की गाथा से प्रकट है कि गौतम स्वामी उस समय छद्मस्थ थे। इस कारण उन्हे पूर्ण करने के लिए भगवान् ने उपदेश दिया है। भगवान् के कथन का अभिप्राय यह है कि - हे गौतम ! तेरी छद्मस्थ-अवस्था के कारण मैं तुझे केवलज्ञानी नही दिखता। मेरा

जिनपना तुझे मालूम नही होता । क्योकि शरीर जिन नही है और जिन शरीर नही है ।

जिनपद नहीं शरीर में, जिन पद चेतन मांय ।
जिन दर्णन कछु और है, यह जिन वर्णन नाय ।।

साधारण जनता नेत्रो से दिखाई देने वाले अष्ट महाप्रातिहार्ययुक्त आत्मा को जिन समझती है, लेकिन यह महाप्रातिहार्य से जिन नही है । ऐसे महाप्रातिहार्य तो मायावी इन्द्रजालिया भी अपनी माया से रच सकते हैं । वास्तव मे जिन चेतना है और उस चेतना रूप जिन को जिन ही प्रत्यक्ष से देख सकते हैं ।

इस कथन का आशय यह नही हैं कि जिन भगवान् का शरीर भी नही दिखता । इसका ठीक आशय यही है कि जिनदशा वास्तव मे आत्मा की होती है और उसे केवलज्ञानी के सिवाय दूसरा कोई नही देख सकता ।

तब प्रश्न उपस्थित होता है कि साधारण आदमी उस पर श्रद्धा कसे करे ? जिन को हम पहचान नही सकते । ऐसी अवस्था में कोई भी हमे कह सकता है कि मैं जिन हूँ । जब हमे जिन दिखाई नही देते तो हम किसे वास्तविक जिन मानें और किसे न माने ?

इस विषय मे शास्त्र कहते हैं – बिना प्रमाण के किसी को जिन न मानना ठीक ही है, लेकिन जिन भगवान् को पहचानने के लिए तुम्हारे पास प्रत्यक्ष प्रमाण का साधन

नही है। जिन को केवली ही प्रत्यक्ष से जान सकते हैं। तुम छद्मस्थ हो, इसीलिए अनुमान से निश्चय करना होगा। अनुमान प्रमाण से किस प्रकार निश्चय होता है, इसके लिए एक उदाहरण लीजिए—

एक आदमी यमुना नदी को बहती देखता है। वह प्रत्यक्ष से यमुना को बहती देख रहा है, लेकिन कालिन्दी कहलाने वाली और कालिजर पहाड से निकलने वाली यमुना का उद्गमस्थान उसे नही दीखता। उसे यह भी नही दीख पडता कि वह किस जगह समुद्र मे मिल गई है। इस प्रकार यमुना नदी सामने है, मगर उसका आदि और अन्त उसे नजर नही आता, सिर्फ थोडा-सा मध्यभाग ही दिखाई देता है। इस मध्यभाग को देख कर मनुष्य को अपनी बुद्धि लगानी चाहिए कि जब इसका मध्य है तो आदि और अन्त भी होगा ही। हां अगर मध्यभाग भी दिखाई न दे और आदि-अन्त मानने को कहा जाय तो बात दूसरी है, अन्यथा एक अंश को देख कर दूसरे अंश पर बिना देखे भी विश्वास करना न्याययुक्त है।

उदाहरण की यही बात गौतम स्वामी के लिए भी समझ लेना चाहिए। भगवान् कहते है—गौतम! तू मुझे जबर्दस्ती जिन मत मान। किन्तु जैसे यमुना को देख कर उसका उद्गमस्थान और संगमस्थान मान लिया जाता है, उसी प्रकार तू जिन के उपदिष्ट मार्ग को देखकर अनुमान

से जिन को स्वीकार कर। जिनका मार्ग तो प्रत्यक्ष ही दिखाई देता है न ! तू श्रुतज्ञानी है। श्रुतज्ञानी, केवलज्ञानी को नही देख सकता। केवलज्ञानी ही केवलज्ञानी को देख सकता है। मैं जो उपदेश देता हूँ, वह केवलज्ञानी का होने पर भी तेरे लिए श्रुतज्ञान का ही है, क्योंकि तू उससे अधिक नही देख सकता। लेकिन मेरा उपदेश पूण है या अपूर्ण ? लौकिक है या अलौकिक ? साधारण है या असाधारण ? इत्यादि प्रश्नो का विचार कर। अगर मेरा उपदेश श्रुत-ज्ञानी के उपदेश सरीखा ही हो, उसमे कुछ भी विशेषता नजर न आती हो तो भले ही मुझे केवली न मान, अगर कोई विशेषता मालूम होती हो – जो कि श्रुतज्ञानी के उप-देश मे सम्भव नही है—तो मुझे केवली मान। इस प्रकार मेरे केवली होने न होने का निर्णय तू आप ही कर ले।

गौतम ! अगर मुझ पर तेरा विश्वास है, मेरे उपदेश की सत्यता तुझे अनुभव हो रही हो तो मेरा कहना मान। मेरा कहना यह है कि तू समय मात्र भी प्रमाद मत कर।

'प्रमाद मत कर' यह भगवान् का वचन अत्यन्त गभीर है। गौतम स्वामी वेले वेले का पारणा करते थे। शरीर को तो मानो वह त्याग ही चुके थे। वह चौदह पूर्वो के ज्ञाता और सर्वाक्षर सन्निपाती थे। तप और सयम मे लीन रहते थे। ऐसी दशा मे उन्हें समय मात्र का भी प्रमाद न करने का उपदेश देने की क्या आवश्यकता पड़ी ?

सर्वज्ञ के सामने गौतम स्वामी जैसे विशिष्ट श्रुतज्ञानी और साधारण जीव ही हैं। उनका उपदेश सबके लिऐ समान है। गौतम आदि के लिए उपदेश न देकर वे दूसरो को ही उपदेश दे, ऐसी बात नही है। यह बात दूसरी है कि भगवान् के उपदेश का जो सूक्ष्म रहस्य गौतम स्वामी ही ग्रहण कर सके थे वह दूसरा ग्रहण न कर सका, फिर भी उपदेश तो सबके लिए समान ही था। उपदेश को ग्रहण करने की मात्रा तो श्रोता की अपनी शक्ति पर निर्भर करती है। सरोवर किसी को जल लेने से इन्कार नही करता, लेकिन जितना बडा पात्र होगा, वह उतना ही जल ग्रहण करेगा। इसी प्रकार भगवान् का ज्ञान सागर सब के लिए है। जिसका जितना सामर्थ्य हो, उतना ग्रहण कर ले। गौतम अधिक ग्रहण कर सके, दूसरे लोग उतना न ग्रहण कर सके।

भगवान् ने गौतम को सम्बोधन करके कहा है कि एक समय मात्र भी प्रमाद मत करो। एक न्यायशील राजा यही कहेगा कि मेरा कानून प्रधान और प्रजा सभी के लिए समान है। अगर कोई कानून प्रधान के लिए न हो और सिर्फ प्रजा के लिए ही हो तो उस कानून को बनाने वाला राजा न्यायशील नही कहला सकता। न्यायशील राजा तो वही है जो सबके लिए समान कानून बनाता है। जब राजा अपने प्रधान से भी यही कहेगा कि मेरा कानून तुम्हारे लिए भी है, तब प्रजा आप ही कांप जाएगी। वह सोचेगी—प्रधान

को भी कानून की मर्यादा पालनी पडती है तो हमारी क्या विसात ! हमे तो पालनी ही पडेगी ।

इसी प्रकार गौतम स्वामी मे विशेष प्रमाद नही है, फिर भी भगवान् ने उन्हे प्रमाद न करने की हिदायत की हैं । इससे हमे यह समझ लेना चाहिए कि भगवान् ने यह बात हमारे लिए ही कही है । भगवान् को गौतम स्वामी का जैसा ध्यान था वैसा ही सब का था ।

भगवान् तीर्थंकर हैं । सम्यग्दर्शन सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र तीर्थ है और चतुर्विध सघ तीर्थ के आधार हैं । या यो कहिए कि जिसमे उपर्युक्त रत्नत्रय मिल गया वही तीर्थ है । जिसमें यह तीन रत्न नही हैं वह तीर्थ नही—हड्डियो का ढेर है ।

आज भगवान् नही दीखते, लेकिन उनका उपदेश किया हुआ मार्ग आज भी दीख रहा है । उनके द्वारा स्थापित तीर्थ आज भी विद्यमान हैं । इसे देखकर ही गौतम स्वामी ने भगवान् को केवलज्ञानी माना था । भगवान् का उपदेश किया हुआ मार्ग और स्थापित किया हुआ तीर्थ आज भी मौजूद है । इन्हें देखकर यह मानना चाहिए कि आज भी भगवान् मौजूद हैं ।

ईश्वर चर्म-चक्षु से नही दीखता । हाँ, ईश्वर का शरीर चर्म-चक्षु से भले ही दिखाई दे और दिखाई देता भी है, लेकिन ईश्वरत्व तो उसी को दिखेगा, जो स्वय ईश्वर

बुद्धिगम्य है और वह भी विशिष्ट बुद्धिगम्य है।

जिस समय तुम भगवान् महावीर के उपदेश के मर्म को भली भांति जानोगे उस समय यह भी तुम्हें मालूम हो जायगा कि ऐसा उपदेश किसी अल्पज्ञ के द्वारा होना सभव नही है। यह ज्ञान ही तुम्हें भगवान् का साक्षात्कार कराएगा। इसी से ईश्वर की ईश्वरता पहचान पाओगे।

भक्तो का कथन है कि ईश्वर को ढूढने के लिए इधर-उधर मत भटको। पृथ्वीतल बहुत विशाल है और तुम्हारे पास छोटे छोटे दो पैर हैं। इनके सहारे तुम कहाँ-कहाँ पहुंच सकोगे ? फिर इतना समय भी तुम्हारे पास कहाँ है ? ईश्वर को खोजने का ठीक उपाय यह नही है। मन को शात और स्वस्थ बनाओ। फिर देखोगे तो ईश्वर तुम्हारे ही निकट-निकटतर दिखाई देगा।

मो कों कहां तू ढूढे, मैं तो हू दम तेरे पास में।
ना मैं मन्दिर ना मैं मस्जिद ना काशी कैलाश में॥
ना मैं बैसू अवन द्वारिका, मेरी भेट विश्वास में॥मोको॥

मगर लोग बाहर की दृष्टि से देखते हैं जिससे लाभ के बदले सन्देह ही ज्यादा होता है। कोई मुझसे पूछे कि सुमेरु पर्वत कहां है ? मैं उत्तर दूगा सुमेरु प्रथम तो केवली के ज्ञान मे है, दूसरे शास्त्र मे है, तीसरे नक्शे मे है। पृथ्वी पर सुमेरु कहां है, यह मुझे मालूम नही और पता लगाने की आवश्यकता भी नही, क्योंकि भगवान् ने पिण्ड मे ब्रह्मांड

बतलाया है ।

परिकर कर धर कचुकी, पुरुष फिरे चकचोर ।
यह आकार है लोक का, देख्यो ग्रन्थ निचोर ॥

झगा पहन कर और कमर पर हाथ रख कर नाचता हुआ पुरुष जिस आकार का दिखाई देता है वह लोक का आकार है । सक्षेप मे कहा जाय तो यह कि मनुष्य सारी दुनियाँ का नक्शा है। लोक को देखने के लिए कृत्रिम नक्शा देखने की जरूरत नही है । लोक के नक्शे मे जो रेखाएँ हैं, वैसी ही मनुष्य के शरीर मे नसो के रूप मे मौजूद हैं । मानव-शरीर के ठीक बीचो-बीच नाभि है। यह नाभि सूचित करती है कि सुमेरु पर्वत भी इसी तरह का है । शरीर का नाभि और सुमेरु गिरि रूप लोकनाभि ठीक बीच मे है । कदाचित् कोई प्रश्न करे कि मनुष्य शरीर मे सुमेरु कहा है ? तो मैं कहूँगा— अपनी नाभि मे । सृष्टि के मध्य का सुमेरु पर्वत तभी मिलेगा, जब ऊर्ध्वगामी बन कर ब्रह्माण्ड, मस्तक और नाभि को एक कर दोगे तथा जब सोती हुई शक्तिया जाग उठगी । ऐसी स्थिति प्राप्त होने पर आप ही सुमेरु गिरि का पता लग जायगा ।

सुमेरु पर्वत पर भगवान् ने चार वन बतलाये हैं । सब से नीचे भद्रशाल वन है । उससे पाच सौ योजन की उँचाई पर नन्दन वन है । उससे साढे बासठ योजन ऊपर सौमनस वन है और उससे भी छत्तीस हजार योजन ऊपर

पाण्डुक वन है। उस पाण्डुक वन के ऊपर अभिषेक-शिला है। तीर्थंकर के जन्म के समय इन्द्र उन्हें इस अभिषेक-शिला पर ले जाते हैं और वहाँ उनका अभिषेक करते हैं। उपनिषद् मे कहा है—

'देवो भूत्वा देवं यजेत् ।'

अर्थात्—ईश्वर बन कर ईश्वर को देख—ईश्वर की पूजा कर। यानी अपने आत्मा का स्वरूप पहचान ले, बाहर के झगड़े दूर कर।

हम भी परमात्मा की पूजा करते हैं, मगर धूप, दीप, फल और मिठाई आदि से नही। ऐसा करना जड पूजा है। सच्ची पूजा वह है जिसमे पूज्य और पूजक का एकीकरण हो जाय। जैसे शक्कर की पुतली पानी की पूजा करने मे उसके साथ एकमेक हो जाती है—उसी मे मिल जाती है, उसी प्रकार ईश्वर की पूजा करनी चाहिए। शास्त्र मे कहा है—

'कित्तिय—वन्दिय—महिया ।'

अर्थात् हे प्रभो! तू कीर्तित है, वन्दित है और पूजित है।

साधु भी यह पाठ बोलते हैं। यह पाठ षडावश्यक के दूसरे अध्ययन का है। भगवान् की पूजा यदि केवल धूप, दीप आदि से ही हो सकती होती तो साधु उनकी पूजा कैसे कर सकते थे?

परमात्मा की पूजा के लिए पूजक को सर्व प्रथम यह विचारना चाहिए कि मैं कौन हूँ ? हे पूजक ! क्या तू हाड़, मास, नख या केश है । अगर तेरी यही धारणा है तो तू ईश्वर की पूजा के अयोग्य है । तू 'देवो भूत्वा देव यजेत्' तत्त्व नही जान सकता । क्योकि हाड मास का पिंड अशुचि है, जो ईश्वर की पूजा मे नही टिक सकता । अपने आपको मास का पिंड समझने वाला पहले तो ईश्वर की पूजा करेगा नही अगर करेगा भी तो केवल मास पिंड बढाने के लिए । अगर मास पिंड बढाने के लिए ईश्वर की पूजा की और उससे मास बढ गया तो चलने फिरने मे और कष्ट होगा, मरने पर उठाने वालो को कष्ट होगा और जलाने मे लकडिया अधिक लगेंगी ।

मैं पूछता हूँ आप देह हैं या देही हैं ? घर है या घरवान् हैं ? आप कहगे हम देही हैं हम घरवाले है । घर तो चूना, ईंट या पत्थर का होता है । मगर देखना, आप कही घर ही तो नही बन गये हैं ? अगर कही अपने आपको घरवान् न मान कर घर ही मान लिया तो बडी गडबडी होगी ?

'देहो यस्यास्तीति देही' अर्थात् देह जिसका है जो स्वय देह नही है— वह देही है । निश्चय समझो मैं हाथवान् हूँ, स्वय हाथ नही हूँ । ऐसा निश्चय होने पर तुम देव बन कर देव की पूजा के योग्य अधिकारी बन सकोगे । गीता मे कहा है—

इन्द्रियाणि पराण्याहुः, इन्द्रियेभ्यो परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिः, यो बुद्धे परतस्तु सः॥

तू इन्द्रिय, मन या बुद्धि नही है। वरन् बुद्धि को शक्ति देकर उसका प्रयोग करने वाला है।

जिसने इस प्रकार ईश्वर को समझ लिया है, वह ईश्वर की खोज मे मारा-मारा नही फिरेगा और न ईश्वर के नाम पर अन्याय ही करेगा। कानों मे उँगली डालकर ईश्वर को पुकारे और फिर कहे—या अल्लाह! तू हिन्दूओ को मार डाल। ऐसा कदापि नही करेगा। जर्मन लोग इंग्लेण्ड वालो को मार डालने के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते हैं और इंग्लेण्ड वाले जर्मनो को मार डालने के लिए। अब वेचारा ईश्वर किसकी रक्षा करे और किसे मार डाले? वह किस का पक्ष ले? यह ईश्वर की सच्ची प्रार्थना नहीं है। ऐसी प्रार्थना करने वाला ईश्वर को समझता ही नही है।

कहा जाता है कि सिकन्दर के हाथ मे उसके शत्रु-पक्ष की ओर से आया हुआ तीर चुभ गया। सिकन्दर आग बबूला हो गया और उसने तीर मारने वाले की जाति के दो हजार कैदियो के सिर कटवा लिए। क्या यह ईश्वर को जानना है? क्या यह न्याय है? लेकिन सिकन्दर के सामने कौन यह प्रश्न उपस्थित करता? ईश्वर की सच्ची पूजा तो आत्मा को उन्नत बनाने के उद्देश्य मे ही निहित है। जिसने

आत्मा का असली स्वरूप समझ लिया है, उसने परमात्मा पा लिया है। परमात्मा की खोज आत्मा मे तन्मय होने पर समाप्त हो जाती है।

[घ]

श्री महावीर नमू वर नाणी।

यह भगवान् महावीर की प्रार्थना है। प्रार्थना आत्मा को आनन्ददायिनी वस्तु है। प्रत्येक प्राणी और विशेषतः मनुष्य को प्रार्थनामय जीवन बनाना आवश्यक है। त्यागी-वर्ग यानी साधुसन्तो को ही नही, किन्तु पतित से पतित जीवन बिताने वालो को भी परमात्मा की प्रार्थना करके जीवन को पवित्र और पवित्रतर बनाने का अधिकार है। ससार मे जिसे पापी कह कर लोग घृणित समझते हो, ऐसे घोर पापी, गो, ब्राह्मण स्त्री और बालक के घातक, चोर, लबारी, जुआरी और वेश्यागामी अथवा पापिनी, दुराचारिणी और दुष्कर्म करने वाली स्त्री को भी परमात्मा की प्रार्थना का आधार है।

इस प्रकार जो प्रार्थना त्यागी और भोगी, सदाचारी और दुराचारी, सज्जन और दुर्जन, पापी और पुण्यात्मा-सभी को समान रूप से आधारभूत है, गुणदायिनी है, उस प्रार्थना मे कैसी शक्ति है ? एकाग्रचित्त-होकर प्रार्थना मे ध्यान लगाने से ही इस प्रश्न का समाधान हो सकता है। प्रार्थना का वास्तविक मूल्य और महत्त्व प्रार्थनामय जीवन बनाने से

ही मालूम हो सकता है। प्रार्थना चाहे सादी भाषा मे हो या शास्त्रीय शब्दो मे हो उसका आशय यही होता है कि:—

> गो ब्राह्मण प्रमदा बालक की मोटी हत्या चारो।
> तेनो करणहार प्रभु भजने होत हत्या से न्यारो ।पदम प्रभु॥
> वेश्या चुगल छिनाल कसाई चोर महा बटमारो।
> जो इत्यादि भजे प्रभु ! तो ने तो निवृत्त ससारो ॥पदम प्रभु.॥

जो वस्तु इतनी पावन है उसकी महिमा जीभ से किस प्रकार कही जा सकती है ? जीभ मे बुद्धि मे और मन में प्रार्थना की महिमा प्रकट करने की शक्ति कहाँ ? ससार मे जिसकी अवहेलना कर दी है, लोग जिसका मुह देखना पाप समझते हैं और जिसे पास मे खडा भी नही रहने देना चाहते, ऐसे पापी को भी जो प्राथना पवित्र बना देती है और ऐसा पवित्र बना देती है कि उसकी घृणा करने वाले लोग ही उसकी प्रार्थना करने लगते हैं तथा प्रार्थना करके अपना जीवन सफल बनाते , उस प्रार्थना की महिमा अगाध है। उसकी महिमा कौन कह सकता है ?

परमात्मा की प्रार्थना मे इतनी पावनी शक्ति है। फिर भी जो लोग प्रार्थना मे न लग कर गदी बातो मे जीवन लगाते हैं, उन-सा मूर्ख और कौन होगा ? परमात्मा की प्रार्थना मे न धन खर्च करने की आवश्यकता है, न कष्ट सहन करने की ही। हृदय को शुद्ध करके परमात्मा पर विश्वास रख कर उसका स्मरण करना ही प्रार्थना है।

ऐसे सरल उपाय का अवलम्बन करके कौन विवेकशील पुरुष पवित्र न बनना चाहेगा ?

प्रार्थना किसे पवित्र नही बना सकती ? जो पानी राजा की प्यास बुझा कर उसके प्राण बचाता है, वही पानी क्या एक अधर्मी की प्राणरक्षा न करेगा ? जो अन्न राजा, महाराज, तीर्थंकर, अवतार आदि के प्राणो की रक्षा करता है, वह क्या कनिष्ठ प्राणी के पेट मे जाकर उनकी रक्षा नही करेगा ? अन्न की कीमत चुकानी पडती है और पानी भी बिकने लगा है, लेकिन पवन प्राणरक्षा करता है या नही ? और वह सभी के प्राणो की रक्षा करता है या किसी-किसी के ही प्राणो की ? अगर थोडी देर तक ही पवन नाक मे न आवे तो क्या जीवन-रक्षा हो सकती है ? नही। ऐसी दशा मे मरण के सिवाय और क्या शरण है ? पवन स्वय नाक मे आता और प्राण बचाता है। इस प्राण-रक्षक पवन की कोई कीमत नही देनी पड़ती। जहा मनुष्य है, वही वह आ जाता है। यही नही, वरन् कई बार लोग उसकी अवहेलना करते हैं उसे रोकने की चेष्टा करते है तव भी वह नाक में आ ही जाता है। उदाहरणार्थ—बुखार आने पर रोगी के परिचारक उसे अनाप सनाप कपडे ओढा देते हैं। ऐसा करना पवन रुकने के कारण स्वास्थ्य के लिए घ तक है। फिर भी पवन किसी न किसी मार्ग से पहुंच-कर नाक मे घुसता हो है और जीवन देता है।

जैसे पवन की कीमत नही देनी पड़ती, फिर भी वह

जीवन देने वाला है, उसी तरह प्रार्थना भी जीवन देने वाली है और उसकी भी कीमत नही देनी पडती । लेकिन लोग शायद यह चाहते है कि जिस तरह पवन स्वय ही आकर हमारी नाक मे घुस जाता है उसी प्रकार प्रार्थना भी हमारे हृदय मे घुस जाय ! और शायद इसी विचार से वे परमात्मा की प्रार्थना नही करते । उन्हे प्रार्थना के लिए समय नही मिलता, गन्दी और निरर्थक बातो के लिए समय मिल जाता है । जिन कामो से गालियाँ खानी पडती हैं, बुराइयाँ पैदा होती हैं और आत्मा पर सकट आ पडता है, ऐसे कामो के लिए समय की कमी नही, सिर्फ प्रार्थना के लिए कमी है ।

आप कहेगे कि हम प्रार्थना करने मे कब प्रमाद करते हैं ? तो मैं सब से अलग-अलग न पूछ कर सभी से एक साथ पूछता हूँ कि आप लोग जब रेल मे बैठकर कही जाते आते हैं, तब वहाँ कोई काम नही रहता । फिर भी उस समय मे से कितना समय प्रार्थना मे लगाया है और कितना निरर्थक गप्पो मे ? कभी आपने इस बात पर विचार भी किया है ? उस खाली समय मे क्यो प्रार्थना करना भूल जाते हो ? कितने मनुष्य ऐसे हैं जो एकाँत तन्मयता से प्रार्थना करते है और प्रार्थना करते समय उनका रोम-रोम आह्लाद का अनुभव करता है ? दर्पण मे मुह देखने की तरह सभी लोग अपने-अपने को देखो कि हम कितना समय

प्रार्थना मे लगाते हैं और कितना समय रगड़ो-झगडो मे खर्च कर देते हैं ?

लोग कहते हैं—भगवान् के भजन के लिए समय नही मिलता। मैं कहता हूँ- भजन के लिए जुदा समय की आवश्यकता ही क्या है ? भजन तो चलते, फिरते, उठते-बैठते समय भी किया जा सकता है। आपका बाहरी जीवन किसी भी काम मे लगा हो, लेकिन अगर आपके अन्तःकरण मे प्रार्थना का सस्कार हो तो प्रार्थना करने में विघ्न उपस्थित नही होगा।

कई लोग प्रार्थना करते हैं, मगर सासारिक लालसाओ से प्रेरित होकर। किन्तु ज्ञानी पुरुष कहते है— ससार की सम्पद् विपद् मत मानों, ससार सम्बन्धी लालसा से रहित होकर परमात्मा का भजन होना सम्पद् है और भजन न होना ही विपद् है।

गई सो गई अब राख रही को। आप लोग आगे से अपना जीवन प्रार्थनामय बनाइए। आपका हृदय समाधान पाया हो और आपको कल्याण करना हो तो दूसरी सब बातें भूल कर अखण्ड प्रार्थना की आदत डालो। ऐसा करने से तुम देखोगे कि थोडे ही समय मे अपूर्व आनन्द का अनुभव हो रहा है।

ज्ञानी पुरुषो का कथन है कि अखण्ड प्रार्थना करने वाले को सदैव योग क्षेम रहता है। अप्राप्त वस्तु का प्राप्त होना

योग कहलाता है और प्राप्त वस्तु की रक्षा को क्षेम कहते हैं। योग और क्षेम के लिए ही आप दौडधूप मचाते हैं और इस प्राथना से यह प्रयोजन सहज ही सिद्ध हो जाता है अखण्ड प्राथना करने वाले को योग और क्षेम की चिन्ता ही नही रहती।

ऐसा होते हुए भी आपका मन प्रार्थना पर विश्वास नही पकड़ता और रात-दिन बुरे कामो मे व्यस्त रहता है। मूल्यवान् मनुष्य जन्म इस प्रकार बर्बाद होते देख कर ज्ञानियों का दु ख होता है, जैसे कीमती रत्न को समुद्र मे फेंकते देख जौहरी को दु ख होता है। जौहरी जैसे रत्न का मूल्य जानता है इसी प्रकार ज्ञानी पुरुष मानव-जीवन का मूल्य समझते हैं। इसीलिए ज्ञानी पुरुष कहते हैं ·—

खयाल आता है मुझे दिलजान तेरी बात का।
फिकर तुझ को है नही आगे अन्धेरी रात का॥
जीवन तो कल ढल जायगा दरिया'ब है बरसात का।
बेर कोई न खायगा उस रोज तेरे हाथ का॥

ज्ञानी अपनी हार्दिक वेदना इस कविता द्वारा प्रकट करते हैं। वह कहते हैं प्यारे भाइ ! हमे तेरी दशा देखकर बहुत ही खयाल होता है कि तू अपना जीवव वृथा बर्बाद कर रहा है। तुझे जरा भी ध्यान नही है कि आगे चल कर मौत का और सकटो का सामना करना होगा ! तू अपनी जवानी के जोश मे भविष्य को भूल रहा है, मगर

वह तो वर्षा से आने वाला नदी का पूर है। अधिक दिन ठहरने को नही। अतएव जल्दी चेत। वर्त्तमान मे न भूल, भविष्य की ओर देख।

पुरुषो की अपेक्षा स्त्रिया वृथा बाते अधिक करती हैं। परनिंदा, और आलोचना मे जो समय लगता है, उतना समय अगर परमात्मा के भजन मे लगे, तो बेडा पार हो जाय। एक वेश्या को भी अपना जीवन उन्नत बनाने का अधिकार है तो क्या श्राविका को यह अधिकार नही है? घर का काम-काज करते हुए भी भगवान् का भजन किया जा सकता है। फिर आत्मा को उस ओर क्यो नही लगाती? आज अपने मन मे दृढ सकल्प कर लो कि बुरी और निकम्मी बातो की ओर से मन हटा कर भजन और प्रार्थना मे ही मन लगाना है। जो बात बडे-बडे ग्रन्थो मे कही गई है, वही मैं आप से कह रहा हूँ। गीता में कहा है :—

> अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
> साधुरेव स मन्तव्य. सम्यग्व्यवसितोहि सः॥

दुराचारी होकर भी जो अनन्य भाव से परमात्मा का भजन करता है उसे साधु होने में देर नही लगती। जिसने दुराचार किया है, उसे हमेशा के हिम्मत हार कर नही बैठ जाना चाहिए।

आशका हो सकती है कि-- यह कैसे सम्भव है कि

महापापी भी साधु बन सकता है ? इसका समाधान यह है कि क्या ससार मे यह बात प्रसिद्ध नही हैं कि तांबे मे जरा-सी रसायन डालने से वह सोना बन जाता है और पारस के ससर्ग से लोहा भी सोना हो जाता है ? हां, बीच में पर्दा हो तो बात दूसरी है। इसी प्रकार भजन मे भी पर्दा हो तो बात न्यारी है। कहावत है —

सुणिया पिण सरध्या नहीं, मिटा न मन का मोह।
पारस से भेंट्या नही, रह्या लोह का लोह ॥

जैसे पारस और लोहे के बीच मे कागज का पर्दा रह जाय तो लोहा सोना नही बनता, उसी प्रकार हृदय मे जब तक पाप का पर्दा है, तब तक भजन से काम नही बन सकता। अतएव अपने हृदय के पर्दों को देखो। वृथा बातों से काम नही चल सकता और न कपट से ही काम हो सकता है।

बहुत से लोग माला फेरते और भजन करते तो देख पड़ते है, लेकिन उनके भजन करने का उद्देश्य क्या है ? भगवान् की भक्ति करने के लिए भजन करते है या भगवान् को नौकर रखने के लिए ? भगवान् के होकर उसे भजते हैं या कनक कामिनी के लिए ? जो भगवान् का बन कर भगवान् को भजता है, उसे वस्तु की कामना नहीं रहेगी। चाहे उसके शरीर के टुकडे टुकडे हो जाएँ फिर भी वह परमात्मा से बचने की प्रार्थना नही करेगा। ऐसे कठिन

और सकट के समय भी उसकी प्रार्थना यही रहेगी कि हे प्रभो ! मुझे ऐसा बल दीजिए कि मैं तुझे न भूलूँ ।

गजसुकुमार मुनि के सिर पर सोमल ने आग रख दी। फिर भी मुनि ने यह नही कहा कि—हे नेमिनाथ भगवान् ! मुझे बचाओ, मैं तेरा भक्त हूँ।' मुह से गजसुकुमार मुनि की गाथा गाई जाय और हृदय मे मारण-मोहन आदि की कुविद्या चलती रहे, यह तो भगवान् के भजन को लजाना है। ऐसा करने वालो ने भगवान् का मजाक उडाया है और ईश्वर का फजीता किया है। यो तो परमात्मा के भजन से शूली भी सिंहासन बन जाती है, लेकिन भक्त यह कामना नही करता। गजसुकुमार मुनि चाहते, कि आग ठडी हो जाय या सोमल अशक्त हो जाय तो ऐसा हो भी जाता, पर वह तो सोचते थे कि मुझे जल्दी मुक्ति प्राप्त करनी है और सोमल मेरी सहायता कर रहा है। आप बड़े चाव से गाते हैं :—

वसुदेव जी का नन्दन धन धन गजसुकुमार।
रूपे अति सुन्दर कलावन्त वय बल।
सुन नेमजी री वाणी छोड्यो मोह जजाल।
भीखू री पडिमा गया मसाणे महाकाल ॥
देखी सोमल कोप्यो मस्तक बाधी पाल।
खेर ना खीरा सिर ठविया असराल ॥
मुनि नजर न खन्डी मेटी मनडा री झाल।

परीषह सहि ने मोक्ष गया तत्काल ॥
भावे करि वन्दू दिन मे सौ सौ बार ।

क्षमा और शान्ति का ऐसा उत्कृष्ट उदाहरण अन्यत्र कहा मिलेगा ? गजसुकुमार मुनि की क्षमाशीलता की कथा ससार के इतिहास मे अद्वितीय है ।

मित्रो ! यह बात आपका हृदय कहता हो तो इस पर विचार करो कि – जिसके पिता वसुदेव थे, माता देवकी थी और श्रीकृष्ण भाई थे, उनकी छत्रछाया मे रहने वाले गजसुकुमारजी भगवान् नेमिनाथ से मुनिदीक्षा लेकर, श्मशान मे जाकर ध्यान करने लगे । उनका ध्यान यही था कि मैं कब इस शरीर के बन्धन से मुक्त होऊँ । मुनि ध्यान में मग्न थे कि उसी समय वहाँ सोमल आ गया । मुनि पर नजर पडते ही सोमल का क्रोध भभक उठा । क्रोध का कारण यही था कि इसने मेरी लडकी से विवाह नहीं किया । यद्यपि विवाह करना या न करना अपनी मर्जी पर है और उस लडकी को इच्छानुसार करने का अधिकार था, फिर भी सोमल ने मुनि पर यह अभियोग लगाया । अगर गजसुकुमार मुनि सोमल पर भी अभियोग लगाते, तो जीत उन्ही की होती । मगर उन्होने दावा नही किया । उनमे इतना सामर्थ्य था कि अगर वह जरा-सा घुडक देते तो भी सोमल के प्राण छूट जाते । मगर उन्हें तो सिद्ध करना था कि उन्होने सोमल को अपकारी नही उपकारी माना ।

होगा। जो लोग ईश्वर को आँखो से ही देखना चाहते हैं और देखे बिना उस पर विश्वास नही करना चाहते, वे भ्रम मे पड़े हुए हैं। ईश्वर को देखने के लिए दिव्यदृष्टि की आवश्यकता होती है। दिव्यदृष्टि प्राप्त होने पर ईश्वर का साक्षात्कार होता है। मगर जो लोग दिव्य-दृष्टि प्राप्त करने के लिए योग्य साधना करना नही चाहते, फिर भी ईश्वर को देखना चाहते हैं, उनकी स्थिति वडी विचित्र है। उनका यह बालहठ ही कहा जा सकता है।

हमे अपने अनन्त सामर्थ्य पर विश्वास रखते हुए भी मौजूद असामर्थ्य को भूलना नही चाहिए। आत्मा मे अनन्त ज्ञानशक्ति है, अनन्त दर्शनशक्ति है। आत्मा वीर्य का भडार है। किन्तु आज वह अप्रकट है। अतएव हमे ईश्वर द्वारा उपदिष्ट तत्त्व को ही देखना चाहिए और यदि वह परिपूर्ण दिखाई दे तो उसके उपदेष्टा को भी परिपूर्ण समझ लेना चाहिए। इस प्रकार करने से ईश्वरीय मार्ग पर चलने की रुचि जागृत होगी और धीरे-धीरे ईश्वरत्व भी प्राप्त हो सकेगा। ईश्वरत्व प्राप्त होने पर ईश्वर दिखाई देगा। अथवा यह कहिए कि उस समय ईश्वर को देखने की आवश्यकता भी नही रहेगी।

ग्रहण दो प्रकार से होता है—बुद्धि से और इन्द्रियो से। इन्द्रियो से देख कर ही अगर ईश्वर को मानने की इच्छा रक्खी जाय, तो बड़ी गड़बड़ी होगी। ईश्वर केवल